हाराजा
विक्रम

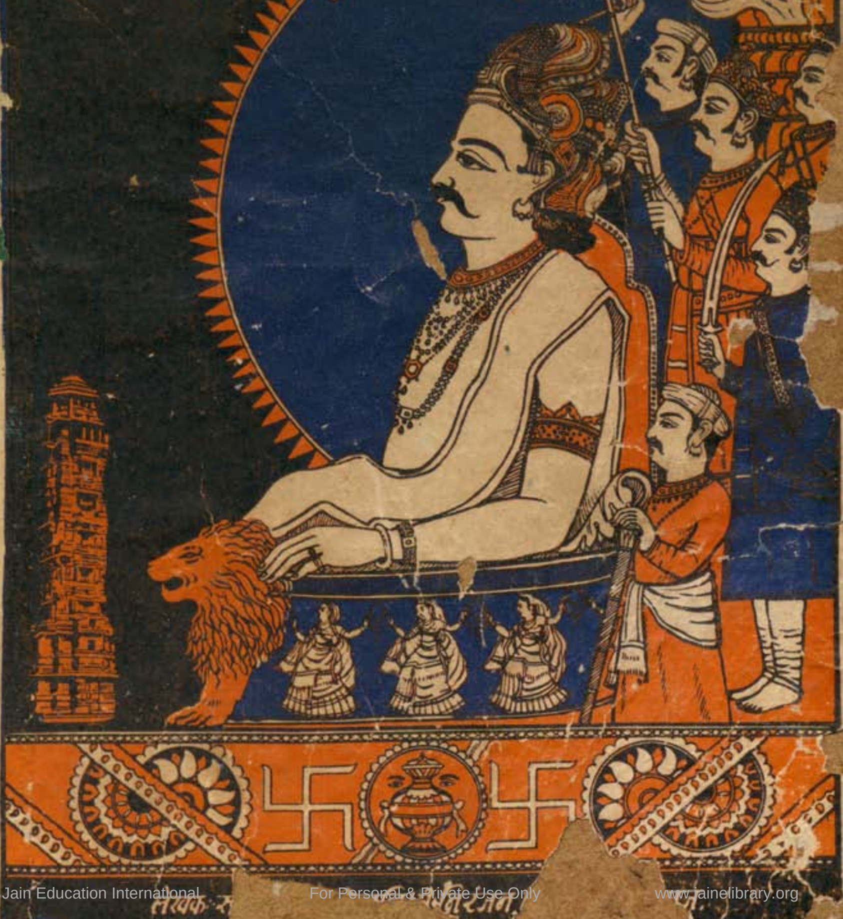

लेखक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ગુજરાતી સરળ ભાષામાં ૯૦ સુંદર ચિત્રો સહિત

ગૌતમપૃચ્છા—સચિત્ર

વિશ્વવંદ્ય **પ્રભુ શ્રી મહાવીરસ્વામીજી** અને શ્રુત કેવળી **શ્રી ગૌતમસ્વામીજી**ના પ્રશ્નોત્તર રૂપ આ **ગ્રંથ મોટા બોલ્ડ ટાઈપમાં મનોહર** સુરેખ ચિત્રોથી સુશોભિત કર્યો છે આ ગ્રંથ માનવ જીવનની સમસ્યા ઉકેલે છે અને સંસ્કારી બનાવે છે, જેથી આત્મા ઉર્ધ્વગામી બને છે.

જૈન ધર્મનું રહસ્ય સરલ ભાષામાં જાણવા માટે સૌ કોઈ ને આ પુસ્તક વાંચવા જેવું.

સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતો જીવ મોક્ષે ક્યારે જાય? સ્વર્ગે ક્યારે જાય? મનુષ્ય ક્યારે થાય? સ્ત્રી ક્યારે થાય? પશુ-પક્ષી ક્યારે થાય? અને નરકે ક્યારે જાય? કાણો, બહેરો, બોબડો, લંગડો લુલો, કોઢિયો, વાંઝિયો કેમ થાય વગેરે ૪૮ પ્રશ્નો પ્રથમ ગણધરે પૂછેલા તેના ઉત્તરો પ્રભુશ્રીએ આપેલા. તે વિસ્મયકારી બોધક કથાઓ સહિત.

માનવ ધનવાન અથવા નિર્ધન શાથી થાય? રૂપાળો અથવા કદ્રુપો કેમ થાય? પ્રિય કે અપ્રિય કેમ લાગે? એવી મનને મુઝવતી અનેક સમસ્યાઓનો ઉકેલ આ **ગ્રંથમાં** તમને જોવા મળશે.

સામાયિકમાં વાંચવા લાયક, **વ્યાખ્યાનની** ગરજ સારે તેવો આ ગ્રંથ છે. બીજાને વાંચી સંભળાવવાથી સાંભળનારને સાચો આનંદ પડે તેવો છે. છતાં જ્ઞાન પ્રચાર માટે માત્ર કિંમત ત્રણ રૂપિયા. પોસ્ટ ખર્ચ રૂા. ૧ અલગ. પૃષ્ઠ ૩૨+૩૨૦=૩૫૨. (બાંધેલી ચોપડી અને છૂટાં પાનાં બંને આકારે છે, માટે જે જોઈએ તે લખો.)

સંસ્કૃત **ગૌતમપૃચ્છાવૃત્તિ**ની પ્રત નવી છપાયેલ છે તે પણ મળશે. તેની કિંમત પણ ત્રણ રૂપિયા. પોસ્ટ ખર્ચ અલગ. (સોનેરી પાટલી સાથે).

લખો :—

૧. **જૈન પ્રકાશન મંદિર,** ૩૦૯/૪ ડોશીવાડાની પોળ—**અમદાવાદ.**

૨. **રમેશચંદ્ર મણિલાલ શાહ.** પાંજરાપોળ, જેશીંગભાઈની ચાલીમાં ઘર નં. ૬૩૦ **અમદાવાદ.**

પ્રસિદ્ધ જૈન બુકશેલરોને ત્યાંથી પણ મળશે.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमोनमः

श्री नेमि-अमृत-खान्ति सद्गुरुभ्यो नमोनमः

ॐ

विवचनकार :

साहित्यप्रेमी मुनिश्री निरञ्जनविजयजी म.सा.

प्रकाशक :

जशवंतलाल गिरधरलाल शाह
कल्याण भुवन रुम नं. ११५
रीलीफ रोड-अमदावाद.

किंमत [illegible] रुपिये

—: શિશુબોધ સોપાન ગ્રંથાવલી :—

અત્યાર સુધી આ ગ્રંથાવલીના ૭ સોપાનો બહાર પડયાં છે.

તે તમારા બાળકોને ખાસ વંચાવો.

લેખક–સંપાદક : સાહિત્યપ્રેમી પૂ. મુનિશ્રી નિરંજનવિજયજી મ.

તેની લેખનશૈલી નાના મોટા સૌને હોંશે હોંશે વાંચતા ગમી જાય તેવી સરળ છે, અને જીવનમાં સંસ્કાર આપી જાય એવી છે, તથાં ભાવવાહી સુંદર ચિત્રોથી પુસ્તિકાઓ ભરપૂર છે

(૧) અવન્તીપતિ વિક્રમાદિત્ય :—પરદુઃખભંજન મહારાજા વિક્રમનો ટૂંક ધાર્મિક જીવન પરિચય. સુંદર ૧૫ ચિત્રો સાથે, પેઈજ ૫૬ કિંમત આઠ આના, (બીજી આવૃત્તિ).

(૨) સુપાત્ર દાનનો મહિમા યાને શ્રેષ્ઠિ ગુણસાર :— ૧૧ સુંદર ચિત્રો સહિત, સુપાત્ર દાન ઉપર સુંદર પ્રેરક જીવનકથા. પેઈજ ૭૦ કિંમત આઠ આના, (બીજી આવૃત્તિ).

(૩) જ્ઞાનપંચમીનો મહિમા યાને વરદત્ત ગુણમંજરી:— ૧૦ સુંદર ચિત્રો સહિત બોધદાયક બે જીવનકથા. પેઈજ ૭૦ કિંમત આઠ આના, (બીજી આવૃત્તિ મોટા ટાઈપમાં).

(૪) અખાત્રીજનો મહિમા :—ભાવવાહી ૧૯ સુંદર ચિત્રો સાથે શ્રી ઋષભદેવ પ્રભુનું સરળ અને ટૂંક જીવનચરિત્ર. પેઈજ ૧૧૨ કિંમત ૧૨ આના, (બીજી આવૃત્તિ).

(૫) મૌન એકાદશીનો મહિમા યાને સુવ્રત શેઠ :— ટૂંકમાં શ્રી નેમીનાથ પ્રભુ, શ્રીકૃષ્ણ અને સુવ્રતશેઠનું બોધદાયક ચરિત્ર. ૧૪ ચિત્રો સાથે પેઈજ ૮+૫૬=૬૪, કિંમત નવ આના.

(૬) પોષ દશમીનો મહિમા :—શ્રી પાર્શ્વનાથ અને સુરદત્ત શેઠનું પ્રેરણાદાયી ચરિત્ર. ૧૪ ભાવવાહી સુંદર ચિત્રો સાથે, પેઈજ ૧૬+૪૮=૬૪ કિંમત આઠ આના.

પ્રાપ્તિસ્થાન : **રમેશચંદ્ર મણિલાલ શાહ**

C/o મણિલાલ ધરમચંદ શાહ.

પાંજરાપોળ, જેશીંગભાઈની વાસ, ઘર નં. ૬૩૦. અમદાવાદ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीनेमि-अमृत-खान्ति-निरंजन-ग्रंथमाला-ग्रंथांक २७

श्रीमनमोहनपार्श्वनाथाय नमो नमः
शासनसम्राट् पू. पाद आ. श्रीविजयनेमिसूरीश्वराय नमः

संवत्प्रवर्त्तक—महाराजा-
विक्रम

मूलकर्ता :—

— ० —

अध्यात्मकल्पद्रुम, संतिकरं स्तोत्र आदि ग्रन्थ प्रणेता
कृष्णसरस्वतीबिरुदधारक परमपूज्य जैनाचार्य
श्रीमुनिसुंदरसूरीश्वरजी म. सा. के शिष्य
पू. पन्न्यासजी श्रीशुभशीलगणि.

—०)—

हिन्दीभाषा संयोजकः—शासनसम्राट् पूज्यपाद
जैनाचार्य श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी म० सा० के शिष्य
शास्त्रविशारद पू. आ. श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म. सा.
के शिष्य पू. मुनिराज श्री खान्तिविजयजी म. के शिष्य
साहित्यप्रेमी पू. मुनिराजश्री निरंजनविजयजी महाराज

विक्रम संवत् २००८] मूल्य पांच रुपये [वीर संवत् २४७८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकः—
श्रीनेमि–अमृत–खान्ति–निरंजन–ग्रन्थमाला
जशवंतलाल गिरधरलाल शाह
१२३८, रूपासुरचंदकी पोल अमदावाद
— प्राप्ति स्थान —
जसवंतलाल गिरधरलाल शाह
ठि. १२३८, रुपासुरचंदकी पोल, अमदावाद
पंडित भूरालाल कालीदास
सरस्वती पुस्तकभंडार, हाथीखाना रतनपोल, अमदावाद
मेता नागरदास प्रागजीभाई डोसीवाडाकी पोल, अमदावाद
रतीलाल वी. शाह डोशीवाडानी पोल, अमदावाद
पंडित अमृतलाल मोहनलाल संघवी
हठीभाईकी वाडी, अमदावाद
नगीनदास नेमचंद शाह डोशीवाडानी पोल, अमदावाद
सोमचंद डी. शाह सौराष्ट्र–पालीताणा
श्री मेघराज जैन पुस्तक भंडार,
ठि. पायधुनी, गोडीजीकी चाल, मुंबई. २
भालुभाइ रुगनाथ शाह
ठि. अंबाजी के वडके पासमें
भावनगर

मुद्रक:–पटेल अंबालाल चुनीलाल, श्री शक्ति प्रीन्टींग प्रेस
सलापोस क्रोस रोड, अमदावाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे अपने विचार

कोई भी देश, समाज या धर्म जब पतन के गहन गर्त की ओर जा रहा होता है महती कृपा रही है पूर्वकालीन इतिहास की उस गिरे हुए राष्ट्र, समाज और धर्म को ऊपर बहुत ऊपर ऊँचा उठाने में। तत्कालीन समाज के बारे में कोई भी विचारक निश्चय पूर्वक नही कह सकता कि 'हमारा आज का समाज अपने तांही अपने सिद्धान्तो के प्रति तटस्थ है'! यह अवश्य हें समाज में बसने वाले अधीकांश या अल्पांश व्यक्तियों में सिद्धान्तों के प्रति आस्था तो मिलेगी लेकिन कर्म के क्षेत्र में उस अनुसार गति नहीं मिलेगी-व्यवहार नहीं मिलेगा। तो आज के एसे संक्रान्ति कालीन युगमें हमें एक एसे तत्त्व की आवश्यकता है जो हमारा प्रतीकत्व करें! स्वाभाविक हो जाता है प्रेरणाप्रदः प्रतीक को ढूंढने के लिए हमारी निगाह भी हमारे अतीत के स्वार्णिक इतिहास की ओर जाय!

पू. मुनि श्रीनिरंजनविजयजी महाराजश्रीद्वारा मूल संस्कृत से भावानुवादित यह **विक्रमचरित्र** आप लोगों के हाथ में है। विक्रमचरित्र भारतीय इतिहास के स्वर्णिककाल की एक महान घटना है और महान् घटना हम भी कुछ महान् घटित करे इस प्रकार के उत्साह की, तत्वकी जीवनदायिनी हुआ करती है।

जीवन निरन्तर आगे बढ़ने का नाम है और हरकोई आगे बढना चाहता है, बढने की गति में शैथिल्य हैं अथवा उत्साह यह बढने वाले की शक्ति पर निर्भर है—भावना पर निर्भर है। हरकिसी को आगे बढना चाहिये यह एक आदर्श है और आदर्श बड़े होने ही चाहिये पर आदर्शों को जीवनमें उतारना और निभाना आसान नहीं हुआ करता उसके लिए आगे बढ़ने की क्रियामें जो जीवन का उत्साह दे सके ऐसे तत्त्व का होना आवश्यक हुआ करता है यदि ऐसा तत्त्व मिल जाय तो आदर्शों को निभाना आसान नहीं तो मुश्किल भी नही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहता । मैं सोचता हूँ विक्रमचरित्र आदर्शों को निभवा सकने में समर्थ एसे तत्त्व का प्रेरणा स्तोत्र रहेगा और हमारा प्रतिकत्व होगा।

हिन्दी का भंडार आज बहुत समृद्ध और एक प्रौढावस्था को प्राप्त हो चला है। विश्व साहित्य के समक्ष हिन्दी साहित्य भी अब अपना एक विशिष्ठ स्थान रखने लगा है–इस प्रकार की मान्यता पाश्चात्य विद्वानो में चल पड़ी है यह हमारे गौरवकी बात है। अनुवादक के कथनानुसार यह पुस्तक हिन्दो में उनका प्रथम प्रयास है भाषा की दृष्टि से मेरे अपने विचार से यह पुस्तक आज के हिन्दी साहित्य का प्रतिनिधित्व नही हो सकती। हमारी भारतीय परम्परा कंही भी कैसी भी परिस्थिति में कुछ न कुछ गुण–सार ग्रहण करनेकी प्रणाली को विशेष महत्व देती रही है उस दृष्टि से भी यदि हम इस पुस्तक से भाषा न सही श्रेष्ठ चरित्र के तत्त्वो को ही जीवन में उतार सकने की ओर अग्रेसर भी हो सके–में समझता हूँ हम बहुत काफी कर दिखायेंगे और कौन जाने इन तत्त्वों के सहारे ही हममेंसे कोई विक्रम पेदा हो और विक्रम कर–दिखा गिरे हुए को ऊपर उठा सकने में सफल हो सके! यदि किसी में प्रतिभा है तो उस प्रतिभा का प्रकाशन उसके द्वारा होना आवश्यक है यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह एक प्रकार की आत्महत्या है–प्रतिभा इसलिए है कि वह अभिव्यक्ति पाये न कि कुंठित हो। इसलिए अनुवादक को हमारी ओर से प्रोत्साहन मिलना ही चाहिये जिससे आगे चल कर वह हमें ऐसे ही कुछ और तत्त्व, चरित्र, दे सके जो भाषा की दृष्टि से भी ऊँचे होंगे-होने ही चाहियें।

इति

१६ अप्रेल १९५२
अमदावाद

शशीकान्त बनोरिया
"विशारद"

प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री आदिनाथ

४० रोचनीय कलामय चित्र सहित,

प्रथमावृत्ति अति अल्प समयमें खतम हो जाने के कारण

द्वितीयावृत्ति मुद्रित की गई है। जिसमें परमात्मा ऋषभदेव के समयमें हुए युगलियें कैसे थे, उस समय जनता व्यवहारसे अनभिज्ञ थी, उन लोकों को परमात्मा श्री ऋषभदेवने कौनसी ? कलाएँ शिखाई, उनमें धर्मका प्रभाव और प्रचार किस तरह किया, उन के पूर्वभव भी अच्छी तरह बतलायें, उनके पुत्र परिवार भरत, बाहुबलि आदिका रोचनीय वर्णन और अक्षय–तृतीया पर्वकी उत्पत्ति किस कारण से हुई, यह सब वृत्तान्त आपको अच्छी और सरल भाषामें बोधदायक सुहावने चित्रोंके साथ पढने के लिये प्रकाशित किया है। पृष्ठ २७२, ४० चित्र, मूल्य मात्र २-८-०

शिशु बोध सोपान ग्रंथावली का–सोपान पाँचवाँ

मौन एकादशी का महिमा याने सुव्रत शेठ

(सचित्र)

मौन एकादशी पर्वका स्वरूप और इस पर्वका आराधन दृढता पूर्वक करनेवाले **सुव्रत शेठ** का कथानक इस किताबमें सरल भाषामें दीया गया है, प्रासंगिक सुंदर चित्र १४ दिये गये है, मूल्य मात्र ०-९-०

प्राप्तिस्थानः—**जसवंतलाल गिरधरलाल शाह**

१२३८ रूपासुरचंद की पोल, अमदावाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिश्रम लेकर यह अनुवाद तैयार किया है। अतः हमें पूर्ण विश्वास है कि यह अनुवाद सर्वत्र उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि एक तो इसकी भाषा हिन्दी है और दूसरे इसका विषय सर्वग्राही रोचक कथा का है। इसके अतिरिक्त आज तक इस विक्रमचरित्र का पूर्ण अनुवाद किसी भी भाषामें प्रगट नहि हुआ। प्रथमभागमें प्रथम सर्ग से सातमा सर्ग तक का अनुवाद का समावेश किया गया है, दूसरे भागमें आठवें सर्गसे बारवा सर्गमें मूल चरित्र पूर्ण होगा, बाद में 'ग्रंथमाला' की उमेद है कि महाराजा **विक्रमादित्यके** जीवनके साथ संबंध रखनेवाली **सिंहासनबतीसी** और **वैतालपच्चीशी** भी तैयार करें किन्तु व भाविकालकी अभिलाषा भवितव्यता के उपर छोड़कर कथन पूर्ण करते हैं।

धन्यवाद

साहित्यप्रेमी प. पू. मुनिवर्य **श्रीनिरंजनविजयजी** महाराजश्री के सदुपदेशसे बम्बईनिवासी शेठ श्री खेताजी धन्नाजी की पेढीवाले शेठश्री **चुनीलाल** भीमाजी दादईवालेने वि. सं. २००५ में रु. २००) प्रथम देकर विक्रमचरित्र को छपवाने की शुरूआत कराई हैं इसलिये वे धन्यवाद के पात्र है, साथ ही साथ शेठश्री **समरथमलजी** केसरीमलजी को भी धन्यवाद दिया जाता है जिन्होने आगेसे रुपये १२५ दिये है। तथा जावालनिवासी श्री **ताराचंद मोतीजी**, श्री **रीखवदास खीमाजी** तथा श्री **मगनलाल कपूराजी** आदि धर्मप्रेमी श्रावकोने भी यह कार्यमें सहायता करनेकी अभिलाषा बतलाई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् श्रीनेमिनाथ अने श्रीकृष्ण

इस पुस्तक में त्रिकालज्ञानी कथित जैन साहित्यदृष्टिसे छ्यासी हजार वर्ष पूर्व हुए भगवान श्रीनेमिनाथ, कृष्णवासुदेव, बलदेवजी, वसुदेवजी, यादव, पाण्डव, कौरव सत्यभामा, रूक्मणि, शाम्ब, प्रद्युम्न, जरासंध, कंस आदिका जीवन-परि य व द्वारिकादहन और श्रीकृष्णके आगामी भवका वृत्तान्त बोधक–सरल व संस्कारि त शैलीमें पढने मीलेगा । ३४ चित्र, २०८ पृष्ठ, मू. २,

पोषदशमीका महिमा याने श्रीपार्श्वनाथ और सुरदत्तचरित्र

(सचित्र) पोषदशमी पर्वका स्वरूप और वर्णन करने के साथ २ श्री· पार्श्वनाथ भगवान का सरल और बोधक जीवन–चरित्र अच्छे भाव-वाही चित्रों के साथ इस किताबमें पढिये। पोषदशमी पर्वकी आराधना करनेवाले सुरदत्त शेठका प्रेरक चरित्र और साथ सुंदर १४ चित्र भी दिये गये है, मूल्य मात्र ०–८–०

प्राप्तिस्थानः–जसवंतलाल गिरधरलाल शाह
१२३८ रुपासुरचंद की पोल, अमदावाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक की ओरसे

पाठकोंके कर कमलोंमें यह पुस्तक रखते हुए हम आनंदका अनु. भव करते हैं। श्लोकबद्धविक्रमचरित्रके मूल कर्ता 'श्रीअध्यात्मकल्पद्रुम' और 'श्रीसंतिकरं स्तोत्र' आदि अनेक ग्रंथप्रणेता 'कृष्णासरस्वती' बिरुदधारक परमपूज्य जैनाचार्य श्रीमद् **मुनिसुंदरसूरीश्वरजी** महाराज साहेबके शिष्यरत्न **पू. पन्न्यासजी श्रीशुभशीलगणिवर्य** महाराज हैं। उन्होने विक्रमसंवत् १४९० (वीर सं. १९६०) में स्थंभनतीर्थ–खंभातमें संस्कृत काव्यरूपमें रचना की हैं उसमें रोमाञ्चक अनेक कथायें, तथा नीति और उपदेशके अनेकानेक श्लोकोंसे ठोंस भरा हुआ है व जिज्ञासु सज्जनोंको अति उपकारक होगा इस आशयसे नीति और उपदेशके बहोतसे श्लोक इस अनुवादमें भी अवतरण कीये गये है।

हिन्दीभाषा के संबोधकः–शासनसम्राट् तपागच्छाधिपति प्राचीन अनेकानेक तीर्थोद्धारक, न्याय–व्याकरण आदि अनेक ग्रन्थके रचयिता पू. भट्टारक–आचार्य **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा.** के शिष्य शास्त्रविशारद कविरत्न पू. आचार्य श्री **विजयामृतसूरीश्वरजी म. सा.** के शिष्य पू. **मुनिवर्य श्रीखान्तिविजयजी म.** के शिष्य **साहित्यप्रेमी** पू. मुनिराजश्री **निरंजनविजयजी** महाराजश्रीने अत्यन्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने बाहुबलसे भारतवर्षको ऋणरहित

करनेवाला संवत्प्रवर्तक

महाराजा विक्रमादित्य

[मु. नि. वि. सं. विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शासनसम्राट्-तपोगच्छाधिपति-अनेकनृपप्रतिबोधक-कदम्बगिरि
आदि विविध तीर्थोद्धारक-प्रौढप्रभावशाली-परमपूज्य
आचार्य श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज साहेब.

जन्मः वि सं. १९२९ कार्तिक शुद १   दीक्षाः वि सं. १९४७ ज्येष्ठ शुद ७
गणिपदः वि. सं १९६० कार्तिक वद ७   प. पदः वि. सं. १९६० मागशर शुद ३
सूरिपदः वि. सं. १९६४ ज्येष्ठ सुद ५
स्वर्गवास : वि. सं. २००५ आसो वद अमास. (दीवाली) शुक्रवार-महुवा.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमदावाद मस्कती मारकीट की जैन मारवाडी कमिटि की अतिआग्रहभरी विनंती से पर्वाधिराज पर्युषणा पर्वमें श्री संघको पर्व–आराधना कराने के लिये वि. सं. २००७ और २००८ में पूज्य गुरुमहाराज श्री की आज्ञानुसार पूज्य मुनिवर्यश्री निरंजनविजयजी म. श्री पधारे थे, इन सालेमें श्री संघने अत्यन्त उल्लास भावसे पू. महाराजश्री की निश्रामें पर्व–आराधना एवं समयानुसार शासनप्रभावना के अनेक शुभकार्य किये। वि. सं. २००८ में यह हिन्दी **विक्रमचरित्र** छपवाने में हमारी ग्रंथमालको आर्थिक सहाय देने के लिये पूज्य महाराजश्रीने उपदेश दिया, शेठ **छगनलाल पुनमचंदजी, वालुभाइ** मगनलाल तथा **समरथमल हेमाजी** आदिकी प्रेरणासे जो जो महानु-भावोने यह पुस्तक के प्रथम ग्राहक बनकर **ग्रंथमाला** को प्रोत्साहन दिया है उन महाशयोंका आभार मान्ते हैं और इसी तरह हमारी शुभ प्रवृत्तिमें पुनः पुनः सहायक होवे, यही शुभेच्छा रखते है।

प्रकाशक

आगेसे बने हुए ग्राहक नीचे मुताबिक है ।

नकल

११ शेठश्री छगनलालजी पूनमचंदजी
मस्कती मारकीट, अमदावाद

११	,,	भगवानजी पूनमचंद	,,	,,
११	,,	कस्तुरचंदजी त्रिलोकचंदजी	,,	,,
११	,,	कुन्दनमलजी समरथमलजी	,,	,,
११	,,	अचलदासजी धरमचंदजी	,,	,,
११	,,	चंदाजी मिश्रिलालजी	,,	,,
११	,,	कृष्णाजी डाह्याजी	,,	,,
११	,,	कपूरचन्दजी आईदानजी	,,	,,
११	,,	चुनीलालजी चंदनमलजी	,,	,,
११	,,	चुनीलालजी दीपचंदजी	,,	,,
११	,,	रूपचंदजी डाह्यालालजी	,,	,,
११	,,	रतनचंदजी जेठमलजी	,,	,,
११	,,	कान्तिलाल चीमनलाल	,,	,,
७	,,	छगनलाल वनेचंद	,,	,,
७	,,	सुलतान सुकनचंद	,,	,,
५	,,	हीराचंदजी दीपचंदजी	,,	,,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५	,,	मूलचंदजी आशारामजी	,,	,,
५	,,	केसरीमल कस्तूरचंदजी	,,	,,
५	,,	गोविन्दराम वनेचंदजी	,,	,,
५	,,	अमृतलाल गीरधारीलाल	,,	,,
५	,,	हजारीमलजी धरमचंदजी	,,	,,
५	,,	भीमराजजी धरमचंदजी	,,	,,
५	,,	चंदनमल करणदानजी	,,	,,
		(अचलदास सुकनराजजी वाले)		
५	,,	अचलदास नवलमलजी	,,	,,
५	,,	ललूभाई वनेचंद	,,	,,
५	,,	लालचंद राजमल	,,	,,
५	,,	ताराचंद जवानमलजी गौरव		मु. जावाल
५	,,	भीमाजी हंसराजजी		ह. हंसराज
५	,,	जसराज केरींगजी	,,	
५	,,	भीमाजी फूलचंदजी	,,	
५	,,	गणेशमल वनेचंदजी	,,	
५	,,	मानाजी रमणलाल	,,	पूना
५	,,	लालचंद सरदारमल	बम्बई	,,
५	,,	मणिलाल बेचरदास	ह. हंसराज	
५	,,	उमेदमल रीकबाजी राठोड		मु. सेवाडी
५	,,	चुनीलाल वीरचंद कापडीया भरूच		
५	,,	गणेसमलजी वक्तावरमलकी कुंपनी अमदावाद		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५	,,	हीमतमलजी हीराचंदजी	,,
३	,,	मीठालाल मेलापचंद	,,
३	,,	चंदनमल बादरमलजी	,,
२	,,	हेमराज वनाजी	मु. साचोर
२	,,	सागरमलजी धरमचंद	अमदावाद
२	,,	कस्तुरचंद हजारीमल	अमदावाद
२	,,	मगनलाल कस्तुरचंद	,,
२	,,	मोतीलाल नेमिचंद	,,
२	,,	झवेरचंद रुपाजी	मु. मैसुर
१	,,	सरदारमल हजारीमल वेलाजी	मु. सेवाडी
१	,,	त्रीकमलाल हरिलाल श्रोफ	अमदावाद
१	,,	छगनलाल चुनीलाल	,,
१	,,	हेमचंदजी लखाजी, मंडार, ह. समरथमल	
१	,,	अमरचंद हीराचंद	बाली
१	,,	भोजीलाल सुखलाल शाहपुर दरवाजाका खांचा	
१	,,	मीश्रीमल छोगालाल	साचोर
१	,,	हुकमीचंद छगनलाल	अमदावाद
१	,,	धरमचंद दानमल वनाजी	मु. मांडाली
१	,,	दरगाजी चुनीलाल	मु. कोरेगांव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयोजकका प्राक् कथन.

अनुवाद करनेकी अभिलाषा कब हुई ?

विक्रम संवत् १९९० में जो अखिल भारतवर्षीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि संमेलन राजनगर--अमदावाद में समारोह पूर्वक अच्छी तरह समाप्त हुआ था उसमें श्री जैन समाज के लिये लाभप्रद

अनेक शुभ प्रस्ताव किये गये थे, उसमें से एक प्रस्तावके फलस्वरूप "श्री जैनधर्मसत्यप्रकाशकसमिति" का प्रादुर्भाव हुआ और क्रमशः उस समिति द्वारा "श्री जैनसत्यप्रकाश" नामक मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा, उस 'मासिकका' क्रमांक १०० को विक्रमविशेषांक के रूपमें तैयार करनेका समितिने निर्णय किया, उस निर्णय के अनुसार सम्राट् विक्रमादित्यका चलाया हुआ विक्रम संवत् के २००० वर्ष पूर्ण होते थे, उस समय संवत्की दूसरी सहस्राब्दीके पूर्णाहूति और तीसरी सहस्राब्दीके आरंभ कालमें विक्रम विशेषांक प्रगट करनेकी जाहेरात की गइ और सं. १९९९ के चातुर्मास अन्तर्गत श्रीपर्यूषणा–पर्वाधिराजके आसपास के कालमें 'श्री जैन धर्म सत्य प्रकाशक समिति' ने विक्रम विशेषांक के लिये विद्वान पूज्य मुनिवरादि तथा अन्य लेखकोंको महाराजा विक्रम संबंधि लेख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिखकर भेजने के लिये मासिक और पत्रिकाद्वारा विनंति की, तदनुसार मेरे पर भी लेखके लिये समितिका आमंत्रण आया।

उस समय में सौराष्ट्रमें प्रसिद्ध श्रीमहुवाबन्दरमें **शासनसम्राट्**, **परमोपकारी, परमकृपालु,** पूज्यपाद आचार्य **श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी** **महाराजकी** निश्रामें विक्रम संबंधी ऐतिहासिक सामग्रीका यथाशक्ति अन्वेषण कर पूज्य गुरु देवकी कृपासे फुल्सकेप कागजका २२ पेजका गुजराती लेख लिखकर समितिको भेजा था, वह लेख **'मालवपति विक्रमादित्य'** के हेडींगसे उस अंकमें छप चूका है। *

उपर्युक्त लेख लिखते समय पूज्य पंन्यास प्रवर **श्रीशुभशीलगणि** महाराज रचित श्लोकबद्ध **श्रीविक्रमचरित्र** पढते समय उसका अनुवाद करने की मेरे दिलमें इच्छा जाग्रत हुई। जैसे जैसे में विक्रमचरित्र आगे आगे पढता गया वैसे वैसे उसमें नीतिशास्त्रके उपदेशक श्लोक ठोससे भरे हुए देखे तो लोको को अति उपयोगी होगा ऐसा जानकर उसका अनुवाद करनेकी अभिलाषा तीव्र होने लगी, परन्तु अनेक प्रकारकी अन्य प्रवृत्तियाँ के कारण अभिलाषा मनमें ही रही। चातुर्मास पूर्ण होने के बादमें पूज्य गुरुदेवके साथ महुवासे **श्रीकदम्बगिरिजी** प्रति विहार हुआ और वहां आते ही परमपावनकारी श्रीतीर्थयात्रादि प्रवृत्तिमें लगे, वहाँसे गिरिराज श्रीशत्रुंजय महातीर्थकी यात्रा करके

* *यह लेख छोटी पुस्तकके आकारमें गुजरातीमें छप चूका है। अप्राप्य होनेसे अब वह पुस्तिका पुनः सचित्र रूप छपनी वाली है।*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीवल्लभीपुरकी ओर पूज्यपाद गुरुदेवका विशाल परिवारके साथ विहार हुआ, क्रमशः वि० सं० २००० का चातुर्मास स्थंभनतीर्थ–खंभातमें तथा वि० सं० २००१ और २००२ का यह दोनो चातुर्मास अमदावाद हुए। इन चारों चातुर्मासोमें पूज्य गुरुदेवकी शुभ निश्रामें जिनमन्दिरप्रतिष्ठा आदि शासनप्रभावना के अनेकानेक चिरस्मरणीय कार्य हुए जिसकी निराली नोंध आवश्यक है।

वि० सं० २००२ की सालमें अतिप्राचीन महाप्रभावक श्रीशेरीसाजीतीर्थकी प्रतिष्ठा बडी धामधूमसें पूज्य शासनसम्राट् गुरुदेवके परम पवित्र हस्त कमलोसे हुई।

मैने महुवा, खंभात और अमदावाद के दो मीलकर चारें चातुर्मास शासनसम्राट् परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेवकी पवित्र निश्रामें किये, तथा महुवामें पांच उपवास की और खंभातमें छे उपवासकी तपस्या गुरुकृपासे मेरे पूर्ण आनंदसे हुइ और इन चारों चातुर्मासोमें विविध ग्रन्थोका वाचन एवं श्री उत्तराध्ययनसूत्रके योगोद्वहन तथा भक्ति–वैयावच्च आदि स्व आत्माको हितकारी अनेक शुभ प्रवृत्तियाँ हुई इसके लिये मैं परम पूज्य गुरुदेवका अत्यन्त ऋणी हूं। इससे यह अनुवादका काम मनमें अभिलषित ही रहा।

वि० सं० २००१ में पू० आ० श्रीविजयोदयसूरीश्वरजी महाराजश्रीके पास श्रीकेशरीयाजी महातीर्थ और श्रीराणकपुरजी महातीर्थकी शीघ्र यात्रा होवे इस आशयसे अमुक मर्यादा रखकर अभिग्रह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कीया था, यह मर्यादा पूर्ण होंने आई, यात्राके लिये विहार करनेका विचार मैं कर रहा था। पूज्य मुनिराज श्रीशिवानंदविजयजी महाराजको भी राणकपुरजीकी यात्रार्थ कुछ समयसे अभिग्रह था, उनको मैंने यात्रा निमित्तक विहार करनेकी इच्छा व्यक्त की, उन्होंने भी अपनी इच्छा बतलाई, क्रमशः हम दोनोने पूज्य गुरुदेवके पास यात्रा करने की अभिलाषा दर्शाई, परमोपकारी शासनसम्राट् गुरुदेवश्रीने प्रशांतचित्त होकर शुभ आशीर्वाद पूर्वक विहार करनेकी हम दोनोकों आज्ञा प्रदान की। वि० सं० २००३ के महामासमें जैन सोसायटीसे विहार कर शेरीसा, पानसर, शंखेश्वरजी, कंबोई, चाणस्मा आदि तीर्थोंकी यात्रा करते करते तारंगाजी, कुम्भारीयाजी, होते हुए चैत्र सुदि पंचमीको श्री-आबुजी पहोंचे वहाँ श्रीसिद्धचक्रजी आयंबिलकी ओली की। अचल-गढकी यात्रा कर आबु—देलवाडासे अनादराके रास्तेसे नीचे उतरकर क्रमशः मीरपुरकी यात्रा करके पाडीव होकर वैशाख सुदि दुजके दिन जावाल आये।

जावाल पहोंचे और मंगलाचरण—प्रथम व्याख्यानमें ही श्रीसंघने चातुर्मासके लिये आग्रहपूर्वक विनंति की, परन्तु पूज्य मुनिवर्य श्रीशिवानंदविजयजी महाराज तथा मेरी इच्छा यह थी के 'चातुर्मासके पहीले ही गोडवाड प्रान्तीय बडी पंचतीर्थीकी—श्रीवरकाणाजी, श्रीराण-कपुरजी आदिकी यात्रा कर लेनी और चातुर्मासके बाद तुरत ही श्रीकेशरीयाजी महातीर्थकी यात्रा कर पूज्यपाद गुरुमहाराजकी निश्रामें पहुंच जाना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रविशारद-कविरत्न-पियूषपाणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्यपादाचार्य श्रीविजयअमृतसूरीश्वरजी म. के शिष्य
पू. मुनिराजश्री खान्तिविजयजी महाराज.

इस पुस्तकके संयोजक

दीक्षा :
संवत १९९१
चैत्र वद २
कदम्बगिरी
महातीर्थ
(सौराष्ट्र)

वडीदीक्षा :
संवत
१९९१
जेठ सुद १२
महुवा तीर्थ
(सौराष्ट्र)

पू. मुनिराजश्री निरंजनविजयजी महाराज
(जन्म : बाली मारवाड)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जावालका श्रीसंघ देव गुरु धर्मप्रेमी एवं शासनसम्राट् गुरुदेवश्रीके प्रति अति श्रद्धावान होने के कारण तार और पत्रद्वारा अमदावाद स्थित पू० गुरुदेवको हमारे दोनोंका चातुर्मासके लिये विनंति की ओर आज्ञा मांगी। जावाल श्रीसंघका अत्यन्त आग्रह होनेके कारण गुरुआज्ञानुसार हम दोनोंका चातुर्मास वहाँ ही हुआ। इस चातुर्मासमें श्रीसंघके आगेवानोने शासनप्रभावनाके अनेक शुभ कार्य उत्साहपूर्वक किये।

यह वि० सं० २००३ का उपर्युक्त चातुर्मासमें दीर्घकालसे मनमें अभिलषित जो इच्छा थी उसको शास्त्राध्ययनमें सदा उद्यत श्रीमान् **ताराचंदजी मोतीजीकी** सत्प्रेरणासे मीली और यह **हिन्दी विक्रमचरित्र** लिखना आरंभ कीया, वहाँ स्थिरता कालमें करीब तीन सर्गका अनुवाद कीया, चातुर्मास खतम होनेसे दीयाणा, लोटाना, नादीया, बामणवाडा आदि मारवाडकी लघु पंचतीर्थीकी यात्राके लिये श्रीसंघकी अग्रेसर व्यक्तियोंकी तरफसे छोटाशा संघरूपमें प्रयाण कीया उस छोटा सा संघमें ताराचंद मोतीजी, भभूतमल भगवानजी, पुनमचंद मोतीजी आदि सपरिवार साथ थे, उनोंने सब तीर्थस्थलोमें उल्लास भावसे समयसर द्रव्यव्यय अच्छा कीया था। उपर्युक्त संघ निर्विघ्न बामणवाडा पहुंचा। जावालका श्रीसंघ जावाल वापिस लोटा और हम दोनों मुनियोने पिंडवाडाके प्रति विहार किया।

क्रमशः पींडवाडा, अजारी, नाणा, बेडा, श्रीराता महावीरजी—बीजापुर होकर सीवगंज आये, और मौन एकादशी कर वहाँसे क्रमशः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीकोरटाजी तीर्थकी यात्रा कर **जाकोराजी** तीर्थकी यात्रा कर खीमेल होकर राणीगाँव आये। यहाँ पर बीजोवा श्रीसंघके आगेवान बीजोवा पधारनेके लिये विनंति करने आये थे। वहाँसे **बीजोवा** आये। यह पूज्य मुनिवर्य **श्रीशिवानंदविजयजी** म. की जन्मभूमि थी और दीक्षाके बाद प्रथम ही करीब २० वर्षसे यहां आवागमन हुआ, उससे कुटुंबीजनमें और सारा श्रीसंघमें अत्यन्त उत्साहका वातावरण दिखाई दे रहा था, स्वजन और श्रीसंघने अट्ठाइ–महोत्सव, पूजा, प्रभावना, व्याख्यानश्रवण आदि शासनप्रभावनाके शुभ कार्य अच्छे किये थे। १५–२० दिनकी हमारी अल्प स्थिरतामें भी श्रीसंघने शासनप्रभावनाका अच्छा लाभ लीया, एवं चातुर्मासके लिये अति आग्रहसे विनंति की।

पोष वदि १० का श्रीवरकाणाजीमें श्रीपार्श्वनाथजीका जन्म-कल्याणकका मेला था। उस अवसर पर बिजोवासे विहार कर श्रीसंघके साथ वहाँ आये, श्रीवरकाणाजी तीर्थपति श्रीपार्श्वनाथजी के दर्शन कर जन्म सफल किया। यहाँ मेरे संसारीपक्षके बडे भ्राता **श्रीमूलचंद हजारीमलजी** आदिने बाली पधारनेकी आग्रहपूर्ण विनंति की, किन्तु यहाँसे पुनः बिजोवा जाना था उससे बाली जानेका कुछ निश्चित निर्णय नहि किया, वरकाणाजीसे बिजोवा आये बाद में मूलचंदजी बालीके श्रीसंघके आगेवान व्यक्तियोंको लेकर पुनः विनंति करने बिजोवा आये। मूलचंदजीने बीजोवामें घर दीठ श्रीफलकी प्रभावना की। आग्रह पूर्ण विनंति के कारण बिजोवासे **रवाणी** होकर बाली आये, दीक्षाके बाद पंद्रह वर्षके अनन्तर प्रथम ही यहाँ आगमन होनेके कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वजनादि तथा साराही श्रीसंघमें अत्यंत उत्साहका वातावरण फैल गया, श्रीमूलचंद हजारीमलजी, उमेदमल हजारीमलजी तथा कपूरचंद सागरमलजी आदि श्रीसंघने १५–२० दिनकी अल्प स्थिरतामें भी प्रशंसनीय लाभ लीया। एवं चातुर्मासके लिये भी श्रीसंघने विनंति की, परन्तु हमे पंचतीर्थीकी यात्रा कर शीघ्रही श्रीकेशरीयाजी तीर्थकी यात्रा कर पूज्य गुरु महाराजकी निश्रामें आनेका विचार था, इसलिये बीजोवा, बाली, सादडी आदि गाँवोकी आगामी चातुर्मासके लिये अत्यन्त आग्रह-पूर्ण विनंतिको अस्वीकार करना पडा क्रमशः मुंडारा, सादडी, नाडोल, नाडलाई, घानेराव विगेरे राणकपुरजी होकर मेवाडका पाटनगर उदेपुरसे श्रीधूलेवामंडण श्रीकेसरीयाजीकी यात्रा कर फाल्गुणका मेला कर ईडरके रास्तेसे अमदावाद पूज्य आचार्य श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराज साहेबकी निश्रामें चैत्रसुदिमें आये, सं. २००४ के वैशाखमासमें वढवाण शहरमें पू. पा. शासनसम्राट् गुरुदेवकी शुभ निश्रामें श्रीअंजनशलाका व प्रतिष्ठा होनेवाली थी, उस अवसर पर वहाँ जानेकी मेरे मनमें तीव्र अभिलाषा थी किन्तु गरमीकी तासीरके कारण अमदावादमें ही स्थिरता हुई।

खंभातके ओसवाल श्रीसंघका आगामी चातुर्मासके लिये अति आग्रह होनेके कारण पूज्यपाद आ. श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म. सा. की आज्ञानुसार सं० २००४ का चातुर्मास खंभातमें हुआ। श्रीगौतम पृच्छा और धन्य चरित्र व्याख्यानमें वांचा इस चातुर्मासमें श्रीसंघके आगेवानोने उत्साहपूर्ण समयानुसार शासनप्रभावना अच्छी तरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की, व्याख्यान आदि प्रवृत्तिके कारण इस चातुर्मासमें भी अन्यान्य प्रवृत्तियोंके कारण विक्रमचरित्रका हिन्दी अनुवाद करनेका कार्य आगे न चला और खंभात से विहार कर पुनः अमदावाद आये। पूज्य आ० श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म० सा० की निश्रामें मेरे विद्यागुरु पू० मुनिवर्य **श्रीरामविजयजी** महाराजके एक नेत्रमें मोतीयाका ओपरेशन करवाया, कुच्छ शान्ति होने के बाद पू० आ० श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी म० सा० बोटादमें गांव बाहर–पराके मन्दिरकी प्रतिष्ठाके अवसर पर पधारते थे, उस समय मैंने भी बोटादके प्रति विहार के लिये तैयारी की किन्तु एकाएक मेरा शरीर रोगापत्तिमें गिरा, इस लिये मेरा विहार बंद रहा और अमदावादमें मेरी स्थिरता हुई। शरीर स्वस्थ होनेके बाद विक्रमचरित्र का हिन्दी अनुवादका कार्य पुनः आरंभ किया और क्रमशः आगे बढने लगा, **'ग्रंथमाला'** की तरफसे चित्र, ब्लोक वगेरे कार्य भी चलाया और छपवानेका विचार चल रहा था, किन्तु आवश्यक अनुकूलता न होनेके कारण छपवानेका कार्य आरंभ न हुआ और दिन–प्रतिदिन अधिक समय बीतने लगा, सं० २००५ का चातुर्मास अमदावाद ही पू. मुनिवर्यश्री रामविजयजी म. श्री की शुभ निश्रामें हुआ।

महुवामें सं० २००५ के आसो मासकी अमावास्याके दिन शासनसम्राट् परमोपकारी पूज्यपाद गुरुदेवका स्वर्गगमन होनेसे सर्वत्र जैन समाजमें शोक का बादल फैल गया, प्रभावशालि महापुरुषके स्वर्गवाससे सारे जैन समाजमें बडी भारी खोट पडी, क्या कीया जाय? **'तुट्टी उस की बुट्टी नहि'** यह लोकोक्ति अनुभव सिद्ध है। महुवामें जो शासन-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट् के जन्मस्थानमें ही चार मञ्जिलका उन्नत गगनसे बातें करता हुआ **श्रीनेमिविहार–देवगुरुमंदिर** करीब २० वर्षोसे तैयार हो रहा था उसकी प्रतिष्ठा संवत् २००६ के फागण मासमें करनेका निर्णय हुआ, उस उत्सवमें जानेके लिये मैंने विहारकी तैयारी की किन्तु एकाएक मेरे विद्यागुरु पू० मुनिवर्यश्री रामविजयजी म० सा० के दूसरे नेत्रमें मोतींयां ओपरेशन द्वारा उतारनेका निश्चय किया गया उस कारणसे मेरा महुवाके प्रति जानेका विहार बंध रहा। वि० सं० २००६ के फागण वदि अष्टमीसे **श्रीआदिनाथप्रभुके दीक्षा कल्याणक** दिनसे मैंने पूज्य मुनिवर्यश्री रामविजयजी महाराजकी शुभ निश्रामें **वर्षीतप** करना आरंभ किया; पूज्यश्रीके शुभ आशीर्वादसे ज्ञान–ध्यानपूर्वक वर्षीतप चल रहा था।

वि० सं० २००६ के चातुर्मासके लिये श्रीसंघके आगेवानोकी विनंतिसे पू० गुरुदेव पू० आ० श्रीविजयामृतसूरीश्वरजी महाराज साहब अमदावाद पधारे। इस चातुर्मासमें पू० आचार्यदेवकी शुभ निश्रामें मैंने **श्रीअनुयोगद्वारसूत्रकी वाचना** तथा **श्रीआचारांगसूत्र** के योगोद्वहन हुए और पूज्य आचार्य महाराजकी शुभ निश्रामें शासन प्रभावनाके अनेक शुभ कार्य पूर्ण उत्साहसे श्रीसंघने कीये, तथा पू० मुनिवर्य रामविजयजी महाराज आदि तीन पू० मुनिवरोको गणि पदार्पण निमित्तक श्रीसंघने महोत्सव कीया, कार्तिक वदि छट्ठको पू० गुरुदेव के पवित्र हस्तकमलोसें पांजरापोल उपाश्रय में तीनो पूज्य मुनिवरोंको गणिपदप्रदान कीया गया। सं० २००६ का चातुर्मास पूर्ण होते मेरे वर्षीतपका पारणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने श्रीसिद्धक्षेत्र तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय गिरिराजकी छायामें जानेकी अभिलाषा थी, किन्तु हमारे समुदाय के १६ पूज्य मुनिवरोंको वैशाख सुदि ३ अक्षयतृतीयाके दिन अमदावादमें पन्न्यास पदार्पण करनेका निश्चय हुआ था, उस अवसर पर हमारे परम गुरुदेव शासनसम्राट् का सारा शिष्य समुदाय अमदावादमें एकत्र होनेके कारण पारणा निमित्तक श्रीशत्रुंजयके प्रति विहार करनेका विचार मुल्तवी रखा। पन्न्यास पदार्पण निमित्तक महोत्सव, एवं शासनप्रभावना **श्रीजैनतत्त्व विवेचक सभाकी** तरफसे अच्छी तरह हुई। मेरा वर्षीतपका पारणा निमित्तक बम्बईसे बालीनिवासी शाह **मुलचंदजी हजारीमलजी** आये थे। पूर्ण उत्साहसे मेरा वर्षीतपका पारणा अमदावादमें ही हुआ।

इस पुस्तकको शिघ्र छपवाने का विचार ४--६ माससे चल रहा था। **पं० अमृतलालजीने** प्रेस संबंधी कार्य संभालना स्वीकार किया, बाद श्रावण मासमें पुस्तक छपवाना आरंभ किया गया, क्रमशः पांच मासमें ही प्रथम भाग छपचुका, शीघ्रताके कारण कोइ कोइ जगह शायद दृष्टिदोषसे और यंत्र--प्रेसदोषसे त्रुटियाँ रह गई हो, वह सुधार कर पढे क्योंकी सज्जन सदा हंसकी तरह सारग्राही होते हैं। कोइ विशिष्ट त्रुटि दिखाइ दे तो हमें सूचित करे जिससे पुनरावृत्तिके समय सुधारी जा सके।

इस पुस्तककी संयोजनामें मुझे अनेक हाथ सहायक हुए है, जो जो महानुभावोंसे हमे थोडी या बहुत किसीभी प्रकारकी मदद--सहाय मिली है उनके हम ऋणी है। इस पुस्तककी प्रेस कोपीको शिरोही निवासी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमृतलाल मोदीने १ से ६ सर्ग तकका भाषादृष्टि अवलोकन किया तथा प्रेस संबंधी कार्यमें तथा प्रुफ रीडींगके कार्यमें व्याकरणतीर्थ–वैयाकरण-भूषण **पंडित अमृतलाल मोहनलाल संघवीने** पूर्ण सहकार दिया व सदा स्मरणीय रहेगा।

इस ग्रन्थको हिन्दी भाषामें अनुवाद करनेकी आवश्यकताः–

हिन्दी भाषा हिन्दुस्तानके सभी प्रान्तोमें चलसकती है। मारवाड, मेवाड, मालवा, पंजाब, बंगाल तथा कच्छ, गुजरात, बिहार, मध्यप्रांत, युक्तप्रान्त,आदि सभी प्रान्तों की जनता हिन्दी भाषाको बोल या समज सकती है, इसी आशयसे ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद करनेकी आवश्यकता हमको लगी। यह अनुवाद सभी को उपयोगी हो इस लिये जहां तक हो सका संक्षिप्त, सरल और बोधक बनानेकी सामग्री समय और साधन के अनुसार हमने इकट्ठी करनेका प्रयत्न किया। अतः आशा रखता हूँ कि यह ग्रन्थ सभीको उपयोगी हो।

अन्य विद्वान साक्षरोंकी अपेक्षया मेरा हिन्दी भाषाका अभ्यास एवं अनुभव बहुत कम है। तथापि **'यथाशक्ति यतनीयम्'** इस प्राचीन उक्ति अनुसार मेरा यह अल्प मति अनुसार प्रयत्न बालजीवो को अवश्य बोधप्रद होगा यह निश्चत है।

एक अन्तिम अभिलाषाः–इस पुस्तकको जिज्ञासु वाचकोंके सन्मुख रखते हुए अन्तमें उनसे इतनी स्नेह भाव सूचना करना आवश्यक समझता हूँ कि इस ग्रन्थमें भाषा आदिकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई रही हुई त्रुटियोंको सुहृद्भावसे मुझे सूचित करेंगे। अपना उत्कर्ष चाहनेवाली व्यक्ति कभी अपनी कृतिको पूर्ण नही मान सकता, क्योंकी **कलका अनुभव आजकी दृष्टिसे अधुरा ही लगता है।** यह लोकोक्तिके अनुसार हमें भी यह ही अनुभव है।

इस ग्रन्थका प्रथम भाग छपकर तैयार होनेमें बहुतसा समय बिता, आज तक यह ग्रन्थ शीघ्र छपवानेके लिये अनेक सज्जनोने प्रेरणा की थी। उन प्रेरणाओंके फल स्वरूप ही इस समय यह ग्रन्थ पाठकोंके करकमलमें रखनेका अवसर पाया है।

शासनसम्राट्
श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी जैन ज्ञानशाळा
पांजरापोल, अमदावाद-
वि. सं. २००८,
चैत्रशुक्ला पंचमी, रविवार

—मुनि निरंजनविजय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमचरित्र का टुंकसार

[वाचक महाशयों को चाहिए कि किसी भी ग्रन्थका रसास्वाद सचमुच ही आकण्ठ तृप्ति के लिये पाना हो तो ग्रन्थ—परिचय व उनकी प्रस्तावना शुरू शुरु में ही दृष्टिगोचर कर लेवे। इसी मान्यता से मैंने सबसे प्रथम ग्रन्थ परिचय लिखने का प्रयत्न किया है। आशा है कि वाचकगण इसका अति प्रेमसे आदर करेंगे और उपयोग करेंगे।]

सर्ग पहला.......... पृष्ठ १ से ६३....... प्रकरण १ से ९

प्रकरण प्रथम . . . . पृष्ठ १ से ९ तक

अवन्ती का पूर्व परिचय

शुरु शुरु में यह ग्रन्थ बनाने में निमित्तभूत जगप्रसिद्ध अवन्ती नगरी का परिचय और उनके अधिपति राजा गन्धर्वसेनका वर्णन बतलाया है। बादमें महाराजा का स्वर्गवास व उनके दो पुत्रमें से मुख्य पुत्र राजकुमार भर्तृहरिका राज्याभिषेक हुआ और उनकी पत्नी पट्टरानी अनङ्गसेना (पिंगला)ने भर्तृहरिद्वारा छोटा भाई युवराज विक्रमादित्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का अपमान होनेसे अवन्तीनगरी का त्याग करके अवधूतवेषमें भ्रमण करने की इच्छासे भट्टमात्र की मित्रता की और दीनवचनोंसे रोहणगिरि से रत्न को पाया किन्तु कर्मवीर पुरुष को सिद्धान्त से विरुद्ध होनेसे और याचनाद्वारा पानेसे उसको वहाँ ही फेंक दीया। सत्त्वशील पुरुषरत्न प्राणत्याग को श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु याचना नहीं करते। यह आप इस प्रकरण के अंतमें पढेगें और प्रकरण समाप्त होगा। अब आगे क्या होता है वह देखिये।

प्रकरण दूसरा . . . . . पृष्ठ १० से १३ तक

तापीके किनारे

महाराजा विक्रमादित्यने याचनाद्वारा पाये हुए रत्नको फेंक दीया और रोहणगिरि को धिक्कार देकर मित्र भट्टमात्र के साथ तापी के किनारे पर किसी पेड़के नीचे बैठे है वहाँ शृगाल के शब्दों से आभूषण युक्त शब और एक मासमें राज्य प्राप्ति का संकेत सुनना और भर्तृहरि का राज्य त्याग और उनका तप करने जाना और भाग्यकी परीक्षाके लिये विक्रमादित्य का अवन्ती प्रति गमन करना और राजा भर्तृहरि के राज्यगद्दी छोड़ने के कारणों को अब आप अगले प्रकरणमें पढेंगे।

प्रकरण तीसरा . . . . . पृष्ठ १४ से २० तक

राजा भर्तृहरिका दरबार

जगत्के प्रगतिशील देशोमें सर्व श्रेष्ठ देश मालवदेश व उनकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य राजधानी का शहर अवन्ती, और उसकी कुदरती रचना व वहाँ का राजमहल का वर्णन आप इस प्रकरणमें पढेंगे । बादमें राजसभामें राजा भर्तृहरि के पास द्वारपाल द्वारा किसी ब्राह्मण का आगमन पढेंगे। साथ साथ ही वह ब्राह्मण राजाको दिव्य फल भेंट करता है उस फलका वर्णन व यह बात आपको कुतूहल बढाकर आगे क्या हाल होगा इसी इन्तेजारीमें रखकर यह प्रकरण खतम होता है।

प्रकरण चौथा . . . . . पृष्ठ २१ से २९ तक

भर्तृहरिका संन्यास ग्रहण

यह प्रकरण आपको आश्चर्य मुग्ध बनायगा क्योंकी अवन्ती जैसी नगरी के वैभवों को छोड़कर महाराजा भर्तृहरि सन्न्यस्त ग्रहण करने के लिये चले जानेमें मुख्य कारणभूत पट्टरानी अनङ्गसेना का स्त्रीचरित्र एवं रानीके यार मावतके पाससे वेश्या द्वारा वह दिव्य फल वापिस उस के सच्चे मालिक महाराजा भर्तृहरि के पास पहोंचने से वैराग्य निकट पहुँचना और सन्न्यस्त ग्रहण करना और प्रजाजनके साथ मंत्री वर्ग की हार्दिक आजीजी पढते पढते आप इस प्रकरण को समाप्त करेंगे।

प्रकरण पाँचवाँ . . . . . पृष्ठ ३० से ३५ तक

अवधूतको राज्य देनेका निश्चय

शोक विह्वल अवन्ती के प्रजाजन और सरदार–सामन्तोने राज्य-सिंहासन सुना देखकर 'श्रीपति' नामक कुलीन क्षत्रिय को गद्दीनशीन किया। रात्रिमें अग्निवैतालने उनको यमधाम पहुँचाया। फिर दूसरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षत्रियोंको गद्दीनशीन करते गये लेकिन कोई भी अग्निवैताल के उप-द्रवको शांत न कर सके। इस समय क्षिप्रा नदीके तटपर जो पूर्वमें अपमानित होने के कारण चला गया हुआ विक्रम अवधूत रूपमें वापस आया था उसके दर्शन के लिये सारी अवन्ती की प्रजा आने लगी राजमंत्री भी आये और सब हाल सुनाया व उनसे अवधूतने राज्य की माँग की और विश्वास दिलाया की मैं प्रजाकी रक्षा करूँगा और राज्य को अच्छी तरह संभालूँगा।

प्रकरण छठा . . . . . पृष्ठ ३६ से ४१ तक

विक्रम का राज्यतिलक

राजा के बिना शून्य पड़ा हुआ राज्यसिंहासन पर आरूढ करने के लिये सामन्तादि लोक बड़े समारोह के साथ नगर बहार जाकर अवधूत को राज्यसवारी द्वारा शहरमें लाये और राजभवनमें आकर अवधूतने राज्यसिंहासन शोभाया। सहर्ष सभाजनोंने अवधूत को राज्यतिलक किया।

उपद्रवित अधम असुर को यह अवधूत ही ठार करेगा ऐसा मानती हुई राजसभा आनन्दपूर्वक बरखास्त हुई और रात होते ही राजवी के कथनानुसार मेवा-मिठाई आदि अच्छे अच्छे पक्वान्न तैयार करके अग्निवैताल असुरके लिये बली रखके और सुवासित पुष्पादि, दीपक आदिसे राजमहल शोभाया गया। राजाजी को उसके भाग्य के उपर छोड़के अवन्ती की सारी प्रजा निद्राधीन हुई। रक्षकों को सावधान रहने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिये कहकर अवधूत खुद जाग्रत—अवस्थामें पलंग पर खड्ग लेकर लेट रहे।

आधी रात होते ही अग्निवैताल राजवी के पास आया। विनित राजवीने रखे हुए सुंदर पक्वान्न आदि स्वीकारने को विनति की जिससे असुरको राजाका विनितभाव मालूम हुवा जिससे प्रसन्न होकर आजसे उपद्रव नहीं करनेका आशीर्वाद देकर हमेशा के लिये अवन्तीनगरीमें अवधूतने शांति स्थापित की।

प्रकरण सातवाँ . . . . . पृष्ठ ४२ से ४७ तक

विक्रम का पराक्रम

आश्चर्य मुग्ध प्रजा प्रातः होते ही राजाका हाल सुनने को इधर—उधर परस्पर मीलने लगी और अवधूत को जैसा के तैसा देखकर खूब प्रसन्न हुई और उसकी खुशालीमें अवन्तीनगरीमें आनंद--महोत्सव मनाया गया। उधर राजा और असुर का प्रतिदिन परिचय बढने लगा परस्पर गाढ मित्रता हो गई और राजवीने युक्तिसे असुर में शक्तियाँ क्या क्या है यह जानने के लिये असुरको पूछ लीया।

असुर से राजवीने उनकी शक्ति जानी और अपनी आयुष्य के विषयमें प्रश्न किया और नवानवे वर्ष की उम्मर के लिये याचना कि, लेकिन असुरने यह शक्ति कीसीमें भी नहीं होती है एसा कहकर दोनोंने परस्पर मित्रता की जड कायम की। हर्षके आवेशमें राजाने दूसरे दीन बली तैयार नहीं किया। नित्य नियमानुसार अग्निवैताल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपना अलि भक्षण करने के लिये आधी रात्रिमें राजमहलमें आया राजाको मारनेकी धमकी दी। लेकिन सो वर्षकी आयु अपने ही मुखसे अग्निवैतालने राजवीको बतलाई थी जिससे राजा निर्भय हुआ, राजा अग्नि-वैतालसे लड लेनेके लिये बोला। पराक्रमी राजाका पराक्रम देखनेसे अग्निवैताल प्रसन्न हो गया और जब जब जरूरत हो तब तब स्मरण मात्रसे हाजर होनेका वचन देकर असुर अपने स्थान गया।

प्रकरण आठवाँ . . . . पृष्ठ ४८ से ५५ तक

अवधूत कौन ?

इस प्रकार अवधूत का पराक्रम सुनकर अवन्तीकी प्रजा अवधूत का भेद खोलने के लिये इन्तेजारी करती थी एकाएक राजसभामें भट्टमात्रने आकर सब भेद खोल दिया और महारानी भी यह समाचार सुनते ही प्रसन्न हो गई और राजा विक्रमादित्यने यथा तथा स्वरूपमें अन्तःपुरमें जाकर अपनी माताके चरण छूये और आशीर्वाद लिया और उस दिनसे हमेशा माताको नमस्कार करके ही राजा राज्यसिंहासनारूढ होने लगे। फिरसे अवन्ती की प्रजाने बहुत बडा उत्सव किया और राजाका राज्याभिषेक किया और राजाने भी यथायोग्य पारितोषिक दीया और भट्टमात्र को महामात्य बनाया गया। पराक्रमसे धीरे धीरे अन्य राजवीओंको अपने आधीन किये। बाद में माता का स्वर्गवास हुआ। जिस से शोक-सागर में डूबा हुआ राजा के साथ प्रजाभी दुःखित हुई। महामात्यादि के द्वारा विक्रमादित्य को शोक करना व्यर्थ है इसके विषय में गहरा उपदेश दिया गया और प्रकरण समाप्त किया गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण नौवाँ . . . . . पृष्ठ ५६ से ६३ तक

लग्न व भर्तृहरिसे भेट

राजा विक्रमादित्य का लक्ष्मीपुर के राजा वैरीसिंह की रानी पद्मा की कुक्षि से उत्पन्न हुई कमलावती से विवाह किया गया। सुखपूर्वक दिन-रात्रि बिताते हुए विक्रमादित्यको बडे भाई भर्तृहरि की स्मृति हुई, स्मृति होते ही विरहव्यथा बढती चली, जिस से सामन्तादि को भर्तृहरिको अवन्ती पधारनेकी विनति के लिये भेजे गये, उस विनति द्वारा महर्षि भर्तृहरि अवन्ती पधारे, राज्य स्वीकार करने के लिये विक्रमादित्यने आजीजी की, त्यागी भर्तृहरिने उसका निषेध किया और शहर नहि छोडनेके लिये किया गया। फिर शहर बाहर रहने के लिये आजीजी की गई, बादमें आहारादि के लिये राजमहल में भर्तृहरिजी आने लगे और महारानी से वैराग्यमय बातें करके चले गये। इस प्रकरण में भर्तृहरिजी की एक 'दंतकथा' भी रोचनीय है।

समाप्तः प्रथमः सर्गः

सर्ग दूसरा पृष्ठ ६४ से ११५ प्रकरण १० से १२ तक

प्रकरण दसवाँ . . . . . पृष्ठ ६४ से ७४ तक

नरद्वेषिणी

विक्रमादित्य राजसभा में बैठे हैं और एक नाई शरीर प्रमाण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आईना लेकर वहाँ आता है, जिस में अपना प्रतिबिम्ब देख महाराजा आश्चर्य चकित हुए। जिस से माईने कहा कि उसका जवाब अमात्य लोक देवे। महाराजा के पूछने पर अमात्यो ने कहा कि इसका जवाब उसी नाईसे लिया जाय क्यूं की वह वाक्पटु है। सब की सम्मति होने से राजा ने नापित से ही जवाब माँगा, और वह बोला कि आप के रूप का घमंड झुठा है कर्मानुसार प्रत्येक मनुष्यको न्यूनाधिक रूप मिला करता है। नापित ने जब ऐसा जवाब दिया तब राजाने और क्या क्या आश्चर्य जगत में तुमने देखे हैं वे बतलाओ। जिससे नाईने प्रतिष्ठानपुर का वर्णन करते हुए राजा शालिवाहन और पटरानी विजया और उस की लडकी सुकोमला का वर्णन बतलाया और कहा कि वह राजकन्या अपना सात भव का स्वरूप जानती है, जिस से जिस किसी मनुष्य को वह देखती हैं उस से वह द्वेष रखती है और मार डालती है और पुरुष का नाम मात्र सुनने से स्नान करती है। वह राजकुमारी नरद्वेषिणी है। बाद में राजा के आगे नाईने राजकुमारी के रूपादि का वर्णन किया। राजकुमारी को रहने के लिये राजाने बनाया हुआ उद्यान का वर्णन किया, नाई की बात सुनकर राजा विक्रमादित्य प्रसन्न हुआ और राजभंडार से एक लक्ष द्रव्य देने को कहा। ज्युँ ही मंत्री लक्ष द्रव्य देता है त्यों ही नापित ने अपने पास से सात कोटि सुवर्ण महोरे राजा के सामने रखीं और सच्चे देव-रूप में नाई प्रगट हो गया। देव स्वरूप देखकर सारी सभा आश्चर्य चकित हो गई। देवने अपना स्वरूप बतलाया और विक्रमादित्य के पराक्रम से प्रसन्न होने से गुटिका दी जिस से रूपपरिवर्तन हो सकता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

था। बाद में वह देव अदृश्य हो गया। अब यहाँ राजा को देव के मुख से सुकोमला का जो वर्णन सुना था जिस से उस के प्रति उस का आकर्षण हुआ और उस की प्राप्ति के लिये राजाको अनेक संकल्प–विकल्प होने लगे।

राजा के मित्र महामात्य भट्टमात्र यह बात समझ गये और राजा को पूछने पर राजाने मनोगत भाव भट्टमात्र को सुनाया। हे राजन्! नरद्वेषिणी से लग्न करना 'सोये हुए साप को जगाना बराबर है' एसा भट्टमात्रने राजा को समझाया। लेकिन जिस का मन जिस के प्रति होता है उस को रोकना मुस्केल होता है। दृढाग्रही राजा का मन सुकोमला में ही कटीबद्ध था यह एसा देखकर भट्टमात्र ने सोचा। प्रतिष्ठानपुर में आगे रह चुकी मदना और कामकेली वेश्या के द्वारा यह कार्य सिद्ध हो सकता है और उस की बहन अभी भी वहाँ रहती है इसलिये कार्य सुकर है एसा सोचकर उस को बोलाई गई। उन्होंने राजा को साथ ले जाना उचित समझा और प्रतिष्ठानपुर की ओर चले। स्मरण से राजा का मित्र अग्निवैताल हाजर हुआ। राज्य चलाने के लिये बुद्धिसागर मंत्री को नियत करके भट्टमात्र को साथ लेकर वे पाँच अवन्तीसे चले और प्रतिष्ठानपुर आये और वहाँ के बगीचे में ठहरे। उद्यानरक्षिका मार्जारीने अपनी राजकुमारी नरद्वेषिणी है और मनुष्य को देखते हि मार डालती है एसी चेतावनी देने से राजाने अपना रूप परिवर्तन किया और सभी 'रूपश्री' के वहाँ गये।

प्रकरण ग्यारहवाँ . . . . पृष्ठ ७५ से १०० तक

सुकोमला के पूर्व भव

अब वाचक महाशय को विदित हो कि महाराजा विक्रमादित्य, अग्निवैताल, भट्टमात्र, स्त्रीवेष में और मदना तथा कामकेली यह पाँचो रूपश्री के वहाँ आये है और सुकोमला के पास पहुँचना चाहते है। अब यही बताया जाता है कि वे लोक कौनसा रास्ता अंगीकार करके अपने प्राण बचाते है और नरद्वेषिणी सुकोमला का अभिमान चूरचूर करके कीस तरह उसको स्वाधीन करके उसके साथ विक्रमादित्य का विवाह होता है यह रोमांचक कथा अब आप लोकोके मनोरंजनार्थ इस प्रकरण में बताई जाती है—

राजकुमारी सुकोमला 'रूपश्री' के आने के विलम्ब में इधर-उधर टहल रही थी, उतने ही में रूपश्री उपस्थित हुई और आने में विलम्ब का कारण पूछा गया। मौका मिलने पर कौन एसा होता है जो सच बात पर स्वार न हो। अवन्ती महाराजा की कुशल नर्तिकाऐ आई है एसा सुनते ही सुकोमलाने भी आये हुए अनायास अवसर का सहर्ष स्वागत करने की इच्छा से पाँचों नर्तकियों को बुलाई और यह लोग भी उन के पास पहुँचने का तरीका शोच ही रहेथे उनको भी अनायास मौका मिल जाने से परस्पर निश्चय कर के विक्रमादित्य ने वेष परिवर्तन करके विक्रमा नाम रक्खा और उन्होने मदना और कामकेली के नृत्य पर गाना स्वीकार किया, (भट्टमात्र)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भट्टमात्रा ने वसन्तादि राग गाना स्वीकार किया और वह्निवैतालिका (अग्निवैताल) ने वीणा बजाना स्वीकार किया और शीघ्र ही आभरणादि धारण करके पांचो रूपश्री के साथ राजकुमारी के सामने खडे हो गये और निश्चय मुताबिक गाना-बजाना शुरू किया, जिससे प्रसन्न होकर विक्रमा को अकेलीको रात्रि में गाने-बजाने के लिये बोलाई गई। लक्ष द्रव्य देना होगा तथ कर आना स्वीकार किया और रात्रि में आकर विक्रमा सेवामें खडी हो गई। स्नान करके अपने सामने विक्रमा को हाजिर होना एसा दासी के द्वारा सुनाया बाद विक्रमाने अनुचित समझा। फिर दोंनो साथ में भोजन करेंगे एसा आग्रह किया गया वह भी विक्रमाने अनुचित समझा, फिर नरद्वेषिणी राजकुमारी गाना सुनने के लिये बैंठी। गाने में **पुरुषों का सहकार बताया** गया, जिस पर सुकोमला ने विक्रमा के साथ चर्चा कि और अपने नरद्वेष का कारण बताया गया और विक्रमाने सुकोमला के सातों भव सुनाने का आग्रह किया और सुकोमलाने मनोरंजक भाव से अपने सातों भव सुनाये।

सातो भव में धन और श्रीमती का भव १, जितशत्रु और पद्मावती का भव २, विभावसु देवकी पत्नी मृगलीका भव ३, देवीका भव ४, विप्र की पुत्री मनोरमा का भव ५, शुकी का भव ६, और शालिवाहन राजा की पुत्री सुकोमला का सातवाँ भव ७ ए सात भव सुन के विक्रमा ने पारितोषिक लिया और सूर्योदय होने से अपने ठिकाने पर गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण बारहवाँ . . . . . पृष्ठ १०१ से ११५ तक

लग्न

इस तरह नारीरूप में विक्रमादित्यने सुकोमला को उपदेश दिया और मनुष्य के प्रति होता हुआ द्वेष दूर हठाया और इनाम में दिया हुआ रत्न ही लग्न का साक्षीभूत मान के अपने मित्र भट्टमात्र और अग्निवैताल को रात्रि का सभी हाल सुनाया और भोजन के बाद तीनो नगर बहार गये और अग्निवैताल को पाँचा घोड़े व वेश्या को अवन्ती वापस भेजने के लिये और कमलावती पट्टरानी से तीन दिव्य शृंगार मँगवाये।

माया ही कार्यसाधिका है एसा समझ-सोचकर जिनमंदिरमें नृत्य करने के विचार से जिनमंदिर में तीनो जण आये और नृत्य करने लगे। संज्ञा मुजब दोनो मित्र देव के रूप में आकाश में उडने लगे। इस नृत्य का पत्ता पूजारी द्वारा राजा शालिवाहन को मिलने से वह भी जिनमंदिर में आया और नृत्य देखकर प्रसन्न हुआ और राजसभा में नृत्य करने के लिये तीनोंको साग्रह विनति की गई। नारी से द्वेष रखने वाले विद्याधर (विक्रमादित्य) ने राजा को सुना दिया जिस से राजाने कोई भी स्त्री को राजसभा में हाजर न रहने का निश्चय बताया, जिस से विद्याधर ने नृत्य करना स्वीकार किया और नृत्य में नारीद्वेष का तादृश वर्णन कर बताया। इधर राजकुमारी सखियों द्वारा इस वृत्तान्त को जान के पुरुषवेष में नृत्य देखने के लिये जाकर चुपचाप राजसभा में बैठ गई। नृत्य देख कर सुधबुध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूले लोग फिर सचेत हुए और राजा ने विद्याधर से नारीद्वेष का कारण पूछा।

राजा के पूछने पर स्पष्टतया सुकोमलाने बताये हुए पुरुषदोष उलटे स्वरूप में विद्याधरने राजाको बतलाये। उन सात भवोंको सुनकर पुरुष वेष में छुपकर रही हुइ सुकोमला प्रगट होकर उन झूठी बात को सहन न करतीं हुई विद्याधर के साथ चर्चा करती लडने लगी। अंत में दो बच्चे न बतलाने के कारण सुकोमला झूठी पडी। उधर तीनो देव आकाश में उडते अदृश्य होने लगे।

इस बनावसे आश्चर्यान्वित होती हुई सुकोमलाने उस विद्याधर से लग्न नहीं हुआ तो आत्महत्या करने का जाहिर किया। जिससे उडते हुए देवको पाणिग्रहण करने का आग्रह किया और देव से विपरीत लक्षण देखकर राजा शालिवाहन विद्याधर के विषय में संदिग्ध हुआ, अखिर उत्तम पुरुष समझकर अपनी लडकी के साथ लग्न करने के लिये आग्रह किया। अति आग्रह के कारण उसने भी उसका स्वीकार किया और दोनो के लग्न हुए और यह सर्ग समाप्त हुआ।

समाप्तः द्वितीयःसर्गः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्ग तृतीय पृष्ठ ११६ से १५७ तक प्र. १३ से १५ तक

प्रकरण तेरहवाँ . . . . पृष्ठ ११६ से १२५ तक

विक्रम का अवन्ती आना तथा कलावती से लग्न

पाठकगण ! आपको विदित ही है कि विक्रमादित्य अपनी इष्टसिद्धि करने के लिये प्रयत्न करते थे और इष्टसिद्धि करके ही रहे। इस कारण उन्होने धन्यवाद देने के लिये अपने कार्य में सहायक मित्र भट्टमात्र और अग्निवैतालको बुलाये और धन्यवाद दिया। गुप्त रूप में भट्टमात्र को अवन्ती की रक्षा के लिये भेजकर और अग्निवैतालको अपनी परिचर्या के लिये रक्खा, जिससे उसका आडम्बर बढा—चढा रहे और श्वसूरपक्षवाले यह समझे कि यह न केवल मनुष्यमात्र ही है लेकिन कोइ दैवी पुरुष है।

इस तरह दोनो को न देखने से राजा शालिवाहन विक्रमादित्य को पूछता है जब विक्रमादित्य जवाब देते है कि दोनो देव कहीं क्रीडा करने चले गये है, बाद में भोजन के लिये कहते हैं तब जवाब मीलता हैं कि मैं भोजन करता ही नहीं लेकिन फल—फूल खाता हूँ एसा कहकर फलादि का खाना स्वीकारा, राजा इस प्रकार का उच्च जीवन देखकर उच्च कुलीन की कल्पना करता है और सुकोमला की माता भी जमाई का इस प्रकारका वर्तन देखकर मन ही मन प्रसन्न हुई।

इस तरह विलासमय जीवन बिताते हुए विक्रमादित्य को छ मास चले गये और सुकोमला गर्भवती होनेसे उस को अपने पिता के वहाँ ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छोड़कर राजा अग्निवैताल से एकान्त में परामर्श करके अवन्ती जाने के लिये तैयार हो गया और रहने के महल के दरवाजे पर श्लोक लिख कर अग्निवैताल के साथ अवन्ती प्रति प्रस्थान किया।

राजा विक्रमादित्य के अवन्ती आने पर भट्टमात्र राज्यका हाल सुनाते हुए चोर का वर्णन करने लगे जिस में चार कन्याओ का चुराना, विक्रमादित्यने उसको पकड़ने के लिये युक्ति बताई, कौए की स्त्रीने सुवर्ण हार की युक्ति से सर्प को मारना और अपने बच्चों की रक्षा करना, रात्रि में स्वप्न आना, सर्प के मुख से कन्या को छुड़ाना और सर्पका रूप परिवर्तन करके विद्याधर के रूपमें प्रगट होना और कलावती का वर्णन करना व उसके साथ विक्रमादित्य का लग्न होना यह सभी बातें पढकर आप इस प्रकरण को यहाँ ही खतम होते हुए पाते हैं।

प्रकरण चौदहवाँ . . . . पृष्ठ १२८ से १४१ तक.

खप्पर चौर

आप इस प्रकरण में खुद राजा के वहाँ ही चोरी का हाल पढेंगें। खप्पर नामक चोर रात्रि में राजमहल से रानी कलावती का हरण करता हैं जिसकी खोज के लिये सिपाई आदि भेजे लेकिन पता नहीं चला, जब राजा खुद ही नगरमें भ्रमण करने लगे और किसी मंदिर में जाकर चक्रेश्वरी की प्रार्थना करने लगे। जिस से देवी प्रगट हुई और वरदान माँगने को कहा राजाने चोरका स्वरूप जाननेका वरदान माँगा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवीने उसकी उत्पत्ति से अन्त तक हाल सुनाया। धनवृद्ध व गुणसार की कथा कही। गुणसार विदेश गमन करता है, पीछे कोई पिशाच गुणसार का रूप धारण कर गुणसार की औरत से संसार चलता है, आखिर सच्चा गुणसार आता है और कपटका भेद खुलता है. दोनो का विवाद होता है, आखिर राजा के पास निर्णय के लिये जाते हैं और निर्णय होता है। जिसके निर्णय में मायाजालकी बात आती है और इसका वर्णन करने में तीन धूर्तो की कथा सुनाइ जाती है।

थोडी ही देरमें विवाद के स्थान पर वेश्या आती है और दोनो गुणसार का निर्णय करती है।

कपटी गुणसार से रहा हुआ गर्भ रूपवती फेंक देती है और देवी उसको उठा लेती है और वह खप्पर में होने से उस का नाम खप्पर रक्खा गया। उसको देवी गुफा में ले जाती है और उसको वरदान देती है। राजा विक्रमादित्य देवी के मुख से यह सब हाल सुनकर प्रसन्न होता हुआ महल में जाकर सो गया। प्रातःकाल राजसभा में अपनी इष्ट सिद्धि का वर्णन करता हुआ यह प्रकरण खतम हुआ।

प्रकरण पंद्रहवाँ . . . . . पृष्ठ १४१ से १५७ तक.

खप्परकी मृत्यु

अब राजा रात्रिमें नगर में भ्रमण करता है और भीखारी का वेष धारण कर के देवी के मंदिर में बैठ गया। उधर खप्पर को कोइ साधु सीखता है। उस को विक्रम की भेट होने के बारे में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह चोर पूछता है तब वह 'आज ही विक्रम मिलेगा' एसा बतलाता है। त्वरित गति से मंदिर में जाकर खप्पर उस को मीलता हैं और राजा भी उसको देखकर चोर ही है एसा निर्णय कर लेता है और उस के आगे कपट वार्ता करता है। दोनो का बहुत जबरजस्त घर्षण होता है आखिर लढाई होती है और खप्पर अपनी ही गुफा में मारा जाता है। राजा की विजय होती है और प्रजा की जो जो चीजें चोर चोरी कर गया था वह सब को दे दी जाती है और कलावती का भी पत्ता चल जाता है।

इस प्रकरण में रोमाञ्चक व साहसिक घटनाए आप पढेंगे और यह तीसरा सर्ग भी खतम हुआ।

समाप्तः तृतीयः सर्गः

सर्ग चतुर्थ पृष्ठ १७८ से २४६ तक प्र. १६ से २० तक

प्रकरण सोलहवाँ . . . . . पृष्ठ १६८ से १७० तक

देवकुमार

इधर राजा विक्रमादित्य के चले जाने से राजा शालीवाहन की लडकी सुकोमला विलाप करती है, उसको माता-पिता आश्वासन देते है और गर्भपालन करती हुई क्रमशः पुत्रका प्रसव करती है, जिसका नाम देवकुमार रक्खा जाता है। बाल्यकालीन लालन-पालन करने के बाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवयस्क बच्चों के साथ पढाया जाता है, खेलते खेलते लडके ताना देते हैं, जिससे अपने पिताके बारे में मातासे पूछता है आखिर उसको द्वारपर लिखा हुआ श्लोक पढनेमें आता है जिससे वह अपने पिताका पता लगाता है और सुकोमलाकी आज्ञा लेकर देवकुमार अवन्तिकी ओर विदाय लेता है।

प्रकरण सत्रहवाँ . . . . . पृष्ठ १७१ से १८४ तक

अवन्तीमें

देवकुमार माताकी आज्ञा लेकर अवन्ती आया और अनेक वेश्याँ के वहाँ भ्रमण करता हुआ कालि वैश्याके यहाँ ठहरा। अपना नाम सर्वहर रक्खा और चोरीका कार्य शुरू किया, जिससे वेश्या नाराज हुई। बादमें वह गणिकाको प्रसन्न करता है और देवी द्वारा विद्याये प्राप्त करता है और प्रथम विक्रमादित्यके शयनगृह में प्रवेशकर वहाँसे वस्त्राभूषणोंकी चोरी करता है। जिसके विषयमें राजा मंत्रीयोंसे विचार परामर्श करता है और सिंह कोटवाल चोर पकडनेका बीडा झडपता है। चोर की चालाकीसे भरपूर यह प्रकरण यहां ही खतम होता है।

प्रकरण अट्ठारहवाँ . . . . . पृष्ठ १८५ से २०६ तक

कोटवाल व मंत्रीको चकमा

आखिर कोटवाल को चकमा देने के लिये देवकुमार श्यामल बनता है सिंहको चकावेमें डालता है और खुद खंभे पर कावड लेता है पवित्र गंगाजल लाता है, और कोटवाल को उदासीनता का कारण पूछकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चोरका हाल सुन लेता है और कोटवाल के घरमें चोरी करता है और उनकी ओरत, बाल–बच्चों के बूरे हाल करता है, कोटवाल घर जाकर जब चोरीका हाल सुनता ही मूर्छित हो जाता है। बाद में भट्टमात्र चोरको पकडनेकी प्रतिज्ञा करता है। देवकुमार गुप्त रूपसे उसको भी मीलता है, भट्टमात्रको भी बेडीमें फँसा देता है। जिसका एसा हाल सुनकर राजा भी आश्वासन देता है।

यह साराही प्रकरण देवकुमार के पराक्रमसे परिपूर्ण और रोमांचक है और भी आगे के प्रकरणमें देखिये।

प्रकरण उन्नीसवाँ . . . . . पृष्ठ २०७ से २२३ तक

तीव्रबुद्धिका परिचय

चोर के प्रतिदिन पराक्रम बढते हुए और प्रजाकी रंजाड देखकर राजाने नगरमें पटह बजवाया, जिसका स्पर्श वेश्याने किया, देवकुमार शेठ बनता है और वेश्याओंका नृत्य देखता है, वेश्याएँ अचेतन होकर गिर जाती है, बादमें चोर सार्थवाह बनकर वेश्याओं को महादेवके मंदिर के कूपके अरहट्ट के साथ नग्न करके बाँध देता है, प्रातःकाल पूजारी जल भरने को आता है और यह बात राजाके पास पहुँचती है और राजा आदि आकर उसको छुडाते है। बादमें कोई द्यूतकार चौर पकडने की प्रतिज्ञा करता है, उसको भी वह मुँडन कराकर तलावमें स्नान कराने के बहाने से दुर्दशा करता है।

इस प्रकार यह प्रकरण भी चोरकी चालाकीसे परिपूर्ण हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण वीसवाँ . . . . . पृष्ठ २२४ से २४६ तक

पिता-पुत्र मिलन

आखिर राजा चोरको पकडनेकी प्रतिज्ञा करता है, देवकुमार धोबी बनता है और राजा के कपडे चूराकर नगर बाहर खभे पर ले जाता है, वहाँ राजा पहुँचता है, वहाँसे राजाके कपडे और घोडे को उठाकर चोर नगरमें आ जाता है। प्रातः होते ही नगरमें राजाकी शोध होने लगी। आखिर नगर बहार राजा मीलता है। अग्निवैताल आता है और चोरको पकडनेकी प्रतिज्ञा करता है। उसका भी खड्ग देवकुमार चोर लेता है। आखिर चोरको पकडनेके लिये आधा राज्य देनेकी उद्घोषणा कि जातीं है।

वेश्या यह बीडा झड़पती है और देवकुमारको लेकर राजसभामें जाती है, जहाँ पिता-पुत्र का मीलन होता है और कौतुकपूर्ण यह प्रकरणके साथ यह सर्ग भी खतम होता है।

समाप्तः चतुर्थः सर्गः

सर्ग पाँचवाँ पृष्ठ २४७ से ३२० तक प्र. २१ से २५

प्रकरण इक्कीसवाँ . . . . पृष्ठ २४७ से २६२ तक

सुवर्ण पुरुषकी प्राप्ति

राजकुमार विक्रमचरित्र अपने पिताकी अनुमति लेकर प्रतिष्ठानपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की ओर चला। अपनी माताके पास जाकर अपने पिताके संबंधमें सब हाल सुनाया और माताको साथ लेकर वापस अपने पिताके पास अवन्ती आया।

राजा विक्रमादित्यने दिव्यसिंहासन बनवाया। जिसकी प्रशंसा आज तक संसारमें की जाती है। एकदिन किसी योगीने आकर राजाको अद्भुत फल भेट किया और इसका फल बताया, विद्यासाधनेमें राजा खुद उत्तरसाधक बने। योगीने राजाको वृक्षकी शाखामें बँधे हुए शबको लानेके लिये भेजा। योगी राजाको अग्निकुंडमें डालना चाहता है एसा संदेह होनेसे राजा दूर रहता था। लेकिन चालाकी से दुष्ट योगीको हो अग्निकुंडमें राजाने फेंक दिया और फेंकते ही सुवर्ण-पुरुष बन गया। अग्निका अधिष्ठायक देव प्रगट हुआ और उसका फल बतलाया। शून्य राजमहल होनेसे मंत्री वर्ग राजाको ढूंढने लगे, राजाका पता चला, और सुवर्णपुरुषका वृत्तान्त सुना। दुष्ट बुद्धि का वर्णन करते हुए वीरमती की कथा सुनाई और यह प्रकरण खतम हुआ।

प्रकरण बाईसवाँ . . . . . पृष्ठ २६२ से २७१ तक

सिद्धसेन दिवाकर सूरि

पू. श्री वृद्धवादिसूरीश्वरजी के शिष्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिसे राजा विक्रमादित्य की भेट हुई और धर्मोपदेश सुना। जिससे उसने उदारतासे दान देना शुरू किया और जीर्ण मंदिरोंका जीर्णोद्धार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कराया। विहार करके सूरिजी ओंकार नगरमें पधारे। फीर वहाँ से अवन्तीपुर पधारे और श्लोक लिखकर द्वारपाल के साथ राजाके पास भेजे। बाद राजसभामें आकर पांच श्लोक राजा को सूनाये राजाने खुश होकर आखिर सारा राज्य देनेको कहा किन्तु निर्लोभी सूरिजीने राज्यादि ऋद्धि लेनेसे इन्कार कीया, आखिर राजाके द्वारा ओंकार नगरमें एक विशाळ जिनमंदिर बनवाया और सूरिजीकी एकदिन सूत्रोंकी प्राकृतभाषा बदलकर संस्कृतभाषामें रचना करनेकी इच्छा हुई। जब यह बात गुरुदेवको कहि तब गुरुदेवने उपालम्भ दिया और उनको प्रायश्चित लेने को कहा गया। प्रायश्चित लेकर श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरि वहाँसे निकल कर अवधूतवेषमें अनेक स्थानोमें भ्रमण करने लगे। इस तरह यह प्रकरण खतम हुआ।

प्रकरण तेईसवाँ . . . . . पृष्ठ २७२ से २९० तक

कन्या की शोध

राजा विक्रमादित्य अपने राजकुमार के लिये कन्याकी शोध करने लगे आखिर में मन पसंद कन्या नहीं मीली, जब सेनायुक्त मंत्री भट्टमात्रको कन्या की तलास के लिये भेजा। एक भट्टद्वारा वल्लभीपुर के राजाकी शुभमती नामक कन्याका हाल सुना और भट्टमात्र वल्लभीपुर गये। वहाँसे वापस आकर राजा को शुभमतीका हाल सुनाया। जिसको सुनकर कुमार प्रसन्न हो गया और उस कन्याके प्रति उसको अनुराग उत्पन्न हुआ। मनोवेग घोडे को लेकर पाँच ही दीनमें अवन्तीसे वल्लभीपुर प्रति गमन किया। वल्लभीपुरमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाते हुए विक्रमचरित्र के रूपको देखकर श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी प्रसन्न हो गई और अपनी सखीद्वारा उसको अपने मकान पर बुलाया। विक्रमचरित्र वहाँ गया और जाते ही उसने उसको भगिनी कहकर बोलाई। रूपमोहित लक्ष्मी प्रणय प्रतिकुल वचन सुन मूर्छित हो गइ, बाद सखीसे सचेतन हुई आखिर विक्रमचरित्रने लक्ष्मी द्वारा अपना कार्य साधनेका साहस किया और राजपुत्रीसे मिला और पुनः मिलने का संकेत किया गया इस तरह यह प्रकरण खतम हुआ।

प्रकरण चोइसवाँ . . . . . पृष्ठ २९१ से ३०४ तक

शुभमती

इधर कुमार धर्मध्वज लग्न समय जानके ठाठमाठसे सादी करनेके लिये आया। इधर विक्रमचरित्र पूर्व संकेतानुसार अपने स्थानपर पहुँच गया। देहचिन्ताका बहाना करके यथाअवसर राजकुमारी शुभमती राजमहल से निकल पडी। कर्मकी गति गहन है, शुभमती और विक्रमचरित्र का भेटा न हुआ, विक्रमचरित्र के वेशमें स्थित सिंहनाम कृषिवल के साथ चलती हुई राजकुमारी को जब यह भेद मालुम हुआ तब वह चालाकीसे वहाँसे छूटकर गिरनार की ओर चली।

इधर किसी पेड पर एक वृद्ध भारंड पक्षी अपने बच्चों के साथ रहता था, प्रभातमें बच्चे चारा चरनेको जाया करते थे, और सामको आकर देखा हुआ सब हाल वृद्ध पिताको सुनाते थे जिसमें एक बच्चेने वल्लभीपुरमें बना हुआ शुभमती का हाल सुनाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरेने वामनस्थलीका हाल सुनाते राजकुमारी काष्ठभक्षण करना चाहती है यह सुनाया । जिससे वृद्ध भारंडने उसका औषध बतलाया । तीसरे पुत्रने विद्यापुरका हाल सुनाया । चौथेने भी अपना हाल कहा । यह सभी बातें राजपुत्रीने पेड के नीचे रहकर सुनी । शुभमतीने रूप परिवर्तन किया और भारंड पक्षीको लेकर वामनस्थली प्रति चली ।

प्रकरण पचीसवाँ . . . . . पृष्ठ ३०५ से ३२० तक

शुभ मिलन

रूपपरिवर्तनमें रही हुई शुभमती अभि आनंदकुमार के नाम से प्रसिद्ध है, उसने मालीन के वहाँ मुकाम किया और मालीनसे पटह स्पर्श करवाया और खुद वैद्य बनकर शहरमें घूमने लगा । राजपुत्री को दवा देकर काष्ठभक्षणसे बचाई । उधर राजकन्या शुभमती बहुत तलास करने पर भी नहीं मीलनेसे धर्मध्वज वल्लभीपुरसे निकलकर अपना प्राण त्याग करने को रैवताचल–गिरनार आये है जिसको आनंदकुमार रुकवाता है । इधर महाबल राजा अपनी रानी के साथ, विक्रमचरित्र और किसान सिंह यह सभी भी प्राणत्याग करने गिरनार आते है उन सबको आनंदकुमार रोकता है किसीको भी प्राणत्याग करने नहीं देता है । धर्मध्वजको आनंदकुमार समजाता है जिसपर अमर ब्राह्मणकी कथा सुनाता है और अच्छी कन्या देनेका वचन देकर आनंदकुमार अपने स्थानपर जाता है । सिंह किसान प्राणत्याग करनेको जाता है उसको राजाके नौकर रोकते है । आखिर धर्मध्वज और सिंहका श्रेष्ठ कन्याओं से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आनंदकुमार लग्न कराता है। राजा महाबलको अपनी पुत्री मीलती है। विक्रमचरित्र व शुभमतीका परस्पर लग्न होता है। इधर अवन्तीनगरीमें रूपवती काष्ठभक्षण के लिये तैयार हुई है, उस समय विक्रमचरित्र आ पहुँचता है और माता-पितासे मिलकर रूपमतीसे लग्न करता है। रोमांचपूर्ण यह प्रकरण के साथ पंचम सर्ग भी खतम होता है, और आगे रोमांचक कथा पढने की इन्तेजारी कराता है।

समाप्तःपंचमः सर्गः

सर्ग षष्ठ पृष्ठ ३२१ से ३७४ तक प्र. २६ से २९

प्रकरण छब्वीसवाँ . . . . पृष्ठ ३२१ से ३३० तक

विक्रमादित्य का गर्व

महाराजा विक्रमादित्य को अपने राजवैभव और बलका अति गर्व हुआ था, माता के कहने पर भी विश्वास न होने के कारण अपना शहर छोडकर परीक्षा के लिये अन्य जगह जाते ही उनको कृषिकार मील गया और उनका तथा उनके मित्र व उनकी स्त्री का अपरिमित बल देखकर उनके गर्वका खंडन हो गया, और देव के द्वारा अपने गर्व के लिये प्रतिबोध पाके अपनी माता के पास वापस जाकर सत्य अहेवाल जाहेर किया।

बादमें किसीसे भेट मीले घोडे पर आरूढ होकर किसी दूर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जंगलमें निकल गया, विपरीत शिक्षाके कारण घोडा दूर जंगलमें चला गया वहाँ जाकर घोडा मरण के शरण हो गया और राजा भी मूर्छित हो कर गिरा था लेकिन किसी वनवासी भीऊ के द्वारा सचेतन होकर उनके निवास स्थानमें लाया गया और भोजनादि से सत्कार किया। रात्री में वहाँ उसकी रक्षाके लिये बहार सोया हुआ वनवासीको व्याघ्रने मार डाला, उसके पीछे उसकी औरत भी पतिके आघातसे मर गई, परोपकारी के यह हाल देखकर राजाने अवन्तीमें आकर दान देना बंध किया, अवन्ती नगरीमें श्रीपति और दान्ताक शेठके वहाँ भील–भीलड़ी का आश्चर्यकारक जन्म हुआ, जन्म होते ही श्रीपतिके द्वारा विक्रमादित्यको बुलाकर दान के लिये सूचना कि, विक्रमादित्यको तुरत जन्मे हुए बालक की वाचासे आश्चर्य हुआ, बच्चेके कहनेसे दान पुनः शुरू करवाया, और पूर्व जन्मकी भीलडी कहाँ जन्मी है उसका हाल भी उन बच्चेके द्वारा विक्रमादित्यने सुना, और बालक को राजाने पाँचसो गाँव भेट किये।

सत्ताइसवाँ प्रकरण . . . . पृष्ठ ३३१ से ३४२ तक

जंगलमें एकाकी

किसी एकदिन विक्रमचरित्र मित्र सोमदन्त के साथ उद्यानमें आया, वहाँ श्रीधर्मघोषसूरिजीसे धर्मोपदेश सुनकर चार प्रकारके धर्मका पालन करते दानमें अधिक धन व्यय करने लगा, जिसके लिये उनके पिताने उसको मर्यादित धन–व्यय के लिये कहा, जिससे विक्रमचरित्र खेदित होकर विदेश गमन किया वहाँ सोमदन्तने कपट द्वारा जूवा खेलने में राजकुमारके दोनो नेत्र जित लिये, और स्वार्थ निष्ठ सोमदन्त अवन्ती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आया और विक्रमचरित्र एकाकी जंगलमें घूमता हुआ किसी पेड के नीचे आया, वहाँ उसको वृद्ध भारण्ड मील जानेसे आराम पूर्वक रहने लगा।

अठ्ठाइसवाँ प्रकरण . . . . . पृष्ठ ३४३ से ३५५ तक

भारण्ड पक्षी व गुटिका का प्रभाव

नेत्रप्राप्तिका उपाय और कनकपुर जानेमें भारण्ड पुत्र की मदद और वहाँ वैद्यरूपमें श्रेष्टी पुत्र को निरोगी बनाना, और शेठ के द्वारा वहाँकी राजपुत्री को नेत्रपीडासे बचाकर काष्ठभक्षण से बचाना व उन राजपुत्री से सादी करना, दुश्मन सामन्तोंका राज्य कन्यादानमें लेना, सामन्तोंको युक्तिसे वशमें लेना व उनके द्वारा सेवा पाना यह आश्चर्यकारक घटना कनकसेन राजाको आश्चर्यान्वित बनाती है और साथ ही साथ यह प्रकरण खतम होता है। आगे कीस तरह का संयोग होता है और भावी मनुष्य को कहाँ ले जाता है यह आगे के प्रकरणमें पढने के लिये आप लोग सावधान हो जाय।

उगनतिसवाँ प्रकरण . . . . . पृष्ठ ३५६ से ३७४ तक

समुद्रमें गिरना तथा घर पहुँचना

वैद्यरूपमें रहे हुए विक्रम समुद्र तटपर क्रीडा करते थे उस समय किसी व्यक्ति को गभराते हुए और काष्ठ पकडकर समुद्रतट नजदीक आते देखकर उसको बचाना व सचेतन करने बाद उसका और उसके द्वारा अवन्तीका हाल पूछना, अवन्ती का हाल सुनकर विक्रमने अवन्ती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने का निर्णय किया तब कनकश्री अपने पिताके पास अवन्ती जाने की विदा लेने गई जब विक्रम वैद्य नहीं लेकिन अवन्तीका राजकुमार है एसा जानना व उसके लिये पश्चाताप, विक्रमचरित्र का पत्नीके साथ अवन्ती प्रयाण व भीमद्वारा समुद्रमें गिराना व उनका सब माल लेकर कनकश्री को अपनी पत्नी बनाने की इच्छासे बलात्कार करना एवं विक्रमका मगरद्वारा भक्षित होकर धीवरद्वारा मगरका पेट चीरने से जीवित नीकलना, अवन्ती पहुँचना और वहाँ विक्रमचरित्र का मालीके घर छिपकर रहना, भीमका कपट देखना व राजाने ज्योतिषीद्वारा अपने पुत्र विक्रमचरित्र की स्थिति जानना एवं नगर–घोषणा द्वारा मालीनी के द्वारा कनकश्री को अपना हाल ज्ञात कराना और कनकश्री को पटह स्पर्श कराना और महाराजा विक्रमादित्यका कनकश्री को मीलने आना और उनके पाससे विक्रमचरित्र का हाल जानकर विक्रमचरित्र को घर पर लानेके लिये उत्सव करना व भीमको बांधकर लाना, और परमदयालु राजपुत्र विक्रमचरित्र द्वारा दयापूर्वक घर तक सब वहाणादि वस्तुएँ लाने के उपकारके कारण भीमको छुडवाना और अपना मित्र सोमदत्त को बुलाकर अपकारी प्रति भी उपकार करकर पुनः उनको धन आदिसे सन्मानित करके तीनो राणी के साथ राजकुमार विक्रमचरित्र शांतिसे अवन्तीमें रहने लगा और विक्रमादित्य महाराजाने उत्सव, पूजा, प्रभावना पूर्वक महोत्सव कराया।

उपरका वृत्तान्त आप लोक इस प्रकरणमें देखेंगें। अब आगे के प्रकरणमें आप लोगोंको परमोपकारी आचार्यश्री सिद्धसेनदिवाकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूरीश्वरजीने विक्रमादित्य महाराजाको आश्चर्यकारक चमत्कार का दिखाना व लिंगस्फोटन द्वारा अवन्ती पार्श्वनाथका प्रगट होना आदि-वर्णन कर दिखाया जायगा। इस तरह छठ्ठा सर्ग खतम होता है।

समाप्तः षष्ठः सर्गः

सर्ग सप्तम पृष्ठ ३७९ से ४०० तक प्र. ३१ तक

प्रकरण तीस और इक्कतीस

भगवानश्री अवन्ती पार्श्वनाथ व सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी

प्रिय पाठकगण! आप इस प्रकरणमें आश्चर्यान्वित बात पढकर खुश हो जायेंगें, क्युं की श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी जो की गुरुदत्त प्रायश्चित्त के कारण अवधूतरूपमें नीकले हुए है, और महाकालके मंदिरमें शंकर के लिंगके सामने अवधूतवेषमें ही पैरकर सोये हुए है, राजाज्ञासे उनको चाबुक से ताडित करनेपर वह चाबुक अंतःवासमें राणियोंको पडता है, उससे अन्तःपुरमें कोलाहल मच गया और दासी द्वारा यह वृत्तान्त सूनकर आखिर खुद राजा महादेवके मंदिर में आते है और इष्टदेवकी स्तुति के लिये अवधूतको कहते है, स्तुतिमात्रसे ही लिंग भेदित होकर श्रीपार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट होती है। वहाँ ही सूरिजी महाराजा को उपदेश करते हैं। श्रीमती व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शिवराजाकी पूर्वभवकी कथा सुनाते है, शिवको कुमार्गसे बचाने के लिये श्रीमती देव बनकर मृत्यु लोकमें आती है और राजमार्गमें चाण्डाली का रूप धारण करके जल छीटकती है, उसका कारण राजा पूछता है यह सब वृत्तान्त इस प्रकरणमें मीलेगा और सूरिमहाराजके सद्उपदेशसे विक्रमादित्य सारे भारतवर्ष को दान देकर ऋणरहित करता है और कीर्तिस्तम्भ के लिये मंत्रीयोंसे कहता है, रात्रीमें विप्रके घरके पास साँढ और भेंसाकी लडाई होती है जिसमें राजा फसा हुआ है उसकी शांतिके लिये ब्राह्मण ग्रहों की शांति करता है, जिससे उस विप्रको राजा राजसभामें सन्मान करके उसका दारिद्र्य दूर करता है। साथ ही साथ यह सातमा सर्ग, यह प्रकरण, और यह विक्रमादित्य के चरित्रका पूर्वार्धे प्रथम भाग समाप्त होता है।।

ॐ शांतिः।

समाप्तः सप्तमः सर्गः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चित्रसूची

१ मंगलमूर्ति श्री पार्श्वनाथजी
११ अवधूत व भट्टमात्र
१६ अवन्ती की राजसभा
२३ राजसभा में वेश्या द्वारा दिव्य फल की भेंट
३३ अवधूत क्षिप्रा के तट पर
३६ अवधूत का हस्ती पर आरूढ होकर अवन्ती नगरी जाना
४५ राज महल में अग्निवैताल
५६ लक्ष्मीपुर का राजमहल
७१ दो वेश्याओं के साथ महाराज व अग्निवैताल का सुकोमला के पास जाना
७१ प्रतिष्ठानपुर गमन व उद्यान
७८ सुकोमला के महलमें विक्रमा, भट्टमात्रा और वह्नि वैतालिका का गीत व बाजा बजाना
१०७ राजसभा में नृत्य व नारी-द्वेष के कारण का कथन
११८ संवत्प्रवर्तक महाराजा विक्रमादित्य
१२८ राजा विक्रमादित्य की देवी की आराधना व स्तुति
१३६ तीन धूर्तों का ब्राह्मण से मिलना
१५१ चोर का गुफा में छिपना व विक्रमादित्य का खप्पर से युद्ध और खप्पर का वध।
१६६ माता सुकोमला देवकुमार को उसके पिता का परिचय देती है।
१७८ शय्यातल सें अट्ठाईस कोटि सुवर्ण के वस्त्राभूषण चोरना
१८१ मंत्रीयों आदिसे राजा का विचार विमर्श
१८२ राजा के समक्ष सिंह कोट-वाल का प्रतिज्ञा करने आना
१८७ कपटी भानजा बनकर कावड लेकर तीर्थ यात्रार्थ निकलना
२०२ भट्टमात्र को बेडी में फँसाना
२११ वेश्याओंका नृत्य तथा मद्य पान कराकर अचेतन करना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२२९ कूपमें उतरते राजा का घोड़ा लेकर चोर का भागना
२३८ सर्वहर चौर का वेश्या के दरवाजे पर वापस आना
२४३ काली वेश्या व देवकुमार का राजसभामें आना
२५३ वृक्ष की शाखा में बँधे हुए शव को लेने के लिये राजा विक्रमादित्य का आना
२५४ योगी के सामने राजा विक्रमादित्य का आना
२६४ मंत्रीने कोटी सुवर्ण द्रव्य सूरिजी के पवित्र चरणोमें धर दिया।
२८५ विक्रमचरित्र का वल्लभीपुरमें लक्ष्मी के पास आना
२८५ विक्रमचरित्र व राजपुत्री का मिलन व रूप देखना
३०८ धर्मध्वज का प्राण त्याग करने गिरनार आना
३१४ सिह किसान का श्रेष्ठ कन्याके साथ लग्न
३१७ राजकुमार विक्रमचरित्र व शुभमती का लग्न
३२२ सिंह और व्याघ्र से खेती करता हुआ किसान को राजा विक्रमादित्य देखता है
३२५ विपरीत शिक्षावाले घोड़े से राजा का जंगलमें जाना व घोडे का मरना
३२९ तुरंत के जन्मे हुए बालकसे राजा की बातचीत
३३७ विक्रमचरित्र का द्यूत खेलना
३६१ भीम का विक्रमचरित्र को समुद्र में गिराना
३६५ सर्वज्ञपुत्र जैनाचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी ने चार श्लोक राजाके पास भेजे
३६८ मालिन का कनकश्री के पास फूल लेकर जाना
३७५ लिंगके प्रति पैर करके अवधूत का सोना
३७७ लिंगस्फोटन
३९८ धर्मघोषसूरि का उपदेश
४०१ शीव ओर धीर की सेना
४०७ विक्रमादित्य का बनाया जैनमंदिर
४०८ शिवराजर्षि का धर्मबोध
४१० राजा विक्रमादित्य का दान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

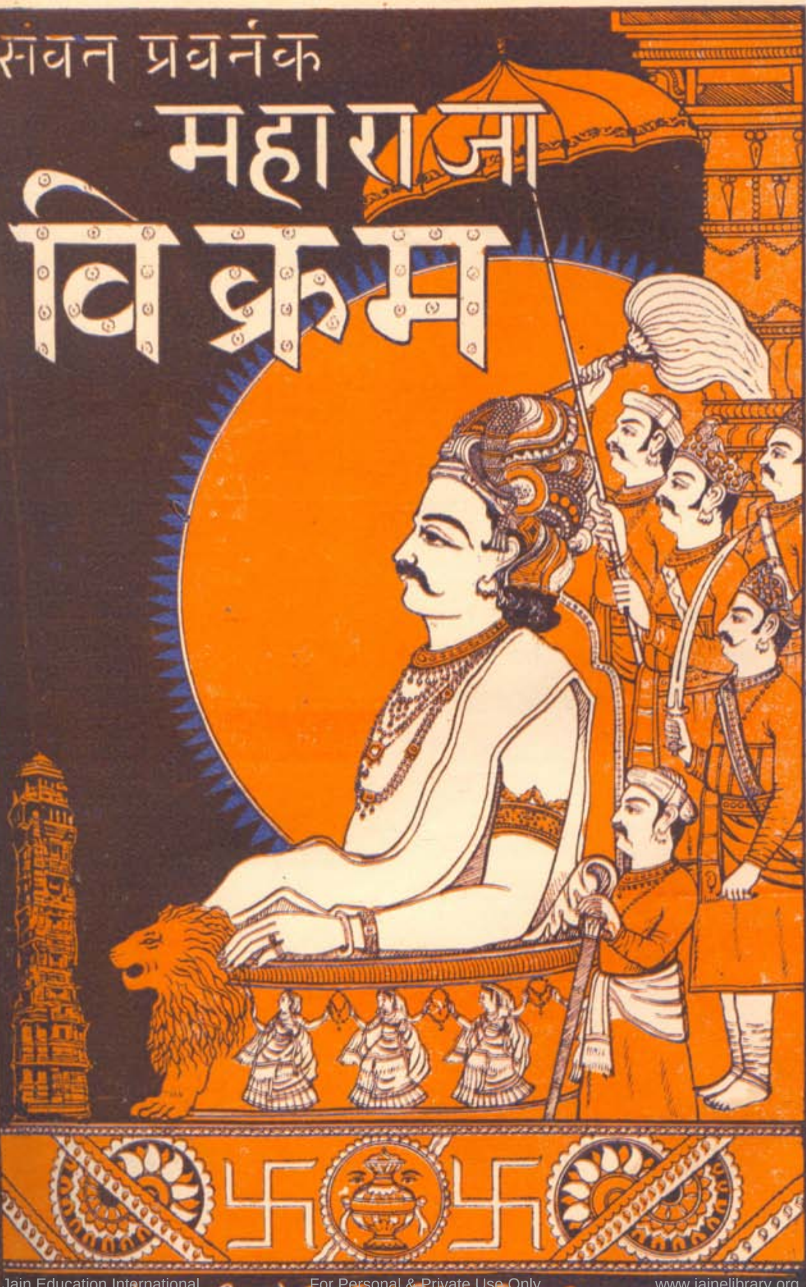

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेखकः-साहित्य प्रेमी मुनिश्री निरंजन विजयजी महाराज.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री

❀ विक्रमचरित्र ❀

❀ अनुक्रमणिका ❀

पृष्ठ विषय

प्रथम सर्ग पृ. १ से ६३

प्रथम प्रकरण पृ. १ से ९

अवन्ती का पूर्वपरिचय १

१ अवन्ती का पूर्वपरिचय

२ गन्धर्वसेन राजा

३ राजा की मृत्यु व भर्तृहरि का अभिषेक

४ विक्रमादित्य का अपमान

५ विक्रमादित्य का अवन्ती त्याग तथा अवधूत वेष

५ भट्टमात्र से मैत्री

७ रत्न प्राप्ति व रत्न को फेंकना

दूसरा प्रकरण पृ. १० से १३

तापी के किनारे १०

१० तापी के किनारे

१० शृगाली का शब्द और आभूषण युक्त शव

११ राज्य प्राप्ति का संकेत

१२ भर्तृहरि के राज्यत्याग का सुनना

१३ विक्रमादित्य का अवन्ती प्रति गमन

तीसरा प्रकरण पृ. १४ से २०

राजा भर्तृहरि का दरबार १४

१४ राजा भर्तृहरि का दरबार

१५ अवन्ती वर्णन

१५ महल व राजसभा का वर्णन

१८ ब्राह्मण का आगमन

१८ दिव्य फल की प्राप्ति और उसका वर्णन

२० राजा भर्तृहरि को फल की भेंट

चौथा प्रकरण पृ. २१ से २९

भर्तृहरि का संन्यास ग्रहण २१

२१ भर्तृहरि का संन्यास ग्रहण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२१ दिव्य फल की पटरानी को भेंट
२२ पटरानी द्वारा अपने यार को भेंट
२२ दिव्य फल का पुनः राजा के पास आना
२३ स्त्री चरित्र का विचार
२५ भर्तृहरि की विरक्ति
२७ संन्यास स्वीकृति
२७ मन्त्रीवर्ग की विनती

पाँचवाँ प्रकरण पृ. ३० से ३५
अवधूत को राज्य देने का निश्चय ३०

३० अवधूत को राज्य देने का निश्चय
३० शोकविह्वल अवन्ती
३० श्रीपति का राज्याभिषेक तथा मृत्यु
३१ क्षत्रियों को राज्य सुप्रत करना और अग्निवैताल का उपद्रव

छठा प्रकरण पृ. ३६ से ४१
विक्रम का राज्यतिलक ३६

३६ विक्रम का राज्यतिलक
३७ अवधूत का राजभवन में आगमन
३८ सभाजनों द्वारा राज्य-तिलक
३९ असुर को बलि व उसकी संतुष्टि

सातवाँ प्रकरण पृ. ४२ से ४७
विक्रम का पराक्रम ४२

४२ विक्रम का पराक्रम
४२ प्रजा की प्रसन्नता
४४ विक्रम का अग्निवैताल की शक्ति नापना
४६ विक्रम के पराक्रम से अग्नि-वैताल की प्रसन्नता

आठवाँ प्रकरण पृ. ४८ से ५५
अवधूत कौन ? ४८

४८ अवधूत कौन ?
४८ भट्टमात्र का आगमन
४९ अवधूत कौन ?
४९ माता-पुत्र का मिलन
५० माता की भक्ति
५२ दूसरे राज्यों का जीतना
५३ माता की मृत्यु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नौवां प्रकरण पृ. ५६ से ६३
लग्न व भर्तृहरि से भेंट ५६
५६ लग्न व भर्तृहरि से भेंट
५६ लक्ष्मीपुर का वर्णन
५७ कमलावती से विवाह
५९ भर्तृहरि का आगमन
५९ विक्रमादित्य की विनती
६० भर्तृहरि का महलमें आहार लेने आना
६१ भर्तृहरि का अन्यत्र गमन
६२ एक लोकोक्ति
प्रथम सर्ग समाप्त

द्वितीय सर्ग पृ. ६४ से ११५
दसवाँ प्रकरण पृ. ६४ से ७४
नरद्वेषिणी ६४
६४ नरद्वेषिणी
६४ राजसभा में नाईका आगमन
६५ राजा का सौन्दर्य
६५ प्रतिष्ठानपुर का वर्णन
६६ राजकुमारी सुकोमला का वर्णन
६६ उद्यान का वर्णन
६७ नाई का देवरूप प्रकट होना
६८ गुटिका प्रदान
७१ प्रतिष्ठानपुर गमन
७२ स्त्री रूप धारण
ग्यारहवाँ प्रकरण पृ. ७५ से १००
सुकोमला के पूर्व भव ७५
७५ सुकोमला के पूर्व भव
७५ रूपश्री का सुकोमलाके पास देरी से पहुँचना
७६ सुकोमला द्वारा पाँचों नई नर्तकियों को बुलाना
७८ विक्रमा के गान से सुकोमला की प्रसन्नता तथा रात्रि में बुलाना
८१ विक्रमा का आना व गीत-गान पूर्वक सात भवों की कथा
८४ धन और श्रीमती
९१ जितशत्रु और पद्मावती
९४ मृगली-विभावसु देव की पत्नी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९५ विप्रकी पुत्री मनोरमा
९९ शुकी तथा शालिवाहन की पुत्री विक्रमाकी विदा

बारहवाँ प्रकरण पृ. १०१ से ११५

लग्न १०१

१०१ लग्न
१०१ विक्रमादित्य का विद्याधर का स्वांग
१०३ चैत्यमें नृत्य
१०४ शालिवाहन का राजसभामें नृत्य करने का आग्रह
१०६ विद्याधर का नारीद्वेष
१०६ राजसभामें नृत्य तथा नारीद्वेष के कारण का कथन
१०८ विक्रम के पूर्व सात भव
११२ राजकुमारी सुकोमला का लग्न करने का आग्रह
११३ राजा का विक्रमादित्य को समझाना
११४ सुकोमला व विक्रम का लग्न

द्वितीय सर्ग समाप्त

तृतीय सर्ग पृ. ११६ से १५७

तेरहवाँ प्रकरण पृ. ११६ से १२५

विक्रम का अवन्ती आना तथा कलावती से लग्न ११६

११६ विक्रम का अवन्ती आना तथा कलावती से लग्न
११७ भट्टमात्र का अवन्ती गमन
११७ विक्रम का दिव्य भोजन
११९ सुकोमला का गर्भवती होना
१२० विक्रमादित्य का अवन्ती गमन
१२० अवन्ती के चोर का वर्णन
१२२ कौवी की युक्ति
१२३ विक्रमादित्य का स्वप्न
१२४ सर्प के मुख से कन्या का छुड़ाना
१२५ कलावती से लग्न

चौदहवाँ प्रकरण पृ. १२६ से १४१

खप्पर चोर १२६

१२६ खप्पर चोर
१२६ कलावती हरण
१२६ कलावती की खोज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१२७ राजा का नगर में घूमना
१२८ चक्रेश्वरी की स्तुति और उसकी प्रसन्नता
१२९ चोर की कथा
१२९ धनेश्वर व गुणसार
१३१ गुणसार का विदेश गमन
१३२ पिशाच का गुणसार का रूप लेना
१३३ सच्चे गुणसार का घर आना
१३५ उनका विवाद तथा सच्चे गुणसार का निर्णय
१३८ कपटी गुणसार से रूपवती के गर्भ, रूपवती का बालक को फेंकना व देवी का ऊठाना
१३९ देवी का खप्पर को वरदान
१४० विक्रम का सन्तोष

पंद्रहवाँ प्रकरण पृ. १४१ से १५५

खप्पर की मृत्यु १४१

१४१ खप्पर की मृत्यु
१४१ विक्रम का नगर में घूमना व खप्पर से भेंट
१४२ खप्पर के साथ गुफा में जाना
१४६ खप्पर की श्रेष्ठि कन्या से वात दोनो की लड़ाई
१५१ खप्पर की मृत्यु व राजा की विजय
१५५ नगर जनों की वस्तुओं का उन्हें सौपना
१५६ कलावती की प्राप्ति

तृतीय सर्ग समाप्त

चतुर्थ सर्ग पृ. १५८ से २४६

सोलहवाँ प्रकरण पृ. १५८ से १७०

देव कुमार १५८

१५८ देव कुमार
१५८ सुकोमला का विलाप
१५९ माता-पिता का आश्वासन
१६१ गर्भपालन व पुत्र उत्पत्ति
१६१ देवकुमार का बड़ा होना व पढ़ने जाना
१६२ लड़कों का ताना
१६३ माता से पिता के बारे में प्रश्न, माता का शोक

१६५ पुत्र का श्लोक पढ़कर पिता का पता लगाना
१७० माता से अवन्ती गमन की आज्ञा लेना तथा रवानगी

सत्रहवाँ प्रकरण पृ. १७१ से १८४
अवन्ती में १७१

१७१ अवन्ती में
१७१ देवकुमार का अवन्ती आना
१७२ वेश्या के यहाँ ठहरना
१७५ चण्डिका को प्रसन्न कर विद्यायें प्राप्त करना
१७७ विक्रमादित्य के शयन गृह में
१७७ राजा के वस्त्राभूषणों की चोरी
१८१ मंत्रियों आदि से राजा का विचार विमर्श
१८२ सिंह की चोर पकड़ने की प्रतिज्ञा

अट्ठारहवाँ प्रकरण पृ.१८५से२०६
कोटवाल व मंत्री को चकमा १८५

१८५ कोटवाल व मंत्री को चकमा
१८५ देवकुमार का श्यामल बनना
१८६ सिंह को भुलावे में डालना
१९० कोटवाल के घर चोरी
१९३ कोटवाल को मूर्च्छा
१९५ भट्टमात्र की प्रतिज्ञा
१९८ भट्टमात्र को मिलना
२०१ भट्टमात्र को बेड़ी में फँसाना
२०५ राजा का भट्टमात्र को आश्वासन

उन्नीसवाँ प्रकरण पृ.२०७ से २२३
तीव्र बुद्धि का परिचय २०७

२०७ तीव्र बुद्धिका परिचय
२०७ नगर में पटह बजवाना
२०८ वेश्याओं का पटह स्पर्श
२०९ देवकुमार का सार्थवाह बनना
२११ वेश्याओं का नृत्य तथा मद्यपान
२१३ वेश्याओंका अचेतन होजाना
२१४ कूप के घटी यंत्र से बाँधना
२१६ राजा आदि का आकर छुड़ाना
२१८ द्यूतकार कौटिक की प्रतिज्ञा
२२० कौटिक की दुर्दशा

बीसवाँ प्रकरण पृ. २२४ से २४६

पिता-पुत्र मिलन २२४

२२४ पिता-पुत्र मिलन
२२४ राजाकी प्रतिज्ञा
२२६ नगर भ्रमण
२२६ देवकुमार का धोबी के यहाँ से राजा के कपड़े चुराना
२२७ धोबी रूप चोर का नगर बाहर जाना
२२८ राजा द्वारा चोर का पीछा करना
२२९ राजा का कूप में उतरना व देवकुमार का नगर में आ जाना
२३३ नगर में राजा की शोध
२३५ नगर बाहर राजा का मिलना
२३६ अग्निवैताल का आना
२३७ चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा
२३८ अग्निवैताल का खड्ग हरण
२४० आधा राज्य देने की घोषणा
२४३ वेश्या व देवकुमार का राजसभा में आना
२४४ पिता-पुत्र मिलन

चतुर्थ सर्ग समाप्त

पञ्चम सर्ग पृ. २४७ से ३२०

इक्कीसवा प्रकरण पृ. २४७ से २६२

सुवर्णपुरुष की प्राप्ति २४७

२४७ सुवर्णपुरुष की प्राप्ति
२४९ विक्रमचरित्र का प्रतिष्ठानपुर गमन
२४९ माता को साथ लेकर जाना
२५० दिव्यसिंहासन
२५० योगी का अद्भुत फल भेंट करना
२५२ राजा का उत्तर साधक बनना
२५६ सुवर्णपुरुष की प्राप्ति
२५७ वीरमती की कथा

बाईसवाँ प्रकरण पृ. २६२ से २७२

सिद्धसेनसूरि २६२

२६२ सिद्धसेनसूरि
२६२ विक्रम की सिद्धसेनसूरि से भेंट
२६३ दान व जीर्णोद्धार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२६४ ओंकार नगरमें
२६५ चार श्लोक की कथा
२६६ सारे राज्य का दान
२६९ ओंकार नगरमें दान
२६९ सूरि की सूत्रों को संस्कृत में रचने की इच्छा
२७० गुरुद्वारा प्रायश्चित्त
२७१ अवधूत वेषमें

तेईसवाँ प्रकरण पृ. २७१ से २९०

कन्या की शोध २७२

२७२ कन्या की शोध
२७६ भट्टमात्र का वल्लभीपुर गमन
२८२ अन्यत्र खोज
२८४ विक्रमचरित्र का वल्लभीपुर के प्रति गमन
२८८ राजपुत्री से मिलन

चोवीसवाँ प्रकरण पृ. २९१ से ३०४

शुभमती २९१

२९१ शुभमती
२९२ राजकुमारी का महल से निकलना
२९३ *कृषक सिंह के साथ गमन*
२९६ सिंह का अकेले घर जाना और राजकुमारी का गिरनार की ओर प्रयाण
२९७ भारण्ड पक्षी और उस के पुत्र
३०२ राजपुत्री का सब का वृत्तान्त सुनना
३०४ शुभमती का रूपपरिवर्तन तथा वामनस्थली जाना

पचीसवाँ प्रकरण पृ. ३०५ से ३२०

शुभमिलन ३०५

३०५ शुभ मिलन
३०५ आनन्दकुमार का पटह स्पर्श
३०७ राजपुत्री को नेत्रप्राप्ति
३०८ धर्मध्वज का प्राणत्याग करने आना
३११ सिंह का आगमन
३१३ धर्मध्वज और सिंह का लग्न
३१५ महाबल की अपनी पुत्री से भेंट
३१६ राजा विक्रमचरित्र व शुभमती *का शुभ मिलन तथा लग्न*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३१८ रूपवती की काष्टभक्षण की तैयारी

३१८ विक्रमचरित्र का ठीक वक्त पर पहुँचना

३१९ माता–पिता से शुभ मिलन और रूपमती से लग्न

पंचम सर्ग समाप्त

षष्ठ सर्ग पृ. ३२१ से ३७४

छवोसयाँ प्रकरण पृ ३२२ से ३३०

विक्रमादित्य का गर्व ३२१

३२१ विक्रमादित्य का गर्व

३२१ विक्रम का गर्व

३२१ नगर छोड कर जाना

३२२ एक आश्चर्य

३२४ गर्व खंडन व प्रतिबोध

३२४ अश्वारूढ होना व जंगल में जाना

३२६ वनवासी भील का अतिथि

३२७ भील–भीलडी की मृत्यु

३२८ राजा ने दान बंद किया

३२९ भील का श्रीपती शेठ के पुत्र रूपमें उत्पन्न होना

३२९ राजा से बातचीत

३३० पुनः दान शुरू करना

सत्ताइसवाँ प्रकरण पृ.३३१से ३४२

जंगल में एकाकी ३३१

३३१ जंगलमें एकाकी

३३१ विक्रमचरित्र की सोमदन्त से मित्रता

३३१ धर्मघोषसूरि से धर्म श्रवण

३३२ धर्मकार्य में बेहद व्यय

३३२ राजा की हितशिक्षा

३३३ राजकुमार की विदेश गमन की इच्छा

३३६ सोमदन्त सहित परदेश गमन

३३७ द्यूत खेलना

३३८ विक्रमचरित्र का नेत्र हारना

३३८ कपट वार्तालाप

३३९ नेत्र निकालकर दे देना

३४१ सोमदन्त का जाना

३४२ जंगल में एकाकी

अट्ठाइसवाँ प्रकरण पृ.३४३से ३५५

भारण्ड पक्षी व गुटिका का प्रभाव ३४३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३४३ भारण्डपक्षी व गुटिका का प्रभाव
३४३ कनकपुर में
३४३ वृद्ध भारण्ड का अतिथि
३४४ कनकसेन की अंधी पुत्री का समाचार
३४५ विक्रमचरित्र के नेत्र खुलना
३४७ भारण्ड के मलकी गुटिका लेकर कनकपुर जाना
३४८ श्रीद श्रेष्ठी के पुत्र को निरोग बनाना
३४८ राजपुत्री की काष्ठ भक्षण यात्रा व उसे रोकना
३४९ राजपुत्री के नेत्र खुलना
३४९ वैद्य से लग्न करनेका आग्रह
३५० विक्रमचरित्र का राजकन्या से लग्न व राज्यप्राप्ति
३५२ सामन्तों को संदेश व उनका उत्तर
३५३ सामन्तों को वश में करना

उनतिसवाँ प्रकरण पृ.३५६से३७४

. समुद्रमें गिरना तथा घर पहुँचना ३५६

३५६ समुद्रमें गिरना तथा घर पहुँचना
३५६ समुद्र तट पर एक व्यक्ति का तैरते हुए आना
३५७ भीम का हाल
३५८ अवन्ती की स्थिति जानना
३५८ कनकसेन को विक्रमचरित्र के कुल आदिका पता लगना
३५९ राजा का पश्चात्ताप
३६० विक्रमचरित्र का पत्नी के साथ रवाना होना
३६१ भीम का विक्रमचरित्र को समुद्र में गिराना
३६१ मगर द्वारा निकलना
३६२ अवन्तीपुरी तक पहुँचना
३६२ छिपकर रहना
३६३ भीम का कपट
३६४ घर पहुँचना
३६६ राजा का ज्योतिषी को विक्रमचरित्र के आने के बारे में पूछना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३६६ नगर में घोषणा
३६७ अवन्तीपुर का हाल
३६७ कनकश्री को समाचार मिलना व पटह स्पर्श
३६९ राजा और विक्रमचरित्र का मिलन
३७० विक्रमचरित्र को महल पर ले जाना
३७१ भीम को बांधना
३७१ विक्रमचरित्र का भीम को छुड़ाना व सोमदन्त का आदर
३७३ उपसंहार

❀

सप्तम सर्ग पृ. ३७५ से ४१६

तीस व इकतीसवाँ प्रकरण

पृ. ३७५ से ४१६

अवन्ती पार्श्वनाथ व सिद्धसेन दिवाकर ३७५
३७५ अवन्ती पार्श्वनाथ व सिद्ध-सेन दिवाकर
३७५ सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी का चमत्कार
३७६ राजा का आदेश
३७६ स्तुति के लिये राजा का वारंवार आग्रह
३७७ लिङ्गभेदन और श्रीपार्श्व-नाथ का प्रगट होना
३७८ श्री अवन्ती पार्श्वनाथ का इतिहास
३७९ भद्रापुत्र की स्वयं दीक्षा
३८० वीतराग भगवान का स्वरूप
३८२ इतर शास्त्रों में वीतराग का स्वरूप
३८२ धर्मोपदेश द्वारा सूरिजी की दान धर्म की पुष्टि
३८५ दान धर्म की पुष्टि में शंख राजा की रानी रूपवती का उदाहरण
३८७ अभयदान की प्रशंसा
३८७ रूपवती का चोर को उपदेश
३८८ चोरी का त्याग और मृत्यु से बचाव
३८८ परोपकार का बदला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३८९ दान व शील का प्रभाव
३८९ शीलव्रत पर हेमवती की कथा
३९० विद्याधर के द्वारा हैमवती का हरण
३९१ विद्याधर को हैमवती का प्रत्युत्तर
३९२ शीलरक्षा के लिये हेमवतीने अपने गलेमें पाश लगाया
३९३ तपका प्रभाव व तेजःपुंज
३९५ गुरु महाराज से तेजःपुंज-का पूर्वभव कथन

बत्तीसवाँ प्रकरण ३९९ से ४१६

शुद्ध भावना पर शिव राजाकी कथा ३९९

३९९ शुद्ध भावना पर शिव राजा की कथा
४०० शूर का श्रीमती से लग्न
४०० राजा शिव व धीर की सेना का युद्ध
४०२ सुन्दरी से शिव का लग्न व वीर का जन्म
४०३ श्रीमती का स्वर्गवास
४०३ श्रीमती का मृत्युलोक में आना व पति को पाप से बचाना
४०४ राजा की आज्ञा से चाण्डाली को जल छीटकने का कारण पूछना
४०६ चाण्डाली का रूप धारण करनेका कारण
४०९ नया संवत्सर चलाना
४११ कीर्ति स्तम्भ के लिये आज्ञा
४११ सांढ और भैंसा के झगडे में राजा का संकट में फँसना
४१२ राजा की शान्ति के लिये ब्राह्मण का शांति कर्म
४१२ पति-पत्नी का विवाद
४१३ राजसभा में ब्राह्मण को बुलाना और आदर करना

४१६ ॥ सप्तम सर्ग समाप्त ॥

मुनि निरंजनविजय संयोजित श्रीविक्रम-चरित्र का प्रथम भाग समाप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीशुभशीलगणि विरचिते

श्रीविक्रमचरिते

मंगलपीठिका

यस्याग्रेऽणुतुलां धत्ते प्रद्योतः पुष्पदन्तयोः ।
जीयात् तत् परमं ज्योतिर्लोकालोकप्रकाशकम् ॥ १ ॥

" जिसके आगे सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश भी अणु समान सूक्ष्म अर्थात् निस्तेज हो जाता है, वह लोक और अलोकका प्रकाशक, उत्कृष्ट ज्योतिरूप केवलज्ञान चिरकाल तक विजयी बना रहे । "

राज्यं येन वितन्वता प्रथमतः सन्दर्शितानि क्षितौ,
लोकाय व्यवहारपद्धतिरलं दानं च दीक्षाक्षणे ।
ज्ञाने मुक्तिपथश्च नाभिवसुधाधीशोरुवंशाम्बर-
त्वष्टा श्रीवृषभप्रभुः प्रथयतु श्रेयांसि भूयांसि नः ॥ २ ॥

"इस पृथ्वीपर पहलेपहल राज्य करते समय जिस (श्री आदिनाथ) प्रभुने लोगोंको व्यवहार पद्धति सिखायी, दीक्षा समयमें वार्षिकदान देकर दानधर्म दिखाया, एवं केवलज्ञान प्राप्तकरके निर्मल मोक्षमार्ग दिखाया, वह नाभि कुलकर (राजा) इक्ष्वाकु के विशाल वंशरूप आकाशमें सूर्य सदृश श्रीऋषभदेवप्रभु हमे सब प्रकारका कल्याण प्रदान करें । "

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माद्यद्दन्ति—समीरजित्वरहय—प्रोद्यन्मणि—काञ्चन—
स्त्रनारीसमरूपभूरिवनिता—प्रोल्लासिचक्रिश्रियम्।
त्यक्त्वा यस्तृणवल्ललौ व्रतरमां तीर्थंकरः षोडशः
स श्रीशान्तिजिनस्तनोतु भविनां शान्तिं नताखण्डलः ॥ ३ ॥

"जिन्होंने मदोन्मत्त हाथी, शीघ्रगतिवाले-वायुको भी जीतनेवाले उत्तम घोड़े, देदीप्यमान मणि—रत्न—सुवर्ण—नवनिधि और चक्रवर्ती के चौदह रत्न, देवाङ्गना सदृश अनेक स्त्रियाँ, एवं छः खण्ड की राज ऋद्धियां, आदि चक्रवर्ती की लक्ष्मी को तृणवत् छोड़कर व्रत लक्ष्मीरूप स्त्री के साथ रमण करनेवाले और शक्रेन्द्रादि देवोंसे वन्द्य देवाधिदेव सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ भगवान् भव्य प्राणियों पर शान्तिका विस्तार करें।

आनम्रानेकदेवाधिप—नृपतिशिरःस्फारकोटीरकोटिः
कल्याणाङ्कुरकन्दो यदुकुलतिलकः कज्जलाभाङ्गदीप्तिः।
लोकालोकावलोकी मधुमधुरवचाः प्रोज्झितोदारदारः,
श्रीमान् श्रीउज्जयन्ताचलशिखरमणिर्नेमिनाथोऽवताद्वः ॥ ४ ॥

" जिनके चरणकमल में अति नम्र भावसे अनेक इन्द्रादि देवताओं के और राजा-महाराजाओं के सिर के करोड़ों मुकुटों के अग्रभाग झुके हैं और जो कल्याणरूप अङ्कुर के कन्द (जड़) हैं, ऐसे यदुवंश में तिलकसमान एवं काजल समान अपूर्व शरीरकी कान्ति वाले तथा लोक--अलोक को केवल ज्ञानसे देखनेवाले, मधुसमान मीठी-मधुरी वाणीवाले और उत्तम राजिमती स्त्रीको छोड़नेवाले, श्री उज्जयन्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गिरिनार-पर्वत के शिखरके मणिरूप, और अष्ट प्रातिहार्यरूप लक्ष्मीवाले, श्री नेमिनाथ भगवान् आप लोगोंकी रक्षा करें।"

स्वामिन्! मामुग्रसेनक्षितिपकुलभवां सानुरागां सुरूपां,
बालां त्यक्त्वा कथं त्वं बहुमनुजरतां मुक्तिनारीमरूपाम्।
वृद्धां मूकामकुल्यां करपदरहितामीहसेऽशेषवित् प्राग्,
इत्युक्तो राजिमत्या यदुकुलतिलकः श्रेयसे सोऽस्तु नेमिः ॥ ५ ॥

"हे स्वामिनाथ (भगवन् नेमिनाथ) उग्रसेन राजाके कुलमें उत्पन्न अनुरागिणी सुन्दर रूपवाली कुमारी ऐसी मुझ (राजिमती) को शीघ्र छोडकर सकल पदार्थके ज्ञाता होते हुए भी, तुम अनेक मनुष्यों में रक्त एवं वृद्ध, मूक (मूंगी) कुल रहित, हाथ, पैर और रूपसे शून्य, जो मुक्ति स्वरूप नारी है, उसकी इच्छा क्योंकर रहे हो? इस प्रकार प्रार्थना के साथ राजिमतीद्वारा कहे गये यदुकुलभूषण (आबाल ब्रह्मचारी) श्री नेमिनाथ भगवान् कल्याण के लिये हों।"

कस्तुरीकृष्णकायच्छविरतनुफणारत्नरोचिष्णुभाली,
विद्युच्छाली गभीरानघवचनमहागर्जिविस्फूर्जितश्रीः।
वर्षन् तत्त्वाम्बुपूरैर्भविजनहृदयोर्व्यां लसद्बोधिबीजा-
ङ्कुरं श्रीपार्श्वमेघः प्रकटयतु शिवानर्घ्यसस्याय शश्वत् ॥ ६ ॥

"कस्तूरीके समान (कृष्ण) शरीर की कान्तिवाले नागेन्द्र (धरणेन्द्र) की फणा के रत्नसे शोभायमान भालके कारण मानों बिजली से युक्त अर्थात् मेघ में जैसे बिजली चमकती है उसीतरह फणाका रत्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देदीप्यमान एवं गम्भीर निर्दोष वचनरूप महागर्जन से सुस्पष्ट शोभावाले जो पार्श्वनाथ रूप मेघ, तत्त्वरूप जलके समूह से भव्य प्राणी के हृदयरूप पृथ्वी में वर्षाकरके सम्यग्ज्ञानरूप बोधिबीज के अङ्कुरको मोक्षरूप अमूल्य धान्यके लिये सर्वदा प्रगट करें। "

बाल्ये निर्जरनाथसंशयभिदे गीर्वाणशैलः पदा-
ङ्गुष्ठस्पर्शनमात्रतोऽजनिमहे येनार्हता चालितः।
व्योमव्यापितनुः सुरः शठमतिः कुब्जीकृतो मुष्टिना,
स श्रीवीरजिनस्तनोतु सततं कैवल्यशर्माङ्गिनाम् ॥ ७ ॥

" जिस प्रभुने बाल्य अवस्थामें अर्थात् जन्मोत्सव के समयमें देवताओं के स्वामी इन्द्रके सन्देह को मिटाने के लिये पैर के अङ्गठे के स्पर्श मात्रसे मेरु पर्वतको कम्पित किया एवं लड़कपन खेलते समय पराजय करनेकी बुद्धिसे आये हुये दुष्ट बुद्धिवाले आकाश व्यापी अति उच्च शरीर धारण किये हुये देवको मुष्टि मात्र से कुब्ज बना दिया, वह श्री वीर जिनेश्वर भगवान् भव्य प्राणियोंको सर्वदा मोक्ष रूप सुख देवें। "

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीँ श्रीधरणेन्द्र-पद्मावतीसहिताय
श्रीसंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः

मूलं श्रीशुभशीलगणिविरचितम्

॥ विक्रम-चरित्र ॥

हिन्दीभाषासंयोजक-मुनिश्री निरञ्जनविजयजी

सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र-शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-

तपागच्छाधिपति-श्रीविजयनेमिसूरीश्वरगुरुभ्यो नमो नमः

प्रथम प्रकरण

अवन्तीका पूर्व परिचय

इसी भारतवर्षमें तिलक समान धन-धान्य, सुवर्ण और रत्नादिसे परिपूर्ण मालव देश है, जिसमें ×प्रथम तीर्थंकर 'श्रीऋषभदेव' के सुपुत्र 'श्रीअवन्तिकुमार' के नामसे प्रसिद्ध 'अवन्ती' नामक नगरी थी। अनेक प्रकार की सम्पत्ति तथा समृद्धि से युक्त होने के कारण

× युगादिजिनपुत्रेणावन्तिना वासिता पुरी।
अवन्तीत्यभवन्नाम्ना जिनेन्द्रालयशालिनी॥ ९॥

मालवावनितन्वङ्गी—भास्वद्भालविभूषणम्।
अवन्ती विद्यते वर्या पुरी स्वर्गपुरीनिभा॥ १०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्य नगरों पर वह मानो हँस रही हो, इस तरह वह सारे संसार को अपनी ओर अपूर्व शोभासे आकर्षित कर रही थी। इस नगरी में गगन-चुम्बी शिखरवाले अनेक जिनमन्दिर शोभा देते थे। नगरी के समीप क्षिप्रा नदी के तट पर 'श्रीअवन्तीपार्श्वनाथ' भगवान् का मनोहर भव्य मन्दिर था। वहाँ यात्रा तथा दर्शन करने को जैन धर्म पालन करनेवाले बड़े बड़े अनेक श्रेष्ठी दूर दूर से आया करते थे। श्रीजैन धर्म की आबादी और नगरी की अपूर्व समृद्धि देखकर यात्रीगण चकित हो जाते थे। वे अपने २ स्थान पर जाकर अलकापुरी के समान अवन्ती की शोभा का अपूर्व वर्णन लोगों के समक्ष किया करते थे। प्राचीन कवियों और अनेक ग्रन्थकारोंने अपने काव्यों तथा ग्रंथों में अवन्ति नगरी का सौन्दर्य पूर्ण वर्णन कर अपनी शक्तियों को सार्थक कीया, वह अभी भी विद्वत्समाज के आगे साक्षीभूत है।

जैसे जगत में दूध से दही और घी की प्राप्ति सुलभ है, उसी तरह प्राणियों को धर्म के प्रभावसे अर्थ और काम की प्राप्ति अल्प प्रयत्न से ही शीघ्र हो जाती है। इसका ज्वलन्त दृष्टान्त राजा विक्रमादित्य का यह चरित्र है।

इस अवन्ती नगरी में भगवान् 'महावीर' के समय 'चन्द्रप्रद्योत, राजा का शासन चल रहा था। इस के बाद क्रमसे 'नवनन्द,' 'चन्द्रगुप्त' 'अशोक' और जैन धर्मका परम आराधक 'महाराजा संप्रति' आदि बड़े २ प्रभावशाली राजाओंने अवन्ती का राज्य न्याय और नीति से चलाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गन्धर्वसेन राजा—

इसी तरह क्रमसे 'गन्धर्वसेन' (गर्दभिल्ल) राजा हुए जो पुत्रवत् प्रजा का पालन करते हुए राज्यधुराको वहन कर रहे थे। राजा गन्धर्वसेन के भर्तृहरि तथा विक्रमादित्य + नामके दो पुत्र हुए।

अवन्तीपति गन्धर्वसेनने पराक्रमी राजा भीम की रूपलावण्यवती अनङ्गसेना नाम की पुत्री के साथ राजकुमार भर्तृहरि का बड़े उत्सव से लग्न कराया और निकटवर्ती द्वेषी राजाओं को अपने पराक्रमसे और दोनों राज कुमारों तथा सैन्य की मदद से अपने आधीन किये, अर्थात् अनेक देशोंपर अपना राज्य फैलाया।

सन्मार्गेण सदा न्यायी, पालयन् सकलाः प्रजाः।
स्मारयामास सर्वेषां, रामराज्यस्थितिं जने ॥ ३८ ॥

अर्थात् निरन्तर उत्तम मार्ग से समस्त प्रजाओं का पालन करते हुए न्यायी राजाने लोगों को रामराज्य की स्थिति का स्मरण कराया।

राजा की मृत्यु व भर्तृहरिका अभिषेक—

इस प्रकार न्याय-नीति से राज्य पालन करते हुए वर्षों बीत गये। अकस्मात् किसी रोगसे राजाकी मृत्यु हो गयी। राजाकी अकाल मृत्यु से युवराज भर्तृहरि आदि को अत्यन्त दुःख हुआ। मृत्यु के पश्चात् मन्त्रिवर्ग आदिने मिलकर राजाकी दहन-क्रिया समाप्त कर सदुपदेश से पितृमरण जन्य शोक निवारण-करवाया।

+ अन्य मतसे गर्दभिल्ल राजाके ये दोनों पुत्र थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बड़े उत्सव के साथ युवराज कुमार भर्तृहरि का राज्याभिषेक किया और पराक्रम शिरोमणि विक्रमादित्य कुमार को युवराजपद पर विभूषित किया। नूतन अवन्तीपति महाराज भर्तृहरि बड़े प्रेम से प्रजा पालन के लिये राज्य-धुरा वहन करते हुए समय व्यतीत करते थे। उसी तरह पराक्रमी युवराज विक्रमादित्य भी आनन्द पूर्वक समय बिता रहे थे।

विक्रमादित्य का अपमान—

किसी दिन पटरानी अनङ्गसेना (पिंगला) द्वारा महाराज भर्तृहरि से युवराज विक्रमादित्य का कुछ अपमान हुआ। स्वमानी विक्रमादित्य "इस स्थान में एक क्षण भी ठहरना उचित नहीं है" यह सोच कर दुःखित हृदय से अपने निवास-भवन में लौट कर विचार करने लगे। किसी नीतिकारने ठीक ही कहा है:—

"वरं प्राणपरित्यागो, न मानपरिखण्डनम्
मृत्युर्हि क्षणिकं दुःखं, मानभङ्गो दिने दिने"॥

अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष प्राण त्याग कर सकते हैं, किन्तु मान भंग नहीं सह सकते है; क्यों कि मृत्युसे क्षण मात्र ही कष्ट होता है किन्तु मान भंग से जन्मभर कष्ट होता है। और भी कहा है कि—

"अधमा धनमिच्छन्ति, धनमानौ च मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम्"॥

अर्थात् अधम पुरुष केवल धन चाहते हैं, मध्यम पुरुष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन और मान दोनों को चाहते हैं, किन्तु उत्तम पुरुष तो केवल मानकी ही इच्छा रखते हैं। **क्यों कि उत्तम पुरुषों का मान ही श्रेष्ठ धन है।**

विक्रमादित्य का अवन्तीत्याग तथा अवधूतवेष—

इसतरह सोचने के बाद किसीको पूछे बिना रात्रि के समय तलवार रूप मित्र को साथ लेकर पराक्रमी युवराज विक्रमादित्य अकेले ही घर से भाग्य की परीक्षा के लिये निकल गये, और अवधूत वेष में इधर-उधर घूमते रहे। एक समय किसी गाँव के समीप एक जगह बहुत से लोग एकत्रित होकर बैठे थे। उनके बीच में "भट्टमात्र" नामक एक नीतिज्ञ पुरुष अपनी चातुर्यपूर्ण कला प्रदर्शित करता हुआ नागरिकों को आनन्दित कर रहा था। ठीक उसी समय विक्रमादित्य अवधूत के वेष में वहाँ आ पहुँचे। अवधूतने मनमें सोचा कि यह बीच में बैठा हुआ जो मनुष्य लोगों को मनोरञ्जन करा रहा है, यह कोई बड़ा पंडित या तो अच्छा ज्ञानी होना चाहिए, ऐसा विदित होता है। इतने में 'भट्टमात्र' की दृष्टि भी आगन्तुक अवधूत पर पड़ी, अवधूत को देख कर भट्टमात्र सोचने लगे कि यह अवधूत के वेषमें कोई तेजस्वी राजकुमार मालूम पडता है। इसलिये उनके साथ बातचित की उत्कण्ठा से तुरंतही कार्य समाप्त कर अवधूत के पीछे २ गये और उनसे मिले।

भट्टमात्रसे मैत्री—

बातचीत करने पर उन दोनो में मैत्री हो गई। वे दोनो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घूमते-घूमते रोहणाचल पर्वत के समीप किसी गाँव में आ पहुँचे। भट्टमात्र को वहाँ किसी मनुष्य से पूछने पर पता लगा कि यहाँ पर्वत की खान में धन है किन्तु जो मनुष्य मस्तक पर हाथ रख कर हा दैव ! २ इस प्रकार उच्चारण करता है उसीको रोहण-गिरि बहुत मूल्य रत्न देता है। यह सुनकर विक्रम ने कहा कि जो इस प्रकार दीनवचन कहकर धन लेता है वह कायर पुरुष है। इसलिये यदि इस प्रकार दीन वचन कहे बिना रोहणगिरि रत्न देवे तो मैं ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं। कहा भी है—

उद्योगिनं नरं लक्ष्मीः, समायाति स्वयंवरा।
दैवं दैवमिति प्रोच्चै-र्वदन्ति कातरा नराः ॥९५॥

अर्थात् उद्योगी पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं आजाती है। दैव ! दैव ! कह कर धन की इच्छा रखनेवाले कायर पुरुष कहे जाते हैं॥

बाद में विक्रम भट्टमात्र के साथ रोहणगिरि पर गये और वहाँ विक्रम को भट्टमात्र ने हा देव ! हा दैव ! यह दीनवचन बोलने को कहा।

किन्तु विक्रमने दीन वचन बोले बिना हि कुठाराघात किया। परन्तु रत्न प्राप्त नहीं हुआ। तब भट्टमात्र एक युक्ति सोचकर खान पर से बोला—'हे विक्रम ! अवन्ती से एक दूत आया है, वह कहता है कि तुम्हारी माता "रानी श्रीमती" अकस्मात्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसी रोग से मर गई'। उपर्युक्त शोककारक वचन सुनकर मातृ-भक्त विक्रमने शिर पर हाथ रखा और उसके मुखसे हा दैव! हा दैव! यह दीन वचन अकस्मात् निकल पडे।

रत्नप्राप्ति व रत्नको फेंकना—

इतने में ही कुठार के आघात की जगह से एक सवा-लक्ष मूल्य का रत्न निकल पडा और मणि के किरण से वहाँ सर्वत्र प्रकाश हो गया।

उस रत्न को लेकर भट्टमात्रने अवधूत विक्रम को दिया और कहा कि तुम्हारी माता जीवित है और कुशलता पूर्वक है, अतः शोक मत करो। इस प्रकार माता की कुशलता सुनकर जैसे मेघ गर्जन से मयूर आनन्दित होता है, वैसे ही विक्रम आनन्दित हुए। कहा भी है—

दयैव धर्मेषु गुणेषु दानं, प्रायेण चान्नं प्रथितप्रियेषु।
मेघः पृथिव्यामुपकारकेषु, तीर्थेषु माता तु मता नितान्तम्॥१०२॥

अर्थात् इस संसार में धर्म में दया, श्रेष्ठ गुणों में दान, प्रिय वस्तु में अन्न, उपकारी में मेघ और सर्व तीर्थों में माता ये सब अत्यन्त श्रेष्ठ माने गये हैं।

तीर्थे धर्मे च देवे च, विवादो विदुषां बहुः।
मातुश्चरणचर्चा तु, सर्वदर्शनसंमता ॥ १०३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् तीर्थ—स्नान, धर्म और देव के विषय में कदाचित् पण्डितों में विवाद या मतभेद हो सकता है किन्तु माता की सेवा में तथा भक्तिमें किसी भी धर्म में मतभेद नहीं है। सारांश यह कि मातृ—सेवा को सब धर्मवाले श्रेष्ठ मानते हैं। और भी कहा है:—

गंगास्नानेन यत् पुण्यं, नर्मदादर्शनेन च।
तापीस्मरणमात्रेण, तन्मातुः पदवन्दनात् ॥१०४॥

अर्थात् गंगा स्नान से, नर्मदा के दर्शन से और तापी नदी के स्मरण से जो पुण्य होता है उतना ही पुण्य माता की चरण सेवा से होता है।

आदिगुणेषु विनयः, सर्वशास्त्रेषु मातृका।
सृष्टौ जलं दया धर्मे, तीर्थेषु जननी मता ।१०५॥

अर्थात् सब गुणों में विनय, सब शास्त्रों में मातृका पद*, सृष्टि में जल, धर्म में दया श्रेष्ठ है वैसे ही तीर्थो में माता श्रेष्ठ मानी गई है।

इत्यादि बहुत सोचकर अवधूत—विक्रमादित्य ने प्राप्त किये रत्न को खान में फेंकते हुए यह श्लोक कहा:—

*** अ, आ आदि १४ स्वर, क, ख आदि ३३ व्यञ्जन ये वर्ण मातृकापद कहे जाते है, अथवा "उव्वेई वा-विगमेइ वा धूवेइ वा" इस त्रीपदीको भी मातृका पद कहते हैं।**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धिग् रोहणगिरिं दीनदारिद्र्यव्रणरोहणम् ।
दत्ते हा दैवमित्युक्ते रत्नान्यर्थिजनाय यः ॥ १०७ ॥

अर्थात् जो रोहणाचल याचक जन को हा दैव ! हा दैव ! यह दीनवचन बुलवाकर रत्न देता है उस दीनदारिद्र्य स्वरूप आघात-वाले रोहणगिरि को धिक्कार हो ।

इस उपर्युक्त श्लोक को कहकर महा मूल्यवान् रत्न को खान में फेंक कर विक्रमादित्य अवधूत वेषमें अनेक प्रकार के आश्चर्य जनक देश तथा अच्छे २ फलफूल युक्त वन आदि को देखते हुए भट्टमात्र के साथ २ विदेशमें घूमने लगा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा प्रकरण

तापीके किनारे

इसी प्रकार भूमंडल में भ्रमण करते हुए तापी नदी के तट पर दोनों आ पहुंचे। वहाँ किसी वृक्ष के नीचे रात्रि में विश्राम के लिये ठहरे।

शृगाल का शब्द और और आभूषणयुक्तशव—

उसी समय एक शृगाली का शब्द सुनाई पडा। भट्टमात्र शृगाली की भाषा अच्छी तरह जानते थे उसने अवधूत को कहा कि यहाँ पास में ही अच्छे आभरणों से युक्त कोई मरी हुई स्त्री पडी है। विक्रमादित्य इस आश्चर्यकारक घटना देखने के लिये उस शब्द के अनुसार उस बाजु चले। वहाँ जाकर उसी प्रकार स्त्री को देखकर भट्टमात्र को कहा कि 'तेरा वचन सत्य है।' 'किन्तु हे मित्र! इस मुर्दे के आभूषण मैं नहीं लेसकता' यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम लेलो।' भट्टमात्र बोला कि 'तुम यदि यह नहीं लोगे तो मैं भी ऐसा चाण्डालिक कार्य करके धन नहीं चाहता' जैसे कहा है:—

क्षुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्रायोऽपि कष्टां दशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु गच्छत्स्वपि।
मत्तेभेन्द्रविशालकुम्भदलनव्यापारबद्धस्पृहः,
किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥ ११३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् मदोन्मत्त गजराज का मस्तक विदारने की स्पृहा (इच्छा) वाला मानियों में अग्रेसर सिंह, भूख से व्याकुल भी हो, वृद्धावस्था से जर्जरित भी हो, इन्द्रियों से शिथिल हो गया हो और आपत्तियुक्त हो, किसी कष्ट दशा को प्राप्त हो तथा प्राण भी जाता हो तो भी क्या सुखा घास खा सकता है ? अर्थात् नही खाता है।

राज्यप्राप्ति का संकेत—

फिर कुछ देर बाद श्रृगाली का शब्द सुनकर भट्टमात्र ने अवधूत विक्रम से कहा कि अब फिर यह बोलती है कि 'एक मास में तुम्हें अवन्ती का राज्य मिलेगा'।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह सुनकर विक्रम आश्चर्य से बोला--' हे मित्र ! हमारे बडे भाई भर्तृहरि अच्छी तरह अवन्ती का राज्य चला रहे हैं और प्रजापालन में सदातत्पर हैं, तो मुझे राज्य की सम्भावना कैसे हो सकती है ?' फिर भट्टमात्र बोला--हे मित्र ! इस विषय में तुम संदेह मत करो यह ऐसा ही होगा ।

भट्टमात्र का निश्चयात्मक शब्द सुनकर प्रफुल्लित हृदय से अवधूत--विक्रम ने कहा कि ' यदि ऐसा होगा तो तुम्हें अवश्य प्रधान मंत्री बनाऊँगा ।

फिर दोनों ने घूमते २ किसी गाँवमें जाकर रात्रि बितायी । विक्रमने कहा ' हे परम मित्र भट्टमात्र ! तुम्हारे जैसा विद्वान् तथा कार्य दक्ष मित्र किसी भाग्यशाली को ही मिलता है । तुमने इस मुसाफरी के अन्दर मुझे जो मदद दी है, वह मैं कभी भी नहीं भूल सकता । इसलिये हे मित्र ! यदि कभी अवन्ती का राज्य मिल जावो, तो अवन्तीपुरी अवश्य आ जाना ।' यह सुनकर भट्टमात्रने हँसते हुए कहा— हे मित्र ! "**प्राप्ते हि विभवे केन दीनं मित्रं न विस्मृतम् ?**" अर्थात् वैभव प्राप्त होने पर हमारे जैसे दीनमित्रों को कौन नहींभूलता ? अर्थात् तुम मुझे भूल जाओगे ।

तब विक्रमादित्य ने कहा " हे मित्र ! इस विषयमें मैं ज्यादा क्या कहूँ ? समय आने पर मालूम होगा ।" इस प्रकार दोनों मित्र परस्पर वार्ता–विनोद करते हुए निकटवर्ती नगर की धर्मशाला में आकर ठहरे । उतनेमें नागरिक लोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधूत का आगमन सुनकर उनके दर्शन के लिये आने लगे। लोगों की बहुत भीड थी।

भर्तृहरिके राज्यत्याग का सुनना—

उसी में परस्पर बात करते हुए लोगों के मुख से सुना कि—' अवन्तीपति भर्तृहरि राज्य छोडकर तपस्या के लिये वन में चले गये हैं और अभी राज्य--गद्दी खाली है और अधम राक्षस के उपद्रव से अवन्ती की प्रजा पीडित हो रही है।' इत्यादि बातें सुनते हुए रात्रि बिताई।

विक्रमादित्यका अवन्ती प्रति गमन—

बाद में प्रभात होते ही अवधूतने भट्टमात्र मित्र से कहा कि—" अब मैं अपने भाग्य की परीक्षा के लिये अवन्ती की ओर जाता हूँ, तुम खुशी से आज्ञा दो।" तब भट्टमात्रने कहाः—

" **शिवास्ते पन्थानः सन्तु** " अर्थात् " तुम्हारा गमन सफल हो, तुम आनन्द के साथ जाओ।" भट्टमात्र विक्रम को भक्ति से भेटकर उनका गुण–स्मरण करता हुआ अपने गाँव की ओर चला। अवधूत भी अवन्ती की ओर भट्टमात्र का गुणस्मरण करता हुआ चला।

अब पाठकों को अवन्ती नगरी का राजदरबार और राजा भर्तृहरि का विस्मयकारक वर्णन आगे के प्रकरण में दीखाया जायगा.

——x——

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरा प्रकरण

राजा भर्तृहरिका दरबार

मणिना वलयं वलयेन मणिः मणिना वलयेन विभाति करः।
कविना च विभुर्विभुना च कविः कविना विभुना च विभाति सभा॥
शशिना च निशा निशया च शशी शशिना निशया च विभाति नभः।
पयसा कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः॥

मणि—रत्न से कंकण तथा कंकण से मणि और इन दोनों से कर (हस्त) शोभा को प्राप्त करता है। कवि से राजा तथा राजा से कवि और इन दोनों से सभा अपूर्व शोभा को प्राप्त होती है। चंद्र से रात्रि तथा रात्रि से चन्द्रमा और इन दोनों से आकाश सुंदर शोभा पाता है। एवं जल से कमल तथा कमल से जल और इन दोनों से सरोवर भी शोभा को प्राप्त करता है॥

इसी प्रकार मालव देशान्तर्गत अति प्रसिद्ध अवन्तीनगरी में अवन्तीपति महाराजा भर्तृहरि कवि-रत्नों से युक्त राजसभा में रत्नजडित सिंहासन पर विराजमान हैं।

पाठकगण! उस समय का राजभक्त तथा सभा की शोभा का वर्णन इस निर्जीव क़लम से सम्भव नहीं। तथापि——
"**अकरणान्मन्दं करणं श्रेयः**" 'अर्थात् मौन रहने की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपेक्षा थोडा भी कहना अच्छा है' इसी न्याय को स्वीकार कर अल्प वर्णन करके राज सभा का परिचय कराता हूँ।

यह अवन्तीनगरी भूमि पर स्वर्ग की अनुपम शोभा दिखाने के लिये मानो अल्कापुरी हो।

अवन्ती वर्णन—

अवन्तीनगरी के एक तरफ तो क्षिप्रा नामक नदी मन्द २ गति से बह रही है। मानो थके हुए अभ्यागत का स्वागत करके श्रम दूर करनेके लिये ही बहती हो। दूसरी तरफ अनेक फल–फूल युक्त लता तथा अशोक आम्रादि उत्तम जाति के वृक्षों तथा भ्रमर, कोकिल आदि पक्षियों से गुंजायमान बहुत सुन्दर बाग–बगीचे हैं। नगर–प्रवेश के द्वार बहुत ऊंचे तथा मजबूत हैं, जिससे शत्रुका आक्रमण नहीं होसकता।

महल व राजसभा का वर्णन—

नगरी के बड़े २ सुन्दर महलों के बीच में लोगों का आकर्षण करता हुआ सुन्दर राजमहल शोभा दे रहा है। राजमहल के घूम्मज परकी ध्वजा आकाश के साथ स्पर्धा कर रही है और पवन के साथ खेल कर अपना आनन्द व्यक्त कर रही है।

यह राजभवन अन्दर से बड़ा ही सुरम्य है बड़े ऊँचे विशालकाय स्तम्भोंसे युक्त तथा बहुत प्रकार के कलापूर्ण चित्रोंसे मनुष्यों का आकर्षण कर रहा है। छत के उपर विविध प्रकार के मीनाकारीगरी और पञ्चरंगी अनेक जातीय फूल तथा सुन्दर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेल बुटे चित्रित हैं। इस में चित्रकारने बड़ी खूबी से अपनी कुशलता दिखायी है। जिससे लोगों को वास्तविकता का भ्रम हो जाता है। दीवालों पर अपने पूर्वज अवन्तीपतियों के चित्र पूर्ण ओजस्विता एवं पराक्रम का स्मरण करा रहे है। इन चित्रो में चतुरकलाकारो ने अपनी सब कुशलता यहाँ ही खर्च कर दी हो, ऐसा प्रतीत होता है।

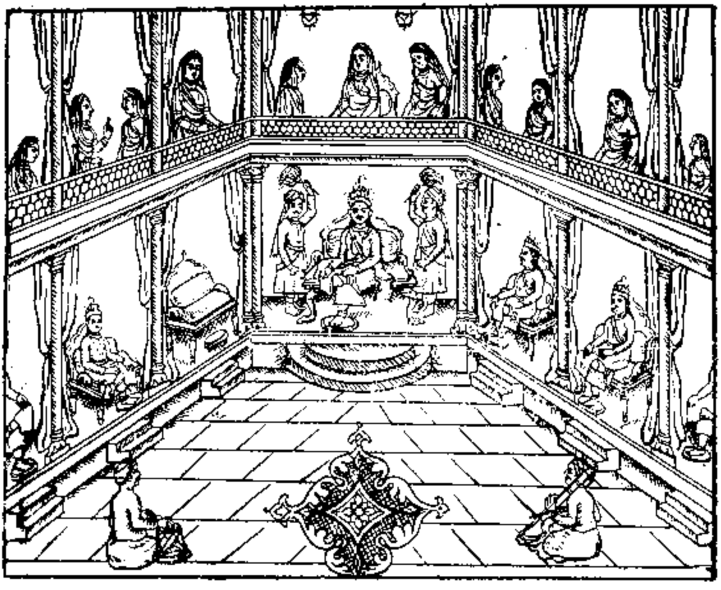

चित्र देखनेवालों को ऐसा लगता है कि ये सजीव ही हैं। ये चित्र अभी थोड़ी देर में ही बोल उठेंगे, वैसा साक्षात्कार होता था। दरबार के ऊपरी भाग में संग—मर मर (आरस पत्थर) से मनो-रंजक झरोंखे बनाये गये हैं और उन पर बड़ी ही सुन्दर और बारीक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाली का काम करवाया है। उसमें अन्तःपुर की रानीयो आदि स्त्रियों के बैठने की अच्छी सुविधा है। फर्श भी अच्छे २ विविध रङ्गीन मनोरञ्जक पत्थर से मण्डित है, अतः सामने मध्य भाग में सुवर्ण तथा रत्न जटित सुरम्य सिंहासन अनुपम शोभा दे रहा है। वहाँ अवन्तीपति महाराज भर्तृहरि विराजमान हैं। दोनों तरफ और भी अच्छे २ सुसज्जित सिंहासन रखे गये हैं। दाहिनी ओर युवराज विक्रमादित्य का सुवर्ण सिंहासन शून्य दिखाई देता है। बाँई तरफ सिंहासन पर बुद्धिसागर नामक राज्य का मुख्य अमात्य बैठा है। और भी बड़े २ वीर सामन्तगण अपने २ योग्य आसन पर विराजमान है। सभा के एक भाग में बड़े २ पंडित दिखाई दे रहे हैं और पंडितगण अपने सुमधुर काव्योंद्वारा सभा को रञ्जित कर रहे हैं। एक ओर बंदीगण (भाट) ऊँचे स्वरसे बिरुदावली बोल कर अवन्तीपति के पूर्वजों के गुणगान कर रहे हैं। राजा के समीप एक भाग में अनेक राजकुमार, मन्त्रिगण और राजपुरोहित, सेनाधिपति वगैरह बैठे हुए हैं। नगर के अन्य भी अच्छे २ श्रेष्ठी तथा धनी, मानी लोग अपने २ आसन पर बैठे हैं।

इसी तरह प्रजावत्सल महाराज भर्तृहरि प्रतिदिन राजभक्त प्रजा से सुख-दुःख सुनते तथा उसका योग्य उपाय करके प्रजा को प्रसन्न रखते थे। एक दिन महाराज इसी तरह सभा में बैठे थे। एक द्वारपाल आया और हाथ जोड़ कर बोला-'हे राजन्! द्वार पर एक ब्राह्मण आपके दर्शन के लिये खड़ा है, आपकी जैसी आज्ञा हो।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मण का आगमन

महाराज ने आने के लिये आज्ञा दी। द्वारपाल झुक कर अपने स्थान पर गया और ब्राह्मण को सभा में भेजा।

ब्राह्मणने सभा में आकर आशीर्वाद देते हुए एक फल राजा के हाथ में दिया।

महाराजने कुतूहल से पूछा कि इस फलका नाम और गुण बताओ तथा इस की प्राप्ति कैसे हुई? वह सब सविस्तर मुझे सुनाओ।

दिव्य फलकी प्राप्ति और उसका वर्णन

ब्राह्मण बोला—'हे राजन्! मैं अत्यन्त दीन हूँ। खाने तक का भी ठिकाना नहीं है। इसलिये मैंने भगवती भुवनेश्वरी देवी का आराधन किया। उसने प्रसन्न होकर मुझको यह फल दिया और इसका प्रभाव सुनाया कि—"हे ब्राह्मण! इस फल के खाने से मनुष्य चिरंजीवी होता है।" तब मैंने फल लेकर कहा कि-'हे अम्बे! हमारे जैसे दुर्भागी को इस फल से क्या लाभ?' क्यों कि धनके बिना चिरंजीवीत्व किसी काम का नहीं केवल दुःख दायक ही है।' कहा भी है:—

वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितम्,
जलेन हीनं बहुकण्टकावृतम्।
तृणैश्च शय्या वसनं च वल्कलम्,
न बन्धुमध्ये निर्धनस्य जीवितम्॥ ५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् व्याघ्रादि हिंसक प्राणियों से व्याप्त और कण्टकों से परिपूर्ण, जलशून्य वनमें घास की शय्या पर वल्कल वस्त्रधारी होकर रहना अच्छा है किन्तु कुटुम्बियों के साथ निर्धन होकर जीना श्रेष्ठ नहीं है। और भी कहा है :—

जीवन्तो मृतका पञ्च, श्रूयन्ते किल भारते।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः, प्रवासी नित्यसेवकः ॥ ४९ ॥

अर्थात् इस संसार में पाँच व्यक्ति जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं—निर्धन, रोगी, मूर्ख, सदा मुसाफरी करनेवाला और सदा नौकरी से जीवन चलाने वाला।

इस प्रकार ब्राह्मण का वचन सुनकर देवीने कहा:—' तेरा भाग्य ऐसा नहीं है जिससे तेरे पासमें बहुत धन होजाय। तो भी जाओ तुम्हें कुछ धन जरूर मिलेगा।' यह सुनकर मैं घर आया और स्नान कर देव-पूजा की। बाद में फल खाने को बैठा तो उस समय मेरे मनमें एक विचार आया— " ममानेन दरिद्रस्य जीवितेनाधिकेन किम् ? " इस दरिद्र अवस्था में मुझे लम्बे जीवन से क्या लाभ ? इस लिये यह आयुवर्धक दिव्य फल अवन्तिपति महाराज को दे दिया जाय, जिनके जीवन से अनेकों प्राणियों को सुख प्राप्त हो। नीतिशास्त्र कहता है :—

दुर्बलानामनाथानां, बाल-वृद्ध-तपस्विनाम्।
अन्यायैः परिभूतानां, सर्वेषां पार्थिवो गतिः ॥ ५६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् दुर्बल, अनाथ, बाल, वृद्ध तथा तपस्वी और अन्यायी (दुष्ट चौरादि) से पीडित मनुष्य आदि प्राणियों के राजा ही शरण भूत है। अर्थात् इनका रक्षक राजा ही है।

यह विचार कर मैं आप श्रीमान् को यह दिव्य फल अर्पण करने आया हूँ। कृपया यह स्वीकार कर मुझ गरीब पर अनुग्रह करें।

राजा भर्तृहरि को फलकी भेट

दिव्य फल का प्रभाव विप्र के मुख से सुन कर गोब्राह्मण-प्रतिपालक महाराज ने प्रसन्नता से फल स्वीकार किया और कुछ धन देकर ब्राह्मण की दरिद्रता को दूर भगाया। धन लेकर ब्राह्मण आनन्दित होता हुआ अपने घर लौटा। बाद सभा विसर्जन कर महाराज अन्तःपुर में गये।

वाचक गण! आप को यह ज्ञात होगा कि महाराज भर्तृहरिकी पटरानी का नाम इस चरित्रकार ने 'अनङ्गसेना' निर्देश किया है किन्तु आपने नाटकादि अन्य पुस्तकों में पटरानी का 'पिंगला' नाम ज्यादातर पढा होगा। अतः सम्भव हो सकता है कि अनङ्गसेना का ही अपरनाम पिंगला हो। महाराज भर्तृहरि की पटरानी अत्यन्त सम्माननीय एवं अनुपम प्रीतिपात्र थी। वे उसके साथ सांसारिक सुख भोगते हुए शान्ति एवं प्रजाप्रेम के साथ अपना काल व्यतीत करते थे।

—x—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौथा प्रकरण

भर्तृहरिका संन्यासग्रहण

बूरा जो देखन मैं चला, बूरा न देखा कोय।
जो दिल खोला आपना, मुझसा बूरा न कोय॥

प्रजारक्षक महाराज भर्तृहरि ने ब्राह्मण द्वारा प्राप्त किया हुआ दिव्यफल खाने की इच्छा की। इतने में एक विचार मन में आया कि प्राणप्रिया पटरानी बिना मेरा लम्बा जीवन किस कामका? इस विचार से स्नेह प्रकट करते हुए राजाने पटरानीको वह दिव्यफल दे दिया और वार्ता–विनोद कर अन्तःपुर से आराम भवन में चले गये।

दिव्य फलकी पटरानीको भेंट

महाराज ने अति प्रेम के कारण ही आयु बढानेवाले फल को स्वयं न खाकर पटरानी को दिया, किन्तु नीतिशास्त्र में कहा है कि:–"अति सर्वत्र वर्जयेत्" अर्थात् संसार के सभी कार्यों में अति करना बूरा है। बहुत पानी बरसने से दुष्काल पडता है। अधिक खाने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से अजीर्ण हो जाता है और अत्यन्त दान करने से बलिराजा बंधन में पड गये। गर्व से ही रावण मारा गया। अति रूपवती होने के कारण ही सीता हरी गई। इसलिये ही अति सर्वत्र वर्जनीय कहा है।

पटरानी द्वारा अपने यारको भेट

इधर महारानी साहिबा महाराज से मिले हुए फल का प्रभाव सुनकर खुश हुई और सोचने लगी कि यदि मेरा प्राणप्रिय महावत मुझसे पहिले मरा तो मैं भी मृतप्राय: ही हो जाऊँगी।

इस प्रकार विचार कर रानी ने वह फल अपने यार महावत को देना ही उचित समझा और स्नेह प्रकट करते हुए वह फल महावत को देकर उसका गुण सुनाया।

महावत नगर की मुख्य वेश्या में आसक्त था। उसने वह फल वेश्या को दिया और उसका प्रभाव सुनाया। तब वेश्या ने उस फल को प्राप्त कर सोचा कि:—' मेरा यह नीच, निन्दनीय जीवन का लम्बा होना किस कामका ? इसलिये यह फल तो गो-ब्राह्मण प्रतिपालक महाराज को देना चाहिये।

दिव्य फलका पुनः राजा के पास आना

जिनके दीर्घजीवन से प्रजा का उपकार होगा और मुझ पर राजा प्रसन्न होंगे। यह विचार कर वेश्याने राजसभा में आकर फलका विस्तृत प्रभाव गा सुनाया और भक्ति से महाराज को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फल समर्पित किया ।

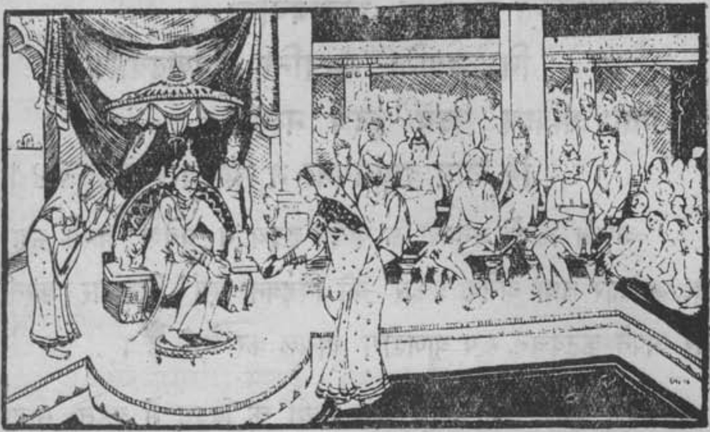

उस फल को देखते ही महाराज आश्चर्यचकित हुए और स्मरण आया कि यह फल तो वह दरिद्र ब्राह्मण का दिया हुआ ही मालूम पड़ता है जो मैंने पटरानी को खाने के लिये दिया था। तब उन्होंने इस बात का पता लगाया तो अन्त में मालूम हुआ कि यह पटरानी की ही करामत है ।

स्त्री चरित्रका विचार

जैसा शास्त्रकारोंने कहा है :—

स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्,
देवा न जानन्ति कुतो मनुष्याः ।

अर्थात् स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य देव भी जानने में अशक्त हैं तो मनुष्य की गणना ही क्या ? स्त्रियों के विषय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रकारोंने और भी विवरण किया है:—

सम्मोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥ ६४ ॥

अर्थात् स्त्रियों मनुष्यों के पवित्र हृदय में प्रवेश करके मोह, मद, अहंकार तथा अनेक प्रकार की विडंबना एवं तिरस्कार करती और अपने कटुवचन रूप बाणद्वारा घायल कर देती हैं ।

इस प्रकार राजा भर्तृहरि ने स्त्रियां के विषय में बहुत सोचा और अन्त में यही निश्चय किया कि स्त्रियों पर विश्वास करना अपने आत्मा को ही धोखा देना। देखो, यह पटरानी मुझसे किस प्रकार बातें बनाकर, मुझे खुश किया करती थी । मालूम होता था कि मानों मेरे बिना एक क्षण भी यह नहीं रह सकती । मैं भी इसकी मायावी मधुर भाषा में फँसा और अपने जीवन से भी अधिक मानकर इससे सम्मानपूर्वक प्रेम करता था, तथापि वह महावत के प्रेम में पड़ी । किसीने ठीक ही कहा है कि :—

" इत्थियां पुत्थियां कभी न सुद्धियां "

अर्थात् प्रायः स्त्रियों को कितना भी सँभाले और पुस्तकों को चाहे जितनी बार शुद्ध करने का प्रयत्न किया जाय तो भी शुद्ध नहीं हो सकती हैं । धिक्कार हो मुझे जो मैं इस प्रकार स्त्री में आसक्त रहा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह दिव्यफल मेरे द्वारा पटरानी को, पटरानी द्वारा महावत को, और महावत द्वारा वेश्या को तथा वेश्या द्वारा पुनः मुझे प्रसन्न करने के लिये अर्पण किया गया। ये सब हाल राजाने ठीक ठीक जाना तो हृदय में बडा खेद उत्पन्न हुआ और संसार की असारता सोचते हुए स्त्रियों के माया और प्रपंच के स्वयं अनुभव से संसार के प्रति महाराज को तिरस्कार एवं विरक्तभाव उत्पन्न हुआ और बोले कि—

भर्तृहरिकी विरक्ति—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता,
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥६३॥

अर्थात् जिस पटरानी का मैं हमेशा प्रेम से चिंतन करता हूँ वह मुझे नहीं चाहती और दूसरे(महावत)को चाहती है, वह पटरानी जिसको चाहती है वह महावत पटरानी को नहीं चाहता किन्तु वेश्या में आसक्त है, वह वेश्या मुझे प्रसन्न करना चाहती है। इसलिये उस **'रानी'** को, **'महाव्रत'** को, **'कामदेव'** को तथा इस **'वेश्या'** को और **'मुझे'** धिक्कार हो।

यह संसार नीरस है इसमें कुछ नहीं है। जैसा कहा है—

अहो! संसार–वैरस्यं, वैरस्य कारणं स्त्रियः।
दोलालोला च कमला, रोगा भोगा देहं गेहम् ॥६६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् अहो ! यह संसार नीरस है। इसका प्रधान कारण स्त्री, चंचललक्ष्मी, रोग तथा भोग, शरीर और घर ये सब है।

इस असार संसार में सब वस्तुऐं क्षणिक सुख देने वाली हैं तथा दुःख के कारण हैं किन्तु एक वैराग्य ही निर्भय एवं सुखका कारण है। जैसा कहा है—

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं, वित्तेऽग्निभूभृद्भयम्,
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं, वंशे कुयोषिद्भयम्,
माने म्लानिभयं जये रिपुभयं, काये कृतान्ताद् भयम् ॥
सर्वं नाम भयं भवेच्च भविनां, वैराग्यमेवाभयम् ॥

अर्थात् मनुष्यों को भोग में रोग का भय, सुख में क्षय का भय, धनादि संग्रह में राजा एवं अग्नि का भय, नौकरी में मालिक का भय, गुण में दुर्जन–खल का भय, वंश में व्यभिचारिणी स्त्री का भय और सम्मान में दोष का भय रहता है, किन्तु संसार में एक वैराग्य ही निर्भय है। उसमें किसीका भय नहीं है।

धन्य हैं, वे पुरुष जो इस असार संसार को छोड़ कर अपने आत्मकल्याण के लिये परमानन्द स्वरूप परमात्मा के ध्यान में मग्न हो उस आनन्द रस को पीते हैं। जैसा कहा है—

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता–
मानंदाऽश्रुजलं पिबन्ति शकुनाः निःशंकमंकेशयाः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्येषां तु मनोरथैः परिचितप्रासाद-वापीतट-
क्रीडाकाननकेलिमण्डनजुषामायुः परं क्षीयते ॥ ६७ ॥

अर्थात् परमात्मा के ध्यान के लिये पहाड़ की गुफा में बसते हुए जिस श्रेष्ठ तपस्वियों के आनन्दाश्रु जल उनके गोद में बैठकर पक्षी पीते हैं वे धन्य हैं। और दूसरे जो कि अपने मनोरथ से अच्छा महल तथा वापी-नीर में क्रीडासक्त और वन-उपवन में केलि करने वाले हैं, उनकी तो आयु व्यर्थ ही क्षीण होती है।

संन्यासस्वीकृति—

यह विचार करते करते परमज्ञानसागर में मग्नचित्त राजा भर्तृहरि को संसार से वैराग्य हो गया और तृणवत् राज्य को शीघ्र छोड़कर उसने उत्तम योग यानी संन्यास स्वीकार किया।

बड़े बड़े चक्रवर्ती राजा अपने विशाल राज्य और समृद्धि को एक क्षण में तृणवत् समझकर छोड़ देते हैं, पर एक अज्ञानी भिखारी दमड़ी का खप्पर भी नहीं छोड़ सकता। कहने का अभिप्राय यही कि—'जो कर्म में शूरवीर होते हैं वे धर्म में भी शूरवीर होते हैं।'

इसके बाद सम्पूर्ण राज्य में इनके वैराग्य के कारण प्रजा तथा राज्याधिकारियों में सन्नाटा छा गया और प्रजा अनेक तरहकी बातें करने लगी।

मन्त्रीवर्गकी विनति—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाद मन्त्रीवर्ग मिलकर वैराग्य वासित योगी भर्तृहरि के पास जाकर विनंति करने लगा—'हे राजन्! आप यह क्या करते हो, क्यों कि यह सब राज्य आपके बिना नाश हो जायगा।'

यह सुनकर योगी, भर्तृहरि गम्भीर स्वर से बोले कि–'हे अमात्य! यह राज्य किसका? बंधु बान्धव किसके? क्योंकि जैसे पक्षीगण अपने स्वार्थवश किसी एक वृक्षपर आते हैं और फिर अभीष्ट सिद्ध होजानेपर सब अपने अपने स्थान में चले जाते हैं, उसी तरह मनुष्य अपने स्वार्थवश प्रेम करके मिलते हैं।

इस परिवर्तनशील संसार में करोड़ों माता, पिता, पुत्र, स्त्री और भाई तथा बन्धु जन्म–जन्मान्तर में हो चुके हैं। कहो, मैं किसका बन्धु और मेरा कौन बान्धव है? जैसे—

सहस्रशो मया राज्य–लक्ष्मीः प्राप्ता भवान्तरे।
वैराग्यश्रीर्न कुत्रापि, लब्धा स्वर्गापवर्गदा॥ ७३॥

अर्थात् इस अनादि संसार में हम कितनेबार भवान्तर में राज्यलक्ष्मी तथा पूर्ण ऐश्वर्य पाये होंगे, किन्तु स्वर्ग और मुक्ति को देने वाली वैराग्य लक्ष्मी को मैंने किसी जन्म में नहीं पाया।

इसलिये मुझे इस अनेक व्याधिग्रस्त राज्य से वैराग्य ही अच्छा लगता है। अतः तुम इस विषय में आग्रह मत करो, क्यों कि शुद्ध तपस्वियों को थोडी भी गृहचिन्ता पापरूपी कीचड लगाती है। जैसा कहा है—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यतीनां कुर्वतां चिन्तां, गृहस्थानां मनागपि ।
जायते दुर्गतौ पातः, क्षयश्च तपसः पुनः ॥ ७४ ॥

अर्थात् गृहस्थाश्रम की चिन्ता करने से साधुओंका तप क्षीण होता है। और ये दुर्गति में गिरते हैं।

सद्भावो विश्रम्भः स्नेहो रतिव्यतिकरो युवति जने।
स्वजनगृहसंप्रसारः तपः शीलव्रतानि स्फोटयेत् ॥

अर्थात् युवती स्त्री में सद्भाव रखना तथा उनमें विश्वास करना और रतियुक्त प्रेम करना और स्वजन के घरकी चिन्ता–ये सब तप, शील और व्रत को नाश करते हैं।

इस प्रकार बोलते हुए योगी ×भर्तृहरि मणि रत्नों में तथा तृण में समान बुद्धि रखते हुए मन्त्रीवर्ग तथा पौरजनों द्वारा अतिनम्र भाव से विनन्ति करने पर भी अपने वैराग्य भाव में स्थिर रह कर राज्य वैभवको त्याग कर अज्ञान तथा पापनाशार्थ आत्मकल्याण करने के लिये जंगलमें चले गये।

× पाठको ! महायोगी भर्तृहरि अति प्रखर विद्वान् थे। उनके बनाये हुए 'वैराग्यशतक' 'शृंगारशतक' और 'नीतिशतक' आदि बड़े ही भावपूर्ण ग्रंथ संस्कृत–अभ्यासी विद्वत्समाज के आगे अभी भी मौजूद हैं और वे हिन्दी, गुर्जर आदि भाषा में अनुवाद के साथ अनेक संस्थाओ की तरफ से छपे हुए हैं। इनके ग्रन्थ पढने योग्य तथा ज्ञान बढाने वाले हैं। इसलिये पाठको ! यदि अभीतक ऐसा अवसर न मिला तो अब अवश्य पढने की कोशिश करें।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवाँ प्रकरण

अवधूत (विक्रम) को राज्य देनेका निश्चय

शोकविह्वल अवन्ती—

मन्त्रीवर्ग और पौरजनों के अत्यन्त आग्रह करने पर भी अवन्तीस्वामी भर्तृहरि तप करने के लिये प्रजाको निराधार छोड़कर वनमें चले गये। इस लिए जो अवन्ती नगरी स्वामीयुक्त होने के कारण अनेक दिव्य वस्त्राभूषणों से सुन्दर सजी हुई तथा पुष्प फल से भरी हुई मानो अपने पति का स्वागत कर रही थी, वही अवन्ती नगरी आज कर्मवश विधवा स्त्री की तरह भूषणादि हीन अपनी शोकाश्रु से मुखचंद्र को धो रही है। इसी प्रकार जो जो अवन्ती राज्य के प्रजाजन इस वृत्तान्त को सुनते, वे थोडी देर के लिये तो काष्ठवत् हो जाते और पीछे शोकाश्रु बहाकर जलाञ्जलि देते थे। इधर राज्य–सिंहासन शून्य देखकर अपना सुन्दर मौका पाकर 'अग्निवेताल' नामक एक असुर उसी समय अदृश्य रूपमें राज्यगद्दी पर बैठ गया।

श्रीपतिका राज्याभिषेक तथा मृत्यु—

अब राजा के बिना राज्य–सिंहासन शून्य देखकर मन्त्रीवर्ग तथा प्रजागण के उस सिंहासन पर कुलीन 'श्रीपति' नामक प्रसिद्ध क्षत्रिय को बड़े महोत्सव के साथ उत्साह सहित विधिपूर्वक गद्दी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवीन किया। दिन तो इसी प्रकार धूमधाम के साथ बीत चुका। रात्रि में सब अपने अपने घर लौट गये और राज्य-कर्मचारी भी अपना कार्य समाप्त कर निश्चिन्त हो कर सो गये। नूतन अवन्तीपति श्रीपति महाराज शयन-गृह में सोये थे। मध्यरात्रि में अग्निवेताल ने आकर सोये हुए राजा को मार डाला। सुबह होते ही राज-कर्मचारी लोग राजाको शय्या न छोडते देखकर आश्चर्यान्वित हुए और कमरे में जाकर उनको शरीर हिलाकर उठाया तो भी न उठे। तब सब ने निश्चय किया कि राजा तो मरे हुए हैं। ढकी हुई आग के समान जो शोकाग्नि शान्त हुई थी वह आज फिर से धधक उठी।

नूतन राजा को प्राणाधार मानकर जो सारी प्रजा कल आनन्द-सागर में ओतप्रोत थी, वही आज दुर्दैववश राजा की अकाल मृत्युसे दुःखसागर में डूब गई।

क्षत्रियोंको राज्य का सुप्रत करना और अग्निवेतालका उपद्रव—

फिर प्रजागण तथा मन्त्री-वर्ग आदिने इसी प्रकार दूसरे कई क्षत्रिय कुमारों को गद्दीपर बैठाया, किन्तु दुष्टात्मा अग्निवेताल असुर क्रम से उन सबों को उसी प्रकार रात्रि में यमद्वार तक पहुँचा देता था। तब प्रधान वर्ग इस बात को देव-कोप समझकर उसकी शान्ति के लिये बहुत बलि दिया करते थे, किन्तु तब भी वह दुष्टबुद्धि शान्त न हुआ; क्यों कि दुर्जनों का सन्मान भी करे, तो भी सज्जन को कष्ट-ही देता है। जैसे सर्प को कितना भी दूध पिलाया जाय तो केवल विष की ही वृद्धि होती है परन्तु शान्ति नहीं होती, एवं कौए को दूध से स्नान करावें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो भी उसकी श्यामता नष्ट नहीं होती । कहा है कि—

स्नेहेन भूरिदानेन कृतः स्वस्थोऽपि दुर्जनः ।
दर्पणश्चान्तिके तिष्ठन् करोत्येकमपि द्विधा ॥

अर्थात् दुर्जन मनुष्य स्नेह और धन से सन्मानित होने पर भी हृदय की बातें लेकर अपने को धोखे में डालता है, जैसे दर्पण समीपमें रहकर एक मुख को भी दो करके दिखाता है ।

पाठक गण ! अब आप यह भी जानने को उत्सुक होंगे कि विक्रमादित्य अवधूत के वेष में भट्टमात्र से अलग होकर कहाँ गया और उसका क्या हुआ ? ।

अब मैं वहाँ से कथा का आरम्भ करूँगा, जहाँ दूसरे प्रकरण में विक्रमादित्य भट्टमात्र से अलग हुए हैं ।

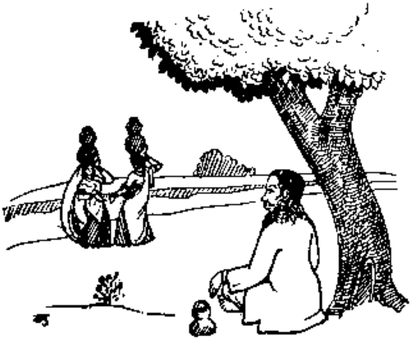

विक्रम अवधूत वेष में घूमते घामते अवन्ती नगरी के बाहर क्षिप्रा नदी के तट पर आ पहुँचा । वहाँ एक विशाल वटवृक्ष के नीचे अवधूतने अपनी धूनी लगायी और आसन जमाकर बैठ गये। इस अवधूत को देखने के लिये नगर से लोग वहाँ आने लगे । वे प्रणाम करके बैठ जाते थे तथा उपदेशामृत सुनते थे । धीरे धीरे नगरी की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जनता पर इनका अच्छा प्रभाव पडा, जिससे सैंकडों लोग दर्शन के लिये आने लगे। अवधूत की बहुत ख्याति सुनकर एक दिन राजमन्त्री उनके पास दर्शनार्थ आया और अवन्ती की राजगद्दी का हाल और अग्निवैताल का उपद्रव सम्बन्धी सब वृत्तान्त अवधूत को सविस्तर सुनाया। साथ साथ इसकी शान्ति का उपाय और अवन्ती राज्य की रक्षा करने की नम्र प्रार्थना की।

यह सुनकर अवधूत को भट्टमात्र के वचन एवं श्रृगाली की भविष्य वाणी याद आई। मन्त्रीसे विक्रमने विक्रमादित्यको ढूँढने संबंधी कहा। वेतालको संतुष्ट करने के लिए बलि आदि देने की बात कही। अंत में मनहीमन सोच कर मन्त्री से कहा:—"हे मन्त्रीश्वर! तुम लोग यदि यह राज्य मुझको दे दो, तो मैं उस दुष्ट असुर को किसी प्रकार वश करके समस्त प्रजा की न्याय से रक्षा करूँगा। राज्य नीति में कहा भी है—

÷ "दुष्ट को शिक्षा, स्वजनों को सत्कार, न्यायसे कोष (राजभंडार) की सदा वृद्धि, सब प्रजाओं में समदृष्टि तथा शत्रु आदिसे राज्य की रक्षा ये पांच राजाओं के लिये प्रधान धर्म बताये गये हैं।"

÷ दुष्टस्य दण्डः स्वजनस्य पूजा,
न्यायेन कोशस्य सदैव वृद्धिः।
अपक्षपातो रिपुराष्ट्ररक्षा,
पञ्चैव धर्माः कथिताः नृपाणाम् ॥ १२४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब मन्त्रीने अवधूत का रूप, सौंदर्य तथा बल-साहस आदि देख कर बहुत प्रसन्नता से इस वचन को स्वीकार किया। इसके बाद मन्त्री अवधूत के पास से प्रसन्नता से नगरी में लौट आया और नगर के माननीय प्रजाजन तथा राज्याधिकारियों को महल में आमन्त्रित कर अवधूत के साथ हुई बात सब के समक्ष कही और सबने मिलकर परस्पर विचार करके अवधूत को शुभ मुहूर्त में राजगद्दी पर बैठाने का निश्चय किया। तब नगर के चतुष्पथ तथा मार्ग और बाजार आदि सब स्थानों को अनेक प्रकार के फूल-माला तथा ध्वजा-पताका और तोरण आदि से सुशोभित करने की सूचना करके सब अपने अपने स्थानपर गये।

पाठक गण! इस परिचित और प्रभावशाली महापुरुष अवधूत का राज्यसिंहासन पर स्वामित्व होना सुनकर प्रजामें आनन्द छा गया, भविष्य की शुभ आशा रखती हुई सभी प्रजा नगर को सुशोभित करने में शीघ्रता करने लगी क्योंकि राज्याभिषेक का शुभ मुहूर्त ज्योतिषियोंने कल का ही निश्चित किया है। यद्यपि अवन्ती की प्रजा तथा कर्मचारी-गण सारे दिन के कार्य से थके हुए थे, तथापि उत्साह से सभी का मुखकमल खिल रहा था। इधर सूर्य भगवान् भी अपनी सवारी से अस्ताचल की चोटी पर पहुंच गये थे। उधर रात्रि भी जगतकी थकावट दूर करने को आ पहुँची थी। एक प्रहर रात्रि व्यतीत हो चुकी है। सब लोग अपने अपने शयन गृह में जाकर शय्या की गोद में लेट गये हैं। रात्रि निःशब्द हो चुकी थी, उस समय वह उज्ज्वल वेषधारी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवधूत भी क्षिप्रा नदी के तट पर व्याघ्रचर्म पर अपने हाथ पर सिर रखकर निद्रावस्था में सोया हुआ था। रात्रि धीरे धीरे व्यतीत हो गई। जब अवधूत की नजर अकस्मात् आकाश-पट पर पहुँची, तो उसने प्रभात सूचक प्रकाशमान (शुक्र) तारा देखा तब वहां इष्टदेव का स्मरण करते हुए उठा और नित्यक्रिया तथा शौचादि से निवृत्त हुआ। उस समय पूर्व दिशा ने बालसूर्य्य को अपनी गोद में धारण किया था। अर्थात् प्रभात हो चुका था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठा प्रकरण

विक्रमका राज्यतिलक

प्रभात होते ही अवन्ती नगरी में नगारे बजने लगे और सब लोग अपने नित्यकृत्य से निवृत्त हो कर उत्सव में सम्मिलित होने की तैयारी में लगे । मन्त्रिगण की आज्ञा से हस्तिरत्न को सुशोभित कर सुवर्ण अम्बाडी आदि भूषण पहनाकर सैन्यदल के साथ राजभवन के प्रांगणमें लाया गया और वहाँ से बड़ी धूमधाम से जुलूस निकाल कर क्षिप्रा नदी के तट पर आये। वहाँ अवधूत से रोमाञ्च तथा हर्षकारी भाव से बड़े बड़े सामन्तों, अमीरों, सरदारों, सेठसाहुकारों और राज्यकर्मचारियों ने उनके चरणों में नतमस्तक होकर राज-हस्तीपर आरूढ होने की नम्र प्रार्थना की ।

प्रार्थना स्वीकार कर अवधूत हस्तीपर आरूढ हुए। उस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समय प्रजाने हर्षावेश में जयघोषणा कर आकाश मंडल को गुञ्जित किया तथा विविध जातिके फूलों की वर्षा की और माला पहनाई। अवधूत चारों ओर अंगरक्षक, सेना और पौरजनों से सुशोभित होकर अवन्ती की तरफ चले। शुभ मुहूर्त में हर्ष तथा उत्सव के साथ नगर में प्रवेश हुआ। नगर के बड़े बड़े बाजारों में तथा चतुष्पथ, त्रिपथ आदि मुख्य मुख्य मार्ग से राजभवन में सवारी आ पहुँची।

अवधूतका राजभवनमें आगमन—

पाठकगण! रणभूमि में जय लक्ष्मी प्राप्त करने में जैसे राजा का भाग्य ही मुख्य होता है, सैनिकादि सहायक होते हैं, वैसे ही राज्यलक्ष्मी आदि की प्राप्ति भाग्य के अनुसार भाग्यशाली व्यक्ति को होती है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

यह अवधूत ही विक्रमादित्य है, यह बात वाचकों को छोडकर अवन्ती की सारी प्रजा और प्रधान आदि सभी कर्मचारी वर्ग से गुप्त ही है।

अवन्ती के राज्यभवन में बड़े बड़े सामन्त, अमीर, प्रधान, अमात्यादि, सेठसाहुकार, राज्य के उच्च वर्ग के कर्मचारी आदि तथा अन्य प्रजाजन से राज–सभा भरी हुई है। बीच में रत्नजडित सिंहासन पर एक सुन्दर सुघटित देहवाला व्यक्ति अवधूत के वेषमें विराजमान है। सिंहासन के दाहिनी और बायीं ओर सुन्दर सिंहासनों पर बडे बडे पराक्रमी सामन्त लोग बैठे हैं। उसके पास और भी कई कुर्सियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगी हैं, जिनपर अनेक राजकुमार और अच्छे अच्छे कर्मचारी लोग बैठे हैं। उस समय की राजसभा और सारी अवन्तीपुरी की शोभा का तथा प्रजा के आनन्द उल्लास का वर्णन करना हमारी निर्जीव और मूक लेखनी से सम्भव नही है।

सभाजनो द्वारा राज्य-तिलक—

इस सभाद्वारा सबके समक्ष विधिपूर्वक बड़े धूम—धाम एवं हर्ष—उत्सव के साथ शुभ मुहूर्त में अवधूत को राज्यतिलक लगाया गया।

इस विद्यासिद्ध अवधूत को अपना स्वामी—रक्षक समझकर अवन्ती की प्रजा में उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ और सारी प्रजा को यह विश्वास हुआ कि ये अपने विद्या तथा पराक्रम से उस अधम असुर को संहार कर अच्छी प्रकार राज्य सँभालेंगे। सारी प्रजाने आजका दिन आनन्द उत्सव में ही बिताया। रात्रि में राजवी (अवधूत) के कथनानुसार राजमहल में स्थान स्थान पर मेवा, मिठाई और अच्छे अच्छे पक्वान्नो के थाल भर भर कर रखे गये और सुगन्धित पुष्पों को सर्वत्र प्रसारित कर दीपमाला से सम्पूर्ण राजमहल को सुशोभित किया और अवधूत राजवी को अपने भाग्य के ऊपर छोडकर मंत्रीवर्ग तथा कर्मचारी गण अपने अपने स्थानपर गये। राजवी भी राजमार्ग और अपने शयनगृह के सैनिकों को सावधान रहने की आज्ञा दे कर अपने पलंग पर जाग्रत अवस्था में सावधानी के साथ खड्ग लेकर निर्भय होकर बहुत धीरता के साथ लेट रहे। शास्त्र में कहा है:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"सिंह गुफा से शिकार के लिये निकलते समय शुभ शकुन तथा चन्द्रबल और अपनी रिद्धि-सिद्धि का विचार नहीं करता है, परन्तु अकेला ही लाखों हाथी आदि बलवान् जानवर का सामना करता है। इसलिये जहाँ साहसरूप शक्ति है, वहाँ ही सब प्रकार की सिद्धि होती है।" ×

असुरको बलि व उसकी संतुष्टि

इसके बाद मध्यरात्रि में भयंकर रूप धारणकर अग्नि-वेताल असुर हाथ में खड्ग लेकर राजमहल में राजवी अव-धूत के शयन-गृह में शय्या के निकट आया तब अवधूत-राजवीने पराक्रमयुक्त वाणी से कहा कि 'हे असुर! पहले यह रखे हुए बलि को लेकर पुष्ट हो जाओ, फिर मेरे साथ युद्ध करना होतो तैयार होना।' अग्निवेताल ने राजा की बताई हुई बलि खाई। राजा का निर्भयसूचक वचन सुनकर उसने विचार किया कि यह राजा तो बहुत पराक्रमी मालूम पडता है। कहाभी है कि—"जो अनेक विघ्नों का सामना करते हुए अखण्ड उत्साह से आरम्भ किये हुए कार्य को बिना समाप्त किये नहीं छोडता है, वैसे सिंह सदश बलवान् पुरुष से देव भी शंकित होते हैं"।

"सदाचारी, धीर, धर्मवान् और दीर्घदर्शी विचारदक्ष-और न्याय से चलने वाले पुरुषको राज्यलक्ष्मी रहे या चली जाय

×सीह सउण न चंदबल नि जोइ धण रिद्धि।
एकल्लो लक्खहिं भिडइ जिहां साहस तिहां सिद्धि ॥१२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसकी परवाह नहीं रहते है।" ×

"केसरीसिंह को मैं अकेला हूँ, असहाय हूँ, दुर्बल हूँ तथा शस्त्रहीन हूँ इस प्रकारका विचार स्वप्न में भी नहीं आता है।" ÷

इस प्रकार अवधूत राजवीका धैर्ययुक्त वचन सुनकर अग्निवेताल सोचने लगा कि यह पुरुष महा पराक्रमी और सत्त्वशाली लगता है। राजवी को बडा ही भाग्यशाली तथा राज्य के योग्य देखकर उनके आगे सन्तुष्ट हो कर बोला—'हे नरवीर! "तुष्टोऽहम्" अर्थात् मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। इसलिये तुम नीति मार्ग से इस राज्य एवं प्रजाका पालन करो और इसी तरह की श्रेष्ठ बलि सामग्री नित्य हमारे लिये रखना। तब अवधूत राजवीने इस बात को स्वीकार किया और अग्निवेताल भी अदृश्य हो अपने इष्टस्थान को चला गया।

पाठक गण! सोचिये, अवधूत विक्रमसे अधम बलवान् असुर अग्निवेताल जिसने अनेक राजाओं को मारकर स्वर्गधाम पहुँचाया था, क्षण में ही क्योंकर वशीभूत हुआ? यह कहना होगाकि अनेक

×सदाचारस्य धीरस्य, धमतो दीर्घदर्शिनः।
न्यायप्रवृत्तस्य सतः, सन्तु वा यान्तु वा श्रियः ॥१३५॥

÷एकोऽहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः।
स्वप्नेऽप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ॥१३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणों के रहते हुए भी इनमें पराक्रम और साहस अधिक था। क्यों कि:—

" पराक्रमशाली मनुष्य के लिये पर्वत के समान बडे कार्य भी तृण के तुल्य तुच्छ हो जाते हैं। और सत्त्वहीन पुरुष के लिये तृण तुल्य छोटा कार्य भी पर्वत के समान बड़ा हो जाता है। और भी कहा है:—" *

" जो मनुष्य इस पृथ्वी पर विपत्ति में तथा दुःसह विरह में अत्यन्त धैर्यका आश्रय लेता है वही पुरुष है और सब स्त्री के समान हैं।" +

---

* पराक्रमवतां नृणां, पर्वतोऽपि तृणायते।
ओजोविवर्जितानां तु, तृणमप्यचलायते॥

\+ अथ क्षितौ विपत्तौ च, दुःसहे विरहेऽपि च।
येऽत्यन्तधीरताभाजस्ते नरा इतरे स्त्रियः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सातवाँ प्रकरण

विक्रमका पराक्रम

अब प्रभात होते ही मन्त्री वर्ग और राजकर्मचारी तथा पौरजन आदि मिलकर रात्रि सम्बन्धी हाल देखने के लिये राजमहल में आये। वहाँ राजवी अवधूत को सकुशल देखकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। अवधूत राजवी के मुख से रात्रि सम्बन्धी सब हाल सुनकर बहुत ही आश्चर्य-चकित हुए और नमस्कार कर कहने लगे कि हे राजन ! हे धीर-वीर ! चिरकाल तक आपकी जय हो।

प्रजाकी प्रसन्नता

मन्त्रीलोग एवं प्रजागण ने राजाका पुनर्जन्म समझकर सारी नगरी में स्थान-स्थान पर बडे उत्सव के साथ तोरण आदि से नगरी को सुशोभित कराया। आजका दूसरा दिन भी पौरजनने आनन्द से बिताया। मन्त्रीवर्ग और प्रजागण आदि को रात्रि की हालत से अवधूतकी शक्तिका विश्वास हुआ तथा उसके प्रति बहुमान उत्पन्न हुआ और परस्पर कहने लगे: 'ये राजवी विद्या-सिद्ध तथा बडे ही पराक्रमी हैं, इसलिये ये दुष्ट अग्निवेताल को वश करके या नाश करके अच्छी प्रकार राज्यपालन करेंगे।'

इस प्रकार राजवी अग्निवेताल के कथनानुसार- कुछ दिन तक हमेशा बलि-सामग्री तैयार कर रखता था और अग्निवेताल भी रोज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रात्रि में आकर स्वेच्छा से बलि लिया करता था। एक दिन रात्रि में उसी प्रकार बलि देकर राजवीने अग्निवेताल से पूछा कि–'हे अग्निवेताल! आप में किस किस प्रकारका ज्ञान एवं कौन कौन सी शक्तियाँ हैं?' इस प्रकार पूछने पर अग्निवेताल हँसते हुए बोला की–"हे राजन्! जो मेरे विचार में आता है वह मैं करता हूँ, दूरसे ही सबको जानता हूँ और सब जगह जा सकता हूँ।"

अग्निवेताल का यह वचन सुनकर राजवीने उससे कहा कि–'हे मित्र! मेरी आयु कितने वर्ष की है सो कहो।'

तब अग्निवेतालने अवधिज्ञान से जानकर कहा कि–"हे राजन्! तुम्हारी आयु पुरी सौ वर्ष की है।"

तब यह सुनकर राजवीने कहा कि मेरी आयु के सौके अंक में जो दो शून्य पडे है, उन के संग से मेरा जीवन शोभा नहीं देता। जैसे कहा है कि:—

"जैसे मनुष्य रहित घर, वृक्षादि से रहित वन तथा मूर्ति के बिना बडा मंदिर भी शोभा नहीं देता एवं राजा के बिना राज्य और सैन्य नहीं शोभते हैं।" +

उसी प्रकार मेरे जीवन में–आयुके १०० के अंक में दो शून्य शोभा नहीं देते हैं। इसलिये 'हे अग्निवेताल!

+ शून्यं गृहं वनं शून्यं, शून्यं चैत्यं महत्पुनः।
नृपशून्यं बलं नैव, भाति शून्यमतिमित्र ॥ १४६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे सौ वर्ष की आयु में एक कम कर या एक बढ़ाकर दो शून्य रूप दोष को सर्वथा निकाल दो।'

विक्रमका अग्निवेतालकी शक्ति नापना

तब अग्निवेतालने राजा से कहा कि–' हे राजन्! तुम्हारी आयु को कम या अधिक देवेन्द्र भी नहीं कर सकते, तो फिर हमारे जैसे व्यक्ति के लिये कहना ही क्या?'

तब अवधूत राजवीने कहा कि–' हे अग्निवेताल! तुम और मैं यदि सुख से मिल–जुल कर चिरकाल तक रहें तो पृथ्वी पर सकल प्रजा भी सुखसे ही रहेगी।'

इस प्रकार राजाका वचन सुनकर अग्निवेताल हर्षित होकर अपने स्थान को गया। तब राजा भी निर्भय होकर सो गया। इसके बाद दूसरे दिन प्रातःकाल राजाने उठकर नित्य कृत्य कर सारा दिन आनन्द से बिताया। रात्री में बलिकी सामग्री तैयार रखे बिना ही राजा शयन–गृह में सावधानी से सो गये।

रात्रिका अंधकार फैल रहा था। एक प्रहर रात्रि बीत चुकी थी। उज्जयिनी (अवन्ती) नगरी में सब प्रजा आराम कर रही थी। उस समय नित्य–क्रम के अनुसार अग्निवेताल राक्षस अपना बलि लेनेको राजा के महल में आ पहुँचा। किन्तु उस दिन उसके लिये वहाँ बलिका कुछ भी ठिकाना ही नहीं था। तब बलि दिये बिना सोये हुए महाराजा को देखकर वह क्रोध से बोला–' अरे दुष्ट! महीपाल!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे लिये बलि दिये बिना सोये हुए तुम को मैं इस तल्वार से अभी ही मार डाल्ता हूँ, तुम जागो।'

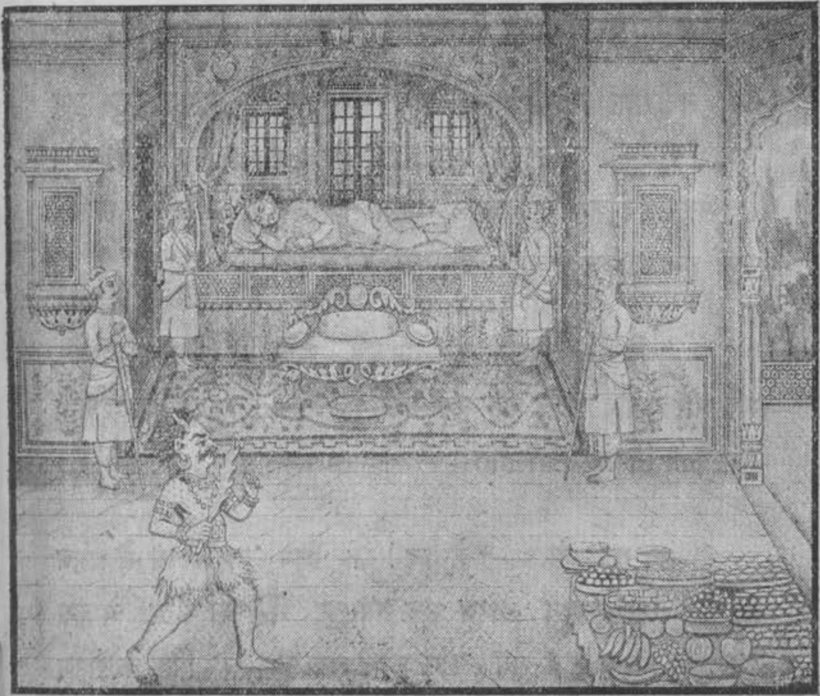

इस प्रकार अग्निवेताल के वचन सुन कर राजा शय्या से उठकर क्रोधसे लाल आँखें कर म्यान से यम–जिह्वा के समान तलवार खींचकर बोला—'अरे दुष्ट! यदि मेरी आयु कोई भी कम नहीं कर सकता तो मैं हमेशा तुम्हें बलि क्यों दूं?' यदि तुम में ऐसी शक्ति होतो मेरे सम्मुख युद्ध के लिये आ जाओ। क्योंकि मेरी यह तल्वार बहुतकाल से प्यासी है। यदि युद्ध करने की शक्ति न हो तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने बलका अहंकार छोडकर मेरे चरण की सेवा करने में तत्पर हो जाओ।'

विक्रम के पराक्रम से वेतालकी प्रसन्नता

तब राजा और अग्निवेतालमें खड्गाखड्गी युद्ध व बहु युद्ध हुआ। राजाकी जीत हुई। राजाके इस अद्भुत पराक्रम एवं भाग्य से सन्तुष्ट होकर अग्निवेताल बोला कि तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ अतः तुम वाञ्छित वर माँगो। कहा भी है कि:—

"दिन में बिजली का चमकना, रात्रि में मेघ का गर्जन, स्त्री और अबोध बच्चे का आकस्मिक बचन तथा देवताओं का दर्शन ये सब कभी निष्फल नहीं होते।" +

तब राजा बोला—"हे देव! यदि तुम हमारे पर से प्रसन्न हो तो मैं जब तुम्हारा स्मरण करूँ तब तुम मेरे पास शीघ्र आजाना और मेरा कहा हुआ सब काम करना तथा मुझ पर पिता के समान अटूट स्नेह रखना"।

तब वेताल बोला—"हे राजन्! हमारी सहायता से तुम भय रहित राज्य करते हुए सुखसे रहो"।

+अमोघा वासरे विद्युत्, अमोघं निशि गर्जनम्।
नारीबालवचोऽमोघ-ममोघं देवदर्शनम् ॥१५९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब अग्निवेताल को राजा ने भक्ति से नमस्कार किया। असुर भी सन्तुष्ट होकर अपने स्थान पर चला गया। तब राजा स्वस्थ हो कर सो गया। प्रभात में रात्रि का सारा वृत्तान्त राजा से सुनकर मन्त्री लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठवाँ प्रकरण

अवधूत कौन?

जो पुरुष वीर और पराक्रमी होते हैं वे उतने ही दयालु और उदार भी होते हैं। अवधूत राजा का पराक्रम देख कर वीर अग्नि-वेताल राक्षस भी उसके वशमें हो गया। यह सब वृत्तान्त पूर्व प्रकरण में आगया है उससे पाठकगण पूरे परिचित होंगे। अब अमात्य कर्मचारी तथा प्रजाजनोंने मिलकर अवधूत राजा से प्रार्थना की—कि "हे पराक्रम शिरोमणि! इस प्रजापर अनुग्रह कर अपने अवधूत वेश को त्यागकर उज्जयिनीपति महाराजा के योग्य मुकुट कुंडल आदि से युक्त होकर इस राज्यसिंहासन पर आरूढ हो कर इसे सुशोभित करने की कृपा करें।"

प्रजाकी इस प्रकार युक्ति–युक्त प्रार्थना सुनकर राजा ने अवधूत वेश छोड़कर अपना राजचिन्ह आदि से अङ्कित सुशोभित वेश महोत्सव के साथ धारण किया।

भट्टमात्र का आगमन

उतने ही में पूर्व परिचित 'भट्टमात्र' राजा सभा में आकर हर्ष पूर्वक नमस्कार कर उपस्थित हुआ। महाराज अवन्तीपतिने भट्टमात्र से उसके कुशल समाचार पूछे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

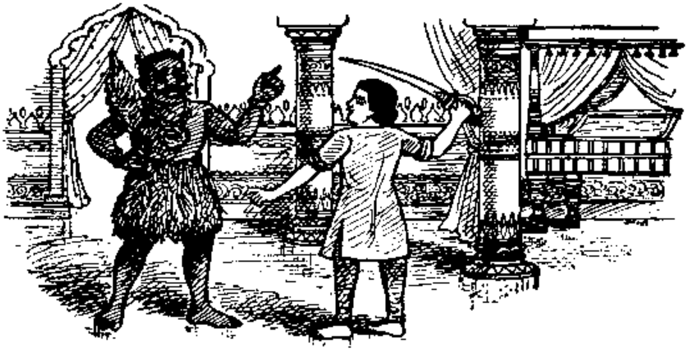

अवन्ति के राजमहलमें महाराजा विक्रमका अग्निवेतालके साथ खड्गाखड्गी युद्ध।

[मु. नि. वि. सं. पृष्ठ. ४६ विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब भट्टमात्र बोला—"मैं सपरिवार सकुशल हूँ" हे विक्रमादित्य! आपके पवित्र गुणोंका स्मरण करता हुआ आपकी राज्य प्राप्ति का हाल सुनकर पूर्व कथनानुसार आप से मिलने के लिये आया हूँ।

अवधूत कौन ?

भट्टमात्र सभा को सम्बोधित करते हुए बोला कि—'हे मन्त्रीश्वर! कर्मचारीगण! तथा प्रजाजन! ध्यान से सुनिये, ये जो आपके राजा हैं वे अवन्तीपति भर्तृहरि के अतिप्रिय लघु बन्धु स्वयं विक्रमादित्य हैं।'

माता-पुत्र का मिलन।

इस प्रकार वर्तमान अवधूत राजा ही विक्रमादित्य हैं; यह सुनकर तथा अच्छी प्रकार लक्षणादि रूप रंग आकार बोल–चाल अवस्था –व्यवस्था देख पहचान कर सभासदादि मन्त्रिगण हर्षित होकर सहसा भट्टमात्र से कहने लगे कि 'हे महानुभाव! तुम्हारा कहना यथार्थ ही मालूम पडता है। यह वृत्तान्त सुनकर सारी सभा के उपस्थित प्रजाजन, जैसे पूर्णचन्द्र को देखकर समुद्र हर्षित होता है, उसी तरह विपुल हर्षसे ओत–प्रोत हो गये। विक्रमादित्य की जननी श्रीमती महारानी अपने पुत्रका हाल सुनकर बड़ी ही प्रसन्न हुई। इतने में ही मातृवत्सल विक्रमादित्य ने राजसभा से अन्तःपुर में जाकर अपनी माता के चरणों में पूर्ण भक्ति से नतमस्तक होकर प्रणाम किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महारानी को अपने प्रिय पुत्रकी रोमाञ्चक कथा सुनकर उसकी राज्यप्राप्ति से अत्यन्त उल्लास एवं आनन्द की भावना जाग्रत हुई। भय, शोक, खेद सब क्षण में ही नष्ट हो गये। एवं हर्षकारी भाव से प्रिय पुत्र को देखते हुए उसके मस्तक पर हाथ रख कर आशीष देती हुई बोली कि–' हे महाभाग ! चिरं जीव '

पाठकगण ! इस समय के महा–विस्मय रोमाञ्च एवं उल्लास का आप ही अनुमान कर लीजिये।

माता की भक्ति

यह कहना पर्याप्त होगा कि महाराजा विक्रमादित्य सदा ही प्रातःकाल में प्रथम मातृचरणों में वन्दना करके ही राज्य–कार्य में प्रवृत्त होते थे। जैसा कहा है:—

" पशु दूध पीने तक ही माता से सम्बन्ध रखते हैं, अधम पुरुष जब तक स्त्री–प्राप्ति न हो तबतक ही माताका सन्मान करते हैं, मध्यम कोटि के पुरुष जब तक माता पिता घर सम्बन्धी कार्य में सहयोग देते हैं, तबतक उनका सन्मान करते हैं, किन्तु श्रेष्ठ पुरुष तो आजीवन अपनी माता को तीर्थ समान समझकर उसका सदा सन्मान करते हैं "*

---

* **आस्तन्यपानाज्जननी पशूना–**
मादारलम्भावधि चाधमानाम्।
आगेहकर्मावधि मध्यमाना–
माजीविताक्तीर्थमिवोत्तमानाम् ॥ १७४ ॥

इसके बाद अवन्ती की सारी प्रजा तथा मंत्रीमंडल ने बड़े उत्सव के साथ धूम-धाम से महाराजा विक्रमादित्य का पदाभिषेक किया। एवं सेठ साहुकार, सरदार, राजकर्मचारी आदि ने अवन्तीपति के चरणों में अमूल्य वस्तु में भेंट की। बाद में महाराजने भी प्रधान, सरदार आदि राजकर्मचारिओं को उदार दिलसे यथायोग्य पारितोषिक देकर अपनी उदारता का परिचय दिया और भट्टमात्रको अपना महामात्य बनाया। जैसा कहा है:—

" इस असार संसार में एक धर्म ही ऐसा पदार्थ है जो धन-इच्छुक को धन देता है, कामार्थि को मनोवाञ्छित फल देता है, सौभाग्य-इच्छुक को सौभाग्य देता है, पुत्रार्थियों को पुत्र देता है, राज्याभिलाषी को राज्य देता है तथा स्वर्ग एवं मोक्ष चाहनेवालों को स्वर्ग और मोक्ष भी देता है। अथवा अनेक विकल्प से क्या? संसार में ऐसा कौनसा पदार्थ है जोकि धर्म से अप्राप्य है?"×

इस प्रकार अपने भाग्य से ही अवन्ती का सारा राज्य पाकर महाराज विक्रमादित्य सर्वदा अर्थियों को इच्छानुसार दान देते हुए न्याय मार्ग से राज्य-पालन करने लगे। क्योंकि इस संसार में कितने ऐसे मनुष्य हैं, जो हजारों मनुष्यों का पालन करते हैं। कोई

× धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः ।
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपरं पुत्रार्थिनां पुत्रदः ॥
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नानाविकल्पैर्नृणां ।
तत् किं यन्न ददाति किञ्च तनुते स्वर्गापवर्गावपि ॥ १७८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे भी हैं जो लाखों मनुष्योंका भरणपोषण करते हैं और कितने ऐसे भी हैं जोकि अपना एक का भी भरण–पोषण नहीं कर सकते हैं। इसका कारण अपने अपने किये हुए सुकृत और दुष्कृत कर्म ही हैं। मातृभक्त महाराज विक्रमादित्य प्रतिदिन प्रातःकाल में पुष्पाञ्जलि से मातृ–चरण कमलकी पूजा करके ही राज्य–सम्बन्धी अन्य कार्य करते थे। जैसा कहा है:—

" उपाध्याय से दस गुना अधिक आचार्य है, आचार्य से सौ गुना अधिक पिता है तथा पिता से भी हजार गुनी अधिक माता है। "* और भी कहा है:—

" वे ही सच्चे पुत्र हैं जो मातापिता के भक्त हैं। यथार्थ में माता पिता भी वे ही हैं जो पुत्रोंका पालन पोषण करें, मित्र वे ही हैं जिन पर पूरा विश्वास किया जा सके, स्त्री वही है जिस स्त्री से चित्त को पूर्ण शान्ति मिले "। +

दूसरे राज्यों का जीतना

इस प्रकार राज्य करते हुए महाराज विक्रमादित्यने अङ्ग, बङ्ग, तिलङ्ग आदि देशों के राजाओं को अपने पराक्रम से पराजित कर

---

* उपाध्यायाद् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ १८२ ॥

\+ ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स भार्या यत्र निर्वृतिः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अधीनकर के तथा बहुतसे राजाओं से मित्रता स्थापित करते हुए संसार में अतुल यश प्राप्त किया।

महामात्य भट्टमात्र और अग्निवेताल की पूर्ण सहायता से राज्य-कार्य की एक आदर्श प्रणाली (रीति) देश देशान्तर में प्रख्यात हुई। विक्रमादित्य विद्वानों तथा नीतिज्ञों के साथ काव्य-विनोद करते थे एवं न्यायपूर्ण सम्मति (राय) लेते हुए आनन्द से समय व्यतीत करते थे।

माता की मृत्यु

कुछ काल पश्चात् एक दिन महाराज विक्रमादित्य की माता सद्धर्मशीला श्रीमती महारानी आयु पूर्ण होने से कितने ही वैद्यों की चिकित्सा कराने पर भी रोग से पीडित होकर स्वर्गधाम चली गई। जैसे कहा है:—

"जिसने सूर्यादि ग्रहों को अपनी खाट (चारपाई) के पाँव में बांध रखे थे, जिसके आगे भयसे इन्द्रादि दश दिक्पाल तथा देवता दोनों हाथ जोड़कर खड़े रहते थे और जिसकी नगरी लंका समुद्र से परिवेष्टित थी, ऐसे सारे जगत् के द्वेषी [1]दशमुख-रावण ने भी आयु क्षय होने पर कुदरत वश पञ्चत्व-मृत्यु प्राप्त किया।" ×

× बद्धा येन दिनाधिपप्रभृतयो मञ्चस्य पादे ग्रहाः।
सर्वे येन कृताः कृताञ्जलिपुटाः शक्रादिदिक्पालकाः॥
लंका यस्य पुरी समुद्रपरिखा सोऽप्यायुषः संक्षये।
कष्टं विष्टपकण्टको दशमुखो दैवाद् गतः पञ्चताम्॥ १८५॥

१ जैन मतानुसार वास्तव में रावण के दस मुँह नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार माताकी मृत्यु होने से मातृभक्त महाराजा विक्रमादित्य के हृदय में बहुत ही खेद हुआ। परन्तु कुदरत के आगे किसका चल सकता है? फिर अपनी माता का मृत्यु–कार्य समाप्त कर शोकसागर में डूबे हुए महाराज को मन्त्रि आदि श्रेष्ठ जन समझाने लगे कि 'हे राजन्! इस परिवर्तनशील संसार में जो मनुष्य जन्म लेता है उसको एक न एक दिन मृत्यु के मुख में जाना ही पडता है। अर्थात् मृत्यु निश्चित है।' कहा भी है:—

" जिसने इस संसार में जन्म लिया है, उसको एक न एक दिन मरना ही निश्चित है। और जो मरा है, उसका जन्म होना भी निश्चित है"। ×

तात्पर्य यह कि जबतक आत्मा को मोक्ष नहीं हुआ है तबतक यह जन्ममरण रूप घटमाल की परंपरा चालू ही रहती है। तो इस अनिवार्य विषय के लिये तुम्हारा शोक करना व्यर्थ ही है। और भी कहा है कि ' श्रम, शोक, भय, भोजन, विषयाभिलाष, क्लेश और क्रोध ये सब जितने बढ़ाना चाहो उतने बढ़ेंगे और जितने

× जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

थे किन्तु उसके कण्ठ में नौ ९ रत्नवाला एक बहु मूल्य हार रहता था। उस हारके रत्नों में मुख का प्रतिबिंब दिखाई देने से लोगों में रावण नामसे प्रसिद्ध है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घटाना चाहो, उतने घटेंगे।' इसलिये शोकको छोड देना ही ठीक है। और इस क्षणिक संसार में तीर्थंकर, गणधर देवतादि एवं चक्रवर्ती राजाओं का भी काल-यम ने संहार किया, तो दूसरे मनुष्योंका तो कहना ही क्या?

इस प्रकार मंत्री आदि के उपदेश से माता के मृत्यु जन्य शोक को त्याग कर महाराज विक्रमादित्य सुख से राज्य-कार्य करने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नौवाँ प्रकरण

लग्न व भर्तृहरि से भेंट

लक्ष्मीपुर का वर्णन

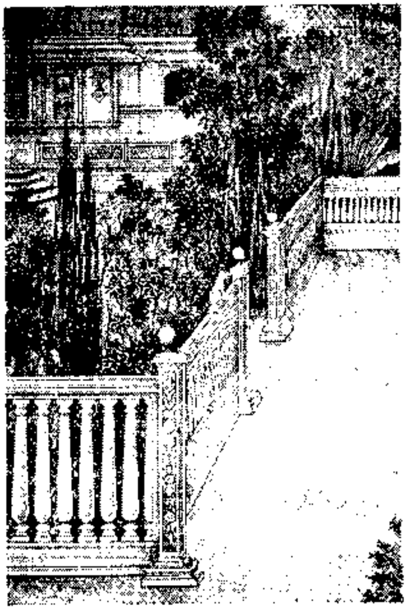

धन धान्य से संपन्न 'लक्ष्मीपुर' नामक एक मनोहर नगर था। इस नगर में लोग खान-पान से सुखी थे। नगर एवं राजमहल की शोभा कुछ अनोखी ही थी। कोई कहीं दुःखी दिखाई नहीं देता था। उसी नगर में दयालु, दानी, भोगी और नीतिज्ञ 'वैरीसिंह' नामक राजा न्याय-नीति से प्रजापालन करता हुआ राज्य करता था। उसके विनय, विवेक और शील आदि अनेक गुणों से युक्त 'पद्मा'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामक महारानी थी। उसके अपने ही सदृश गुण युक्त कई पुत्र होने के बाद एक कन्या हुई; इससे उसने बहुत प्रसन्नता के साथ जन्म–महोत्सव करके उसका नाम 'कमला' रखा। माता–पिता के स्नेह युक्त लालन पालन से कमला ने दिन दिन बढ़ते हुए क्रमसे युवावस्था प्राप्त की। वह रूप और लावण्य तथा और भी अनेक गुणों से मानो लक्ष्मी के सदृश ही थी।

कमलावती से विवाह

राजा वैरीसिंहने महाराजा विक्रमादित्य को अपनी पुत्री के योग्य समझकर उनके साथ शुभमुहूर्त में अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कराया। महाराजा विक्रमादित्य भी कमला के रूपादि सौन्दर्य तथा शील देख कर प्रसन्न रहा करते थे। जैसे विष्णु को लक्ष्मी प्रिय थी वैसे ही विक्रमादित्य के लिये कमला भी हुई।

महाराज विक्रमादित्यने और भी कई राज–कन्याओं के साथ उत्सव पूर्वक विवाह किया। किन्तु उन सब स्त्रियों में आज्ञाकारिता तथा दृढ पतिव्रतादि धर्म से कमला महाराज की अत्यन्त प्रिय हुई। जैसा कहा है:—

※ "रम्या, आनन्द करानेवाली, सुन्दरी, सौभाग्यवती, विनययुक्ता, प्रेमपूर्ण हृदयवाली, सरल स्वभाववाली और सदैव सदा-

---

※ रम्या सुरूपा सुभगा विनीता, प्रेमाभिमुख्या सरल स्वभावा।
सदा सदाचार–विचारदक्षा, संप्राप्यते पुण्यवशेन पत्नी॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चारिणी तथा विचारमें चतुरा ऐसी पत्नी किसी पुण्यशाली को ही अपने पुण्य के बल से प्राप्त होती है।" और भी कहा है:—

"कुटुम्बियों में धर्म की धुरा समान, कुटुम्ब की क्षीणता (आपत्तिकाल) में भी समान बुद्धि रखनेवाली, विश्वास में मित्र समान, हित-चिन्तन में बहन समान, लज्जा करने में कुलवधू के समान, व्याधि और शोकावस्था में माता के समान सेवा करनेवाली और धैर्य देने वाली और शय्या पर कामिनी, तीनों लोक में मनुष्यों के लिए ऐसी पत्नी के समान कोई बन्धु नहीं है।"+

गुणागार, लोभ रहित, गंभीर, राजभक्त, बुद्धिमान् तथा नीतिज्ञ भट्टमात्र उनका प्रधान मन्त्री राज्य-कार्य में धुरंधर था। तथा अपने साहस से वशीभूत अग्निवेताल असुर कठिन से कठिन सब कार्यों में उनको साथ देता था।

इस प्रकार भट्टमात्र तथा अग्निवेताल आदि तथा कुटुम्बसे युक्त राजा बड़े ऐश्वर्य के साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस तरह सुखपूर्वक महाराज विक्रमादित्य एक दिन आराम भवन में बैठे थे। उस समय भूतकाल के अवन्तीपति बड़े

+ आदौ धर्मधुरा कुटुम्बनिचये क्षीणे च सा धारिणी,
विश्वासे च सखी हिते च भगिनी लज्जावशाश्वस्नुषा।
व्याधौ शोकपरिवृते च जननी शय्यास्थिते कामिनी,
त्रैलोक्येऽपि न विद्यते भुवि नृणां भार्यासमो बान्धवः॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाई भर्तृहरि-का स्मरण हुआ और विरहव्यथा से बहुत दुःखी होने लगे। तब मंत्री आदि कर्मचारिगणों को भेज कर योगी भर्तृहरि को एक बार सम्मान पूर्वक अवन्तीनगरी में लाये।

भर्तृहरिका आगमन

महाराजाने अत्यन्त मानपूर्वक उनके चरणों में नमस्कार किया। उनका शरीर बहुत ही कृश देखकर मन में सोचा कि अहो तप बहुत ही दुष्कर है। धन्य वे ही हैं जो इस असार संसार को छोड अपने आत्मकल्याण के लिये वनमें जाकर परमात्मा के ध्यान में मग्न हैं। और दूसरों का जीवन तो बकरे के गल-स्तनवत् व्यर्थ जाता है।

विक्रमादित्य की विनति

इसके बाद महाराजा ने उनके चरणों में गिरकर विनंति की कि—'हे भगवन्! मुझ पर प्रसन्न होकर इस राज्य को स्वीकार करो।'

तब योगी भर्तृहरिने कहा कि—'हे राजन्! गन्धन कुलके सर्प समान उत्तम पुरुष राज्यादि लक्ष्मी का त्याग कर फिर उसको ग्रहण करने की—वांछा कभी नहीं करते है।'

तब फिर राजा बोला कि—'यदि राज्य नहीं चाहते हैं तो इसी राजमहल में आप सर्वदा रहें। जिससे कि आपके दर्शनों से हम लोग सदा पवित्र होवें।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार प्रार्थना सुनकर ऋषि बोले—'साधुओं का किसी एक स्थान में चिरकाल तक रहना अनुचित कहा गया है।'

भक्ति भावसे महाराज विक्रमादित्य ने पुनः ऋषि से कहा—'आप यदि यहाँ नहीं रहें, तो कृपा करके नगर बाहर रहकर सर्वदा हमारे घर से आहार ले जावें। तब ऋषि ने कहा—'हे राजन्! साधु महात्माओं को एक घरसे ही आहार लेना योग्य नहीं है। क्यों कि एक घर का आहार लेने से अनेक दोषों की सम्भावना रहती है।'

तब राजा ने कहा कि—'हे ऋषिराज! आप सदैव एक समय तो हमारे घर दोष रहित आहार अवश्य ही लेने आया करें।'

इसप्रकार राजा का अत्यन्त भक्ति युक्त आग्रह वचन सुनकर ऋषिने स्वीकार किया।

बादमें महाराजा ऋषिवर को साथ लाकर महल में आये। और रानी से सब वृत्तान्त सुना कर कहा कि—'तुम ऋषिवर को प्रतिदिन निर्दोष आहार देती रहना।'

भर्तृहरि का महलमें आहार लेने आना

इस प्रकार ऋषिजी रोज राजमहल से निर्दोष आहार लाया करते थे। बादमें किसी एक दिन ऋषिजी आहारार्थ राजमहल में आये। वहाँ महारानी को स्नान करने को तैयार देख कर शीघ्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही पीछे लौटे, त्यों ही महारानी स्नान–गृह से निकलकर बाहर आई और ऋषि के पीछे जाकर कहने लगीं कि—'हे भगवन्! आपने बाह्येन्द्रिय–समुदाय को जीत लिया है किन्तु आभ्यन्तर इन्द्रियों को आपने नहीं जीता है। यह बात आपके इस आचरण से ज्ञात होती है।' तब भर्तृहरिने कहा कि:—

"शत्रु या मित्र में, तृण या स्त्री समूह में, सुवर्ण या पत्थर में, मणि या मिट्टी में, मोक्ष या संसार में, समान, बुद्धिवाला मैं कब होऊँगा? ×" यह ही मनोमन सोच रहा हूँ।

भर्तृहरि का अन्यत्र गमन

इस प्रकार कह कर भर्तृहरि राजऋषि वहाँ से लोगों को बोध कराने के लिये अन्य स्थल में चले गये।

पाठकगण! राजर्षि भर्तृहरि फिर दृढतर वैराग्य से तथा लघु बन्धु की वधू के वचनानुसार आभ्यन्तरेन्द्रिय को वश करने के लिये गाढ जंगलों में घूमने लगे और आत्म–साधना में विशेष तत्पर हुए। इनकी–विद्वत्ता एवं ज्ञान का परिचय देना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है, क्यों कि इनके नीतिशतक, शृंगारशतक और वैराग्यशतक आदि ग्रन्थ आज भी दुनियाँ में सर्व धर्मानुयायिओं को आदरणीय और शिक्षा में पर्याप्त लाभदायक समझे जाते हैं।

×शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे स्वर्णेऽश्मनि मणौ मृदि।
मोक्षे भवे भविष्यामि निर्विशेषमतिः कदा॥ २१५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक लोकोक्ति

योगी भर्तृहरि के विषय में अनेक लोकोक्तियाँ जगत् में प्रसिद्ध हैं। जो कर्ण परंपरया सुनी जाती हैं कि—किसी दिन ऋषिजी किसी गाँव के निकटवर्ती जलाशय के तट पर वृक्ष के नीचे एक पत्थर को सिरहाना (तकिया) बनाकर भूमि–शय्या पर शरीर की थकावट दूर करने के लिये लेटे थे। वहाँ पानी भरने जानेवाली दो चार स्त्रियाँ आपस में बातचीत करती हुई योगी को देखकर बोलीं कि–' देखो, इस योगी ने अवन्ती के सारे राज्य को तृण समान समझ कर छोड दिया, किन्तु अभी तक एक तकिये का मोह नहीं छूटा।' इस कटाक्षपूर्ण वचन को भी अपना हित-कारी समझ कर उस तकिये के स्थान में रखे हुए पत्थर के टुकडे को दूर हटा दिया। थोडी देर में फिर पानी-भर के वे ही स्त्रियाँ घर जाती हुई योगी को देख कर आपसमें बोलने लगीं कि–' देखो अपनी बात योगी को बुरी लगी, जिससे पत्थर का वह तकिया हटादिया, साधु होने पर भी राग–द्वेष नहीं छूटे,' इस प्रकार उन सब स्त्रीयों के वचन सुनकर राजयोगी विचार करने लगे कि किसीने सच ही कहा है कि–' दुरंगी दुनियाँ को जीत लेना दुष्कर है।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरित्रे
प्रथमः सर्गः
समाप्तः

नाना
तीर्थोद्धा-
रक-आबालब्रह्म-
चारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वर-
शिष्य-कविरत्न-महोदधि-शास्त्र-
विशारद-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृत-
सूरीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविजयेन
कृतो विक्रमचरितस्य भावानुवादः, तस्य च प्रथमः सर्गः
समाप्तः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ द्वितीय सर्ग

दसवाँ प्रकरण

नरद्वेषिणी

एक दिन अवन्ती (उज्जयिनी) नगरी में महाराज विक्रमादित्य देव-गुरु का स्मरण कर नित्य कृत्य से निवृत्त होकर राज-सभा में पधारे । वे राज-सभा के मध्य-भाग में स्थित सुन्दर सिंहासन पर विराजमान हुए । उनके शरीर की कान्ति अद्भुत थी। विद्वानों, सरदारों और सेठ साहुकारों से राज-सभा अच्छी तरह सुशोभित थी । वहाँ महाराज न्याय कर रहे थे। राज्यकार्य सम्बन्धी चर्चा हो रही थी।

राजसभाम नाईका आगमन

इसी बीच में एक नाई मनुष्य-प्रमाण सूर्य सदृश प्रकाशमान एक मनोहर आईना लेकर आया । और राज-सभा के मध्य-भाग में वह देह प्रमाण आईना महाराज विक्रमादित्य के सामने इस ढंग से रखा कि महाराज के संपूर्ण शरीर का प्रति-बिम्ब अच्छी तरह दिखाई दे। अपने शरीर का संपूर्ण सुन्दर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

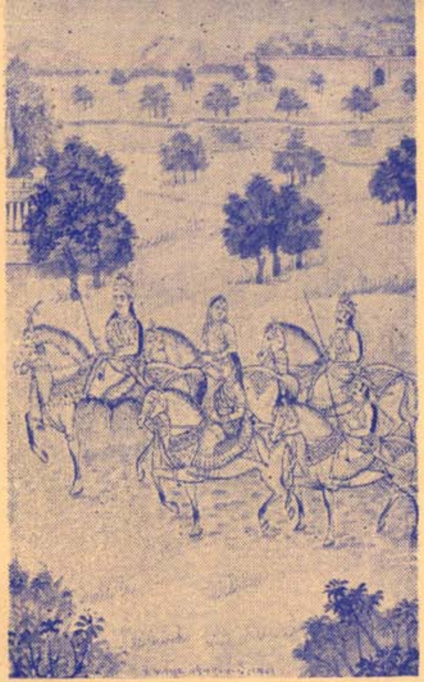

अग्निवैताल, भट्टमात्र तथा उन दोनों वेश्यायोको साथ लेकर महाराजा विक्रम प्रतिष्ठानपुर जा रहे है.

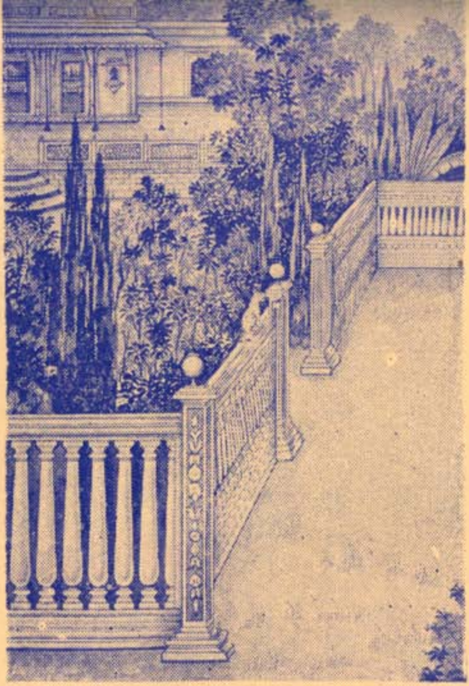

प्रतिष्ठानपुर गमन

[मु. नि. वि. सं. पृ. ७१ विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिबिम्ब देखते हुए महाराजा अपने मनही मन आश्चर्य चकित हुए। महाराजा को इस प्रकार चकित देख नाई ने कहा– 'हे राजन्! आपने अपने सुन्दर स्वरूप को देखकर मनमें जो विचार किया है, वह बात ये आपके बुद्धिमान मन्त्री लोग कहें, वरना मैं अज्ञानी आपके सामने आपकी चिन्तित बात कहूँ'।

बादमें महाराजा के पूछने पर मन्त्री लोगों ने सोचा कि 'यह नाई बहुत वाक्चतुर मालूम पड़ता है।' अतः परस्पर सब अमात्य वर्ग विचार कर बोला कि–'हे राजन्! इस घमंडी नापित को ही यह पूछा जाय व ठीक।'

राजाका सौन्दर्य

महाराज के पूछने पर नापित ने मधुरवाणी से कहा 'हे राजन्! आपने यह सोचा–कि 'इस पृथ्वी पर मेरे जैसा रूपवान् मनुष्य कोई नहीं है'। परन्तु इस प्रकार का गर्व महान् पुरुष नहीं करते क्यों कि 'सब प्राणियों में कर्मानुसार न्यूनाधिक–भाव प्रत्यक्ष देखे जाते हैं।'

तब महाराजने नाई से कहा कि—'अरे नाई! तुमने संसार में अद्‌भुत क्या क्या देखा है? वह सब तुम निर्भय होकर मेरे सामने कहो!'

प्रतिष्ठानपुर का वर्णन

तब नाई कहने लगा: "स्वर्ग समान प्रतिष्ठानपुर में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शालिवाहन नामका राजा न्याय से राज्य करता है, उसके विजया नामकी पटरानी है। उसके एक अद्वितीय रूपलावण्य-वाली तथा सुन्दर कला-जाननेवाली सुकोमला नामकी कन्या है। वह जाति-स्मरण ज्ञान से अपने पूर्व के सात भवों (जन्म) को देखकर नरद्वेषिणी हो गई है और अपनी नजर के सामने आये हुए पुरुष को देखते ही मार डालती है तथा पुरुष का नाम सुनने पर भी स्नान करती है। इस प्रकार गाँव के बाहर एक उद्यान में एकान्त में मनमाना सुख से काल बिताती है।

राजकुमारी सुकोमला का वर्णन

"हे राजन्! वास्तव में तीनों लोक में राज-कन्या सुकोमला की उपमा में दूसरी कोई स्त्री नहीं है। वह ऐसी अद्वितीय सौन्दर्यवती है, मानों अलौकिक रूपका सर्वोत्कृष्ट नमूना ही हो। अस्तु, उसके रहने के लिये सर्व ऋतु में फूल-फल देने वाला तथा सुशोभित नन्दनवन के समान प्रतिष्ठानपुर के बाहर के भाग में शालिवाहन राजा ने एक मनोहर उद्यान बनवाया है।

उद्यान का वर्णन

उस उद्यान में एक सरोवर दूध के समान स्वच्छ पानी से परिपूर्ण है। उस सरोवर का भूमितल एवं उसका तट और सोपान सुवर्ण से मण्डित होने से बहुत ही सुरम्य है। उस उद्यान की सफाई और रक्षा के लिये मार्जारी (बिल्ली) नामक एक देवी रहती है।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार नाई के मुख से अद्भुत वृत्तान्त सुन-कर महाराज विक्रमादित्य बड़े गम्भीर–भाव से बोले कि–'हे महानुभाव ! तुमने यह सच ही कहा कि सब प्राणियों में कर्मानुसार रूप का न्यूनाधिक–भाव देखा जाता है। '

महाराज विक्रमादित्य इस प्रकार सोच कर लक्ष द्रव्य राज–भंडार से मंत्रीद्वारा मँगवाकर ज्यों ही नापित को देने लगे, त्योंही उस नापित ने आश्चर्यकारक सात कोटि सुवर्ण मुहरें राजा के आगे प्रकट कीं। राजा ने मन में विचार किया कि 'इन के आगे मैं अल्पधनी तथा ज्ञानशून्य हूँ।'

नाई का देवरूप प्रकट होना

इतने में ही उस नापित ने दिव्य कुंडलादि युक्त अपना देव सदृश रूप धारण किया। उस दिव्यस्वरूप वाले देव को सामने–देखकर राजा, मंत्री आदि सभी सभा–जन आश्चर्य चकित हुए।

राजा ने पूछा कि–'तुम कौन हो ? कहाँ से और किसलिये आये हो ?'

देव ने कहा कि–'मैं 'सुन्दर' नामक देव हूँ, देव–दर्शन के लिये मेरु पर्वत पर गया था, वहाँ जिनेश्वर भगवान् के दर्शन कर और अप्सराओं का नृत्य–गानादि नाट्यारम्भ देखकर मनुष्य लोक देखने के लिये मैं पृथ्वी पर आया हूँ। प्रतिष्ठानपुर में घूमकर वहाँ मनोहर उद्यान में राज–कन्या सुकोमला को देखता हुआ यहाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवन्तीपुरी में आया हूँ । तुम्हारे साहस और पराक्रम से मैं संतुष्ट हुआ हूँ । तुम मुझसे मनोवाञ्छित वर माँगो । '

महाराज ने कहा—' हे देव ! मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं है, क्यों कि मेरे राज्य में आवश्यकतानुसार सब कुछ सुलभ है ।"

गुटिका प्रदान

बाद में देव ने प्रसन्न होकर आग्रह पूर्वक इच्छानुसार रूपपरिवर्तन करने वाली एक गुटिका राजा को दी और विद्युत् वेग से क्षण भर में ही वह देव सभा से अदृश्य हो गया ।

किसी देवताका दर्शन मनुष्य को किसी पूर्व—जन्म के सञ्चित पुण्य से ही होता है और वह कभी निष्फल नहीं जाता ।

नापित—रूपधारी देव के मुख से राज—कुमारी सुकोमला के सौन्दर्य एवं अन्य गुणादि का वर्णन सुनकर महाराजा विक्रमादित्य को सुकोमला के प्रति अत्यन्त आकर्षण हुआ, एवं उसकी प्राप्ति के लिये अनेक प्रकार के विचार—विकल्प मनमें करने लगे, परन्तु वे लज्जावश अपना मनोभाव किसी के आगे प्रकट न कर सके, मनुष्यों का सामान्यतः यह स्वभाव ही है कि जब तक अपने मनोभाव किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो जाँय तब तक उसका मुख म्लान रहता है । इसी तरह महाराज विक्रमादित्य के मुख पर भी उदासीनता मालूम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पड़ने लगी ।

महामात्य भट्टमात्र ने एक दिन महाराज का मुख म्लान देख कर पूछा—'हे राजन् ! आपके मन में क्या चिन्ता है, जिससे आपके मुख पर उदासीनता छाई रहती है।'

भट्टमात्र का यह भक्तिपूर्ण वचन सुन कर महाराज ने कहा—'हे अमात्य ! देववर्णित 'शालिवाहन' राजा की 'सुरूपा' कन्या के साथ यदि मेरा पाणिग्रहण न हुआ तो मेरे जीवन का अन्त समझो' ।

पाठक गण ! यह कहना व्यर्थ है कि संसार में आसक्त प्राणियों के लिये काम को जीत लेना बड़ा ही दुष्कर है।
यह वही हाल हुआ कि :—

"सर्व इन्द्रियों में जिह्वा इन्द्रिय, सब कर्मों में मोहनीय कर्म, सब व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत और मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति इन तीनों गुप्तियों में से मनोगुप्ति—ये चारों बड़े साहस दुःख से जीते जाते हैं।" *

कहा है कि :—

" दिन में उल्लू को कुछ भी नहीं दीखता तथा रात्रि में कौवे को नहीं दिखाई देता, परन्तु कामान्ध व्यक्ति तो अपूर्व ही होती हैं।

***अक्खाण सणी कम्माण, मोहणी तह वयाण बम्भवयं ।
गुत्तीण य मणगुत्ती चउरो दुःखेण जिप्पन्ति ॥ ३५ ॥**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसको काम के सिवाय रात्रि या दिन में दूसरा कुछ भी नहीं दिखाई देता।"×

मंत्रीश्वर ने सोच कर कहा कि :—'हे राजन्! उस पुरुषद्वेषिणी राजकन्या के साथ पाणिग्रहण करना मानो सोये हुए सर्प को जगाना है। अर्थात् यह एक अनर्थ का मूल होगा। क्यों कि इस प्रकार की स्त्री मनुष्यों की मृत्यु के लिये ही होती है। इस लिये आपका उसके साथ पाणिग्रहण करना मेरी राय से अनुचित है।'

महाराज ने कहा कि–'यदि मेरे जीवन से प्रयोजन हो, तो तुम उस राजकन्या की प्राप्ति के लिये शीघ्र उद्यम करो।'

मंत्रीश्वर ने कहा–'हे राजन्! इस अवन्ती नगरी में रहने वाली जो 'मदना' और 'कामकेली' नाम की दो वेश्याऐं हैं, वे बड़ी चतुर एवं कार्य–दक्ष हैं। वे पहले प्रतिष्ठानपुर में रहती थीं। उनकी बहिन अभी भी उस नगर की वेश्याओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अपनी इन दोनों वेश्याओं के द्वारा वहाँ रहने वाली वेश्या से संकेत पूर्वक जाकर कुछ काम करें तो अपना काम सिद्ध होने की सम्भावना है। अन्यथा मेरी समझ में इसका दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

इस के बाद महाराज ने 'मदना' और 'कामकेली' वेश्याओं को बुलवाकर पूछा कि–'प्रतिष्ठानपुर में तुम्हारी सम्बन्धिनी कौन है?'

×दिवा पश्यन्ति नो घूकाः, काको नक्तं न पश्यति।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो, दिवा नक्तं न पश्यति॥ ३६॥

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

तब उन दोनों ने जवाब दिया कि– 'रूपलावण्यवती 'रूपश्री' नाम की हमारी बहिन वहाँ रहती है, जो कि प्रत्येक समय राजकन्या सुकोमला के पास गायन और नाट्य करने को जाती है।'

तब महाराज ने उन वेश्याओं से कहा–"मेरा विचार वहाँ जाने का है, अतः तुम दोनों मेरे साथ वहाँ चलो।"

तब उन दोनों ने कहा: "हम आप के साथ अवश्य चलेंगी।"

प्रतिष्ठानपुर गमन

महाराज ने अग्निवेताल का स्मरण किया। क्षणभर में अग्निवेताल वहाँ उपस्थित हुआ, अवन्ती का राज्य चलाने के लिये बुद्धिसागर मंत्री को वहाँ रख कर और अग्निवेताल, भट्टमात्र तथा उन दोनों वेश्याओं को साथ ले कर जाने के लिये महाराज ने पाँच घोड़े मँगवाये और परस्पर विचार कर घोड़ो पर सवार हो पर्वत, जंगल और नगरों में होते हुए वहाँ चले। क्रम से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेक प्रकार के दृश्यों को देखते हुए, और मुसाफरी का अनुभव करते हुए, प्रतिष्ठानपुर के बाहर उद्यान में जा पहुँचे, इन सब को आया हुआ देखकर उद्यान रक्षिका मार्जारी देवी बड़े जोर से तीन बार चिल्लाई।

तब महाराज ने इसका कारण पूछा, भट्टमात्र ने उस मार्जारी के उच्च स्वर का हाल कहा कि–' यह कहती है कि राजपुत्री नरद्वेषिणी आयेगी और पुरुषों को जान से मार डालेगी।'

यह सुनकर महाराजा ने वेश्याओं से कहा:–" अपनी रक्षा का कौन सा उपाय है!"

स्त्री रूप धारण

तब वेश्याओं ने सोच कर कहा:–" यदि स्त्रीरूप धारण करके हमारी बहिन के घर पर सब शीघ्र जावें तो प्राण बच सकते हैं।"

तब महाराज आदि पाँचों व्यक्ति स्त्री–रूप धारण कर के नगर–वेश्या 'रूपश्री' के घर गये। वहाँ उस ने बहुत दिनो पर आई हुई बहनों को देख अत्यन्त प्रसन्नता से कुशलादि समाचार पूछा, और गद में बड़े आदर से उन लोगों का मिष्टान्नादि उत्तम भोजन से स्वागत किया।

पाठक गण! महाराज विक्रमादित्य बड़े साहसी और पराक्रमी थे। किन्तु मार्जारी के वचन से अपनी प्राण रक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिये स्त्री रूप धारण कर वेश्या के घर आकर रहना पड़ा, शास्त्रकारों ने सचही कहा है:—

"देव लोक में रहने वाले इन्द्र को और मल-मूत्रादि में रहने वाले कीड़े आदि सभी प्राणियों को, जीने की इच्छा और मृत्यु का भय समान रहता है।"+

"इस संसार में किसी भी प्राणी को "तुम मर जाओ" ऐसा शब्द कहने पर भी महा दुःख होता है, तो लाठी आदि की चोट से कैसा दुःख होता होगा?"×

इस संसार में जीने में ही प्राणी कल्याण पाता है, और यह शास्त्र में भी कहा है:—

"इस जगत् में जीवित प्राणी ही कल्याण को पाता है और जीवित रहने से ही धर्म कर सकता है तथा जीने से किसी प्राणी का उपकार भी कर सकता है; अतः जीने से क्या नहीं होता? यानी सब कुछ होता है।"*

+अमेध्या मध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये।
समाना जीविताऽऽकांक्षा समं मृत्युभयं द्वयोः ॥५३॥

×म्रियस्वेत्युच्यमानेऽपि देही भवति दुःखितः।
मार्यमाणः प्रहरणैर्दारूणैः स कथं भवेत्? ॥५४॥

* जीवन् भद्राण्यवाप्नोति, जीवन् धर्मं करोति च।
जीवन्नुपकृतिं कुर्यात्, जीवतः किं न जायते? ॥५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूपश्री ने आये हुए पाँचों अतिथियों की सेवा में कुछ भी कमी नहीं रखी। राजकन्या सुकोमला के पास जाने की उसे बहुत शीघ्रता थी, किन्तु क्या करे? उसने अपने घर आये हुए अतिथियों का सत्कार करना आवश्यक समझा। जल्दी ही इन आये हुए अतिथियों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए अपने दास दासियों को सूचना करके, वह राजपुत्री सुकोमला के महल में जाने के लिये तैयार हुई। तब महाराज विक्रमादित्य ने 'रूपश्री' से कहा:—"यदि राजपुत्री सुकोमला विलम्ब का कारण तुम्हें पूछे तो यही बताना कि अवन्तीपति महाराज विक्रमादित्य की सभा में नाचने वाली पाँच नर्तकियाँ गाने बजाने में बड़ी ही चतुर हैं, वे मेरे घर आई हैं। उनका सत्कार करने में ही आज इतना विलम्ब हुआ है।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारहवाँ प्रकरण

सुकोमला के पूर्व भव

रूपश्री का सुकोमला के पास देरीसे पहुँचना

इधर ज्यों ज्यों समय बीत रहा था, त्यों त्यों राजपुत्री सुकोमला रूपश्री के आने में आज विलम्ब क्यों हुआ, इस विचार में मन ही मन अनेक संकल्प–विकल्प कर आकुल–व्याकुल होती हुई महल में इधर–उधर घूमने लगी, उसके आने की राह निमेष रहित नयनों से देख रही थी, इतने में राजकुमारी सुकोमला के आगे रूपश्री शीघ्र गति से आकर विनय आदि से नमस्कार कर खड़ी हो गई, नाच–गान के लिये सुसज्जित हो नाचने की तैयारी करने लगी, इतने में राज–कुमारी ने उससे पूछा 'कि आज आने में विलम्ब क्यों किया ?'

तब 'रूपश्री' ने आने में विलम्ब होने का कारण कहा "अवन्तिपति विक्रमादित्य की राजसभा में नाचने वाली तथा संगीत में अति कुशल पाँच नर्तकियाँ हमारे घर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आई हैं। उनके स्वागतादि सन्मान करने में मुझे विलम्ब हुआ अतः हे स्वामिनि! इस अपराध को क्षमा कीजिये, "

यह सुन कर सुकोमला को अवन्ती से आई हुई कुशल नर्तकियों से नृत्य और संगीत सुनने की तीव्र-इच्छा हुई। जैसे कहा है:--

" सदा नवीन नवीन गीत एवं नाच और नगर ग्राम आदि को देखने से मनुष्यों के मन में अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न होता है।"+

सुकोमला द्वारा पाँचों नई नर्तकियों को बुलाना

राजकुमारी सुकोमला को गाना आदि सुनने की तीव्र इच्छा हुई, अतः उसने 'रूपश्री' को कहाः " तू आगन्तुक (आई हुई) नर्तकियों को शीघ्र घर जाकर साथ ले आ।"

सुकोमला की आज्ञानुसार 'रूपश्री' अपने घर गई, उसे इतनी जल्दी लौटती देख कर विक्रमा बोली:-" तू इतनी जल्दी क्यों लौट आई?"

तब रूपश्री कहने लगी:-" राजपुत्री सुकोमला तुम लोग का आगमन सुनकर बड़ी खुश है और उसने मुझे तुम

+नवं नवं सदा गीतं, नृत्यग्रामपुरादिकम्।
पश्यतो जायते पुंसः, आश्चर्यं मानसे भृशम्॥ ६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सब को आमन्त्रण देने के लिये भेजा है, वह आप लोगों का नाच-गान सुनने के लिये बड़ी आतुर हो रही है।

इस प्रकार का समाचार सुनकर 'कामकेली' और 'मदना' बोली:-"हम दोनों नृत्य करेंगीं परन्तु गानादि कौन करेगा?"

विक्रमा ने कहा:-"मैं मधुर स्वर से गाऊँगी, भट्टमात्रा वसन्तादि राग से खुश करेगी और वह्निवैतालिका अच्छी तरह वीणा बजायेगी।"

इसी प्रकार सब कार्यक्रम का निर्णय करके सब जाने के लिये शीघ्र तैयारी करने लगे, दिव्य वस्त्र आभरण आदि श्रृंगार से सज-धज कर अपने शरीर की कान्ति से देवाङ्गनाओं को भी जीतने वाले स्वच्छ निर्मल जल के समान विशद स्वरूप वाली पाँचों नर्तकियाँ राजकुमारी के महल में आईं।

सुकोमला आई हुई पाँच नर्तकियों के बीच विक्रमा को देख-कर विचार करने लगी कि 'क्या यह पाताल-कन्या (नागकन्या) है? किन्नरी है? ऐसा न हो कि देवाङ्गना ही पृथ्वी पर उतर आई हो?' इस प्रकार देवाङ्गना जैसी पाँचों को देख अपने मनमें विचार करने लगी कि-'जिस के आगे ये हमेशा नाचती हैं, वह महाराज भी बड़ा अद्भुत होगा।' बाद बड़ी कुशलता से मदना और कामकेलि दोनों नाचने लगीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर विक्रमा, भद्रमात्रा और वह्निवैतालिका गीत एवं बाजा बजा कर अच्छा रङ्ग जमाने लगीं, विक्रमा ने डिम-नाद मधुर झंकार और विशिष्ट मनोरञ्जक स्वरालंकार आदि पैदा कर अच्छा प्रभाव फैलाया।

विक्रमा के गान से सुकोमला की प्रसन्नता तथा रात्रि में बुलाना

विक्रमा की अपूर्व मनोहारिता एवं कर्णमधुर गीत (गाने) सुनकर राजपुत्री सुकोमला ने कहा—'अहो सुन्दरि ! अहो तेरी कुश-लता। इस प्रकार प्रशंसा करती हुई बोली—" क्या तुम अकेली रात में आकर मुझे गाना—सुना सकती हो ?"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब विक्रमा बोली:–" यदि तुम एक लक्ष सुवर्ण–मुद्रा दो तो मैं आ सकती हूँ।"

सुकोमला ने कहा:–" मैं एक लक्ष सुवर्ण मुद्रा देने को तैयार हूँ।"

तब विक्रमा मन में सोचने लगी कि राजपुत्री धैर्य, उदारता, दक्षता एवं लज्जा आदि गुणों से युक्त है, यदि बहुत प्रपंचादि किया जाय तो पुरुष पर का इसका जो द्वेष भाव है, वह छूट जायगा और सदाचारिणी एवं सती हो जायेगी, राजपुत्री ने उन पांचों का वस्त्रादि से अपूर्व सत्कार किया। वे पांचों वेश्या के घर लौटीं। फिर भोजनादि नित्य कर्म कर आराम किया।

बाद में विक्रमा बड़ी प्रसन्नता से भट्टमात्रा आदि से कहने लगी:—' अभी अपने वहाँ जाने से वाञ्छित कार्य सिद्ध ही समझो।'

रात्रि होते ही दिव्य वस्त्रादि एवं भूषणादि से सज्जित होकर विक्रमा राजकन्या के महल में आई। उस समय राजपुत्री स्नानागार में स्नान कर रही थी। एक दासी ने जाकर खबर दी:—" हे स्वामिनि ! गाने के लिये विक्रमा आ पहुँची है।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब राजपुत्री ने जवाब दिया:—"उसे स्नान के लिये यहाँ बुला लाओ।"

दासी ने आकर विक्रमा से कहा:—"मेरी स्वामिनी आपको स्नान के लिये स्नानागार में बुलाती हैं।"

यह सुन कर विक्रमा गम्भीरता पूर्वक बोली:—"अपनी स्वामिनी बंधी हुई कंचुकी आदि मैं नहीं खोल सकती। क्यों–कि उसे यह बात मालूम हो जाने से मुझे पचास चाबुक मारेगी। इस लिये तुम जाकर कह दो कि वह स्नान नहीं करेगी।"

दासी ने राजपुत्री सुकोमला के पास जाकर विक्रमा की कही हुई बात सुना दी।

फिर सुकोमला शीघ्र स्नान करके विक्रमा के पास आई और बोली:—"चलो, हम दोनों एक साथ भोजन करें।"

तब विक्रमा बोली:—"दो स्त्री एक साथ भोजन करें, यह अच्छा नहीं। एक साथ स्त्री–पुरुष रूप युगल का भोजन ही शोभा देता है।"

विक्रमा का यह कथन सुन कर राजपुत्री जरा खिन्नता से बोली:—"हे विक्रमे! यदि तू मेरी हितैषिणी हो, तो मेरे आगे पुरुष का नाम भी न लेना।" फिर सुकोमला भोजन गृह में जा कर भोजन कर के शीघ्र ही लौट आई और चित्रशाला

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

में आकर गीत सुनने के लिए भद्रासन पर बैठी। आसपास में बहुत सी दासियाँ बैठी हुई थीं।

विक्रमा अच्छा मनोहर स्वरालाप करके अद्भुत गाना गाने लगी। अहा! क्या मधुर गाना था! मानों अमृत का ही झरना झरता हो! दासियों के समूह में से वाह वाह की ध्वनि आने लगी। विक्रमा का गाना सुनते सुनते दासी आदि सब परिजन वहाँ पर ही चित्रपट की तरह स्थिर निद्राधिन हो गये। केवल राजकुमारी सुकोमला एक ध्यान से सुनती रही।

इस प्रकार कुछ गीत गाने के बाद विक्रमा--पार्वती के साथ महादेव, लक्ष्मी देवी के साथ विष्णु भगवान्, इन्द्राणी के साथ इन्द्र, रति के साथ कामदेव, रोहिणी के साथ चन्द्रमा तथा रत्नादेवी के साथ सूर्य आदि स्त्री--पुरुष मिश्रित वर्णन वाले सुन्दर सुन्दर गाने आलापने लगी।

बाद में रात बहुत बीत जाने पर उत्साह से उपसंहार करती हुई विक्रमा बोली:—

विक्रमा का जाना व गीतगान पूर्वक सात भवों की कथा

"समाधिसमये भिन्न भिन्न रस वाले पार्वती पति शंकर के तीनों नेत्र–जिन में एक तो ध्यान के कारण अधिक विकसित पुष्पकली के समान शान्त रस से युक्त है, दूसरा पार्वती के कटि-प्रदेश को देखने में आनन्द से प्रफुल्लित होने के कारण शृंगार-रस से युक्त है, तीसरा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रूर—पुष्प बाण लिये हुये कामदेव को भस्म करने के लिये क्रोधरूपी अग्नि से प्रज्वलित होने के कारण रौद्र—रस से युक्त है, वे तीनों नेत्र तुम लोगों की रक्षा करें।"+

गौरी (पार्वती) अपने स्वामी शंकरजी से कहती हैं—"आपकी यह भिक्षावृत्ति देखने से मुझे अत्यन्त दुःख होता है। इसलिये आप विष्णु से जमीन, कुबेर से अनाज का बीज, बलदेव से हल, एवं यम-राज से महिष—पाडा और एक अपना बैल लेकर त्रिशूल का फाल बना-कर खेती करो। मैं भोजन बनाऊँगी और स्कन्द (कार्तिकेय) खेत, बैल आदि की रक्षा करेगा। इस प्रकार की गौरी की वाणी तुम लोगों की रक्षा करें।"×

"मेघसमान रूपवाले हे नेमिनाथ! बिजली के समान रूपलावण्यवती मुझे छोड़ कर तुम गिरनार के शिखर पर जाकर क्या शोभा पाओगे?। इस प्रकार उग्रसेन राजा की पुत्री राजीमती द्वारा कहे

+ एकं ध्याननिमीलितं मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुनः,
पार्वत्या विपुले नितम्बफलके शृंगार-भारालसम्।
अन्यत् क्रूरविकृष्टचापमदनक्रोधानलोद्दीपितं,
शम्भोर्भिन्नरसं समाधि-समये नेत्रत्रयं पातु वः॥ ९७॥

× कृष्णात् प्रार्थय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लांगलम्,
प्रेतेशान् महिषं वृषं च भवतः फालं त्रिशूलादपि।
शक्ताऽहं तव भैक्षदानकरणे स्कन्दोऽपि गोरक्षणे,
दग्धाऽहं तव भिक्षया कुरु कृषिं गौर्या वचः पातु वः॥ ९८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गये हे नेमिनाथ भगवान् ! तुम विजयी बने रहो।" ÷

राजपुत्री सुकोमला को विक्रमा स्त्री पुरुष मिश्रित अनेक प्रकार के मनोरंजक गायन सुनाकर चुप रही।

तब राजपुत्री सुकोमला बोली "हे विक्रमे ! पुरुष का नाम लेने का मैंने निषेध किया था तो भी तू मुझे दुःखदायक पुरुष का नाम लेकर क्यों जलाती है ?"

तब विक्रमा हास्य करती हुई बोली "हे सुन्दरि ! मैं मनुष्यों के नाम किसी भी गाने में नहीं लाई; किन्तु देवों के नाम ही कहीं कहीं लाई हूँ। क्या इससे भी आपको ग्लानि होती है ?।"

तब राजपुत्री सुकोमला बोली "पूर्व के सात जन्मों के दुःख का मुझे स्मरण है। इसलिये पुरुष चिन्ह धारण करने वाले सब जाति के जीवों से मुझे स्वभाविक द्वेष है।" शास्त्र में ठीक ही कहा है:—

"जिसको देखने से ही मनमें संतोष या आनन्द पैदा हो एवं द्वेष सर्वथा नाश हो जाय उसको जानना चाहिये कि यह पूर्व जन्म का बांधव या स्वजन अवश्य होगा।"+

÷ **मेघश्याम श्रीमन्नेमे ! विद्युन्मालावन्मां मुक्त्वा।**
का ते शोभा भूभृच्छृङ्गे राजीमत्येत्युक्तो जीयाः॥ ९९॥

+यस्मिन् दृष्टे मनस्तोषो द्वेषश्च प्रलयं व्रजेत्।
स विज्ञेयो मनुष्येण बान्धवः पूर्वजन्मतः॥ १०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

“जिसके देखने से मन में द्वेष पैदा हो और आनन्द का नाश हो जाय, उसे जानना चाहिये कि यह किसी पूर्व जन्म का मेरा पक्का शत्रु है।”×

तब विक्रमा ने आग्रह से कहा, “तुम अपने पूर्व के सातों भव (जन्म) की कथा सुनाओ, जिससे मुझे सब हाल मालूम हो जाय।”

इस प्रकार की प्रेम से परिपूर्ण मधुर–वाणी सुनकर राजकन्या सुकोमला बड़े प्रेम से विक्रमा को सविस्तर सात भवों का वर्णन सुनाने लगी। सुकोमला कहने लगी, “हे विक्रमे! मैं अपने सातों भवों की कथा तुझे सुनाती हूँ, सो तुम ध्यान देकर सुनो।”

धन और श्रीमती

इस भव से सातवें भव में मैं एक सुरम्य “लक्ष्मीपुर नगर” में धन नामक श्रेष्ठी की ‘श्रीमती’ नामकी पत्नी थी। उसने सुस्वप्न से सूचित एक पुत्र को जन्म दिया। जन्मोत्सव कर के उसका नाम ‘कर्मण’ रखा। धन श्रेष्ठी ने व्यापारादि से धन इकट्ठा किया। धनी होने पर भी कृपण होने से पुण्य कर्मादि में और अपने शरीर के लिये थोडा सा भी धन खर्च नहीं करता था। वह खाने पीने की कभी अच्छी व्यवस्था नहीं करता था और कुटुम्बादि को अच्छे वस्त्र भी पहनने नहीं देता था। जैसा कहा है:—

×यस्मिन् दृष्टे मनोद्वेषस्तोषश्च प्रलयं व्रजेत्।
स विज्ञेयो मनुष्येण प्रत्यर्थी पूर्वजन्मनः॥ १०४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"कृपण और कृपाण (तलवार) दोनों में केवल 'आकार' यानी 'आ' की मात्रा का भेद है। किन्तु गुणों का तो साम्य ही है। क्यों कि जैसे तलवार की मूठ (हत्था) मजबूत बँधी हुई होती है, उसी प्रकार कृपण की मूठ (मुष्टि) भी दृढतर रहती है। एवं तलवार कोष (म्यान) में रहती है। वैसे ही कृपण का ध्यान भी सदैव कोष (खजाना) में रहता है। अर्थात् थोड़ा भी दान नहीं करता। तलवार स्वाभाविक मलिन (काली) होती है वैसे कृपण भी स्वाभाविक मलिन (अनुदार) भाव रहता है। "* और भी कहा है:---

" केवल संग्रह करने में ही तत्पर समुद्र कृपणता के कारण पाताल में पहुँचा हुआ है। और दान देने में तत्पर मेघ सदा परोपकार की वृत्ति के कारण समुद्र के ऊपर गरजता रहता है।"÷

एक दिन 'श्रीमती' ने अपने पति धन श्रेष्ठी से कहा कि 'हे स्वामिन्! अस्थिर स्वभाव वाली लक्ष्मी को धर्म एवं दीन प्राणियों आदि के उद्धार में लगाकर सार्थक कीजिये।' क्यों कि कहा है:-

" नरक जाने वाले लोग धन को पृथ्वी के नीचे खड्डा कर के रखते हैं और जो स्वर्ग जाने वाले लोग हैं वे बड़े बड़े मन्दिर और

* दृढतरनिबद्धमुष्टेः कोषनिषण्णस्य सहजमलिनस्य ।
कृपणस्य कृपाणस्य केवलमाकारतो भेदः ॥ १११ ॥

÷ संग्रहैकपरः प्राप समुद्रोऽपि रसातलम् ।
दातारं जलदं पश्य समुद्रोपरि गर्जति ॥ ११२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक कार्य आदि में उसका सदुपयोग करते हैं।"+

ऐसा मत समझो कि दान देने से लक्ष्मी एकाएक घट जायगी जैसे कुएँ से पानी निकालने पर पानी बढ़ता ही है और बगीचे आदि से फल-फूल लेने से पुनः आया ही करते हैं एवं गाय आदि दुहने से दूध नहीं घटता है, उसी प्रकार धन का शुभमार्ग में व्यय करते रहने से धन घटता नहीं किन्तु सदा बढ़ता ही रहता है।

"समुद्र में खारा जल बहुत है वह किस कामका? इसे कोई भी नहीं पी सकता। उससे तो थोडे जल वाला कुआँ ही अच्छा है जिसका जल लोग पेट भर के पीकर संतुष्ट होते हैं।"×

इस प्रकार स्त्री का वचन सुनकर 'धन' क्रोध के आवेश में आकर मारने को दौड़ा। तब मृत्यु भय से 'श्रीमती' पिता के घर जाकर दरिद्रावस्था में कितने ही समय तक रही। क्योंकि इस संसार में मृत्यु के समान दूसरा कोई भय नहीं, दारिद्र्य के समान कोई शत्रु नहीं, भूख के समान कोई पीडा नहीं तथा जरावस्था के समान और कोई दुःख नहीं। श्रीमती के पिता घर चले जाने से धनश्रेष्ठी भोजन पकाने आदि के कष्ट से बडे दुःखी हुए। तब वह

\+ अधः क्षिपन्ति कृपणाः वित्तं तत्र यियासवः।
सन्तश्च गुरुचैत्यादौ तदुच्चैः फलकांक्षिणः ॥ ११५ ॥

×अस्ति जलं जलराशौ क्षारं तत् किं विधीयते तेन।
लघुरपि वरं स कूपो यत्राऽऽकण्ठं जनः पिबति ॥ ११६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके पिता के घर गये और बड़े मान-सन्मान के साथ मना कर उसे घरमें ले गये।

एकदा श्रीमती अपनी सखियों के साथ जिनेश्वर भगवान् के मन्दिर में दर्शन करने गई। वहाँ एक दमडी के फूल लेकर जिनेश्वर भगवान् को चढ़ाये। यह वृत्तान्त किसी के मुंह से धनश्रेष्ठी ने सुना त्योंही वे मूर्च्छित हो धरतीपर गिर पड़े। तब शीतोपचारादि से उन्हें स्वस्थ किया गया। दाँत पीसते हुए अति कठोर वचन बोले 'अरे पापिनि! तू मेरे धन को इस प्रकार व्यय करके थोडे ही दिनों में मेरे घर को धन रहित कर देगी। अरे पापिनि! आज तो मैं तुझे दया के कारण छोड़ देता हूँ। परन्तु ख्याल रखना कि अब आगे थोडा भी धन का दुरुपयोग किया तो जान गई समझना। दूसरी बार फिर ऐसा ही हुआ।

एक दिन पुत्र कर्मण ने जिनेश्वर भगवान् के मन्दिर में जाकर एक पैसा पूजा कार्य में खर्च कर दिया। यह बात सुनते ही धनश्रेष्ठी मूर्च्छित हो गये जब शीतोपचारादि से स्वस्थ हुए तो बड़े क्रोध में आकर बोले :- "अरे कुपुत्र! तूम इसी तरह रोज मेरे धनका दुर्व्यय करके थोड़े ही दिनों में सब सम्पत्ति का नाश कर देगा।"

पिता की कृपणता को देखकर वह मौन रहा। परन्तु चुपके से वह धर्मादि कार्य में खूब सम्पत्ति खर्च करता था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैसा कहा भी है:—

"कोई सुपुत्र ही अपने चरित्र से पिता से विलक्षण हो जाता है। जैसे घड़े में थोड़ा ही जल रहता है, परन्तु घड़े से उत्पन्न अगस्त्यमुनि समुद्र को भी पी गये।"×

एक समय एक संघ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की यात्रा करने को जा रहा था। तब इतने बड़े संघ को यात्रा पर जाते देखकर श्रीमती की भी अभिलाषा यात्रा करने जाने की हुई।

श्रीमती ने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि—"हे स्वामिन्! बहुत से लोग संघ (समूह) बनाकर तीर्थयात्रा करने के लिये श्री शत्रुंजय महातीर्थ जा रहे है, यदि आप की आज्ञा हो, तो मैं भ जाने की तैयारी करूं।"

यह कथन सुन कर धनश्रेष्ठी बोले कि—"तू मुझको भूली हुई बात फिर से याद कराकर काँटे से बींध रही है।"

फिर श्रीमती रात को बिना पूछे ही घर से निकल गई और उसने श्री संघ के साथ तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय एवं गिरनारजी आदि महा तीथा की यात्रा अच्छी प्रकार पूर्ण की। श्री शत्रुंजय गिरिराज पर श्री गुरु महाराज के मुख से तीर्थ-यात्रादि

×कुम्भः परिमितमम्भः पिबति पयःकुम्भसम्भवोऽम्भोधिम्।
अतिरिच्येत सुजन्मा, कश्चिद् जनकाद् निजेन चरितेन ॥१३४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का फल एकाग्रचित्त से सुना। जैसे—

तीर्थयात्रा के ये सब फल हैं—"सांसारिक पाप कार्यों से निवृत्ति, द्रव्य (धन) का सदुपयोग, श्री संघ और साधर्मिक बन्धुओं की भक्ति, सम्यग्दर्शन की शुद्धि, स्नेही जनों का हित, जीर्णमन्दिर आदि का उद्धार और तीर्थ की उन्नति फिर इन सब से प्रभाव बढ़ता है। जिनेश्वर भगवान् के वचनों का पालन और तीर्थंकर नाम कर्म बँधता है। मोक्ष के सामीप्य भाव और क्रम से देवत्व (देवजन्म) मनुष्यत्व (मनुष्य जन्म) प्राप्त होता है।"*

इस के अलावा और भी कहा है—

"शुभ भाव से तीर्थाधिराज शत्रुंजय का स्पर्श, गिरनार का नमस्कार और गजपद कुण्ड में स्नान करने से फिर से इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता है।"+

तीर्थ के ध्यान करने से सहस्र पल्योपम प्रमाण पाप नष्ट होता है, तीर्थ का नाम लेने अथवा तीर्थयात्रा का विचार

---

*आरम्भाणां निवृत्तिर्द्रविणसफलता संघवात्सल्यमुच्च-
नैर्मल्यं दर्शनस्य प्रणयिजनहितं जीर्णचैत्यादिकृत्यम्।
तीर्थोन्नत्यं प्रभा(वं)वः जिनवचनकृतिस्तीर्थकृत्कर्मकृत्यं-
सिद्धेरासन्नभावः सुरनरपदवी तीर्थयात्राफलानि ॥ १४० ॥

+स्पृष्ट्वा शत्रुंजयं तीर्थं, नत्वा रैवतकाचलम्।
स्नात्वा गजपदे कुण्डे, पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १४१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने से लाख पल्योपम प्रमाण पापों का नाश हो जाता है और तीर्थयात्रा निमित्त मार्ग में जाने से सागरोपम प्रमाण पाप-समूह नष्ट हो जाता है।

शुभ भाव से तीर्थयात्रा कर जब प्रसन्नता पूर्वक श्रीमती अपने घर लौटी, तब अति कृपण धनश्रेष्ठी ने क्रोध से आँखें लाल करते हुअे कहा-'अरी अधमे! तू बहुत धन व्यय करके आई है, उसका फल अभी ही तुझे चखाता हूँ।' यह कह कर यम दण्ड के समान दण्ड से उसे इतना मारा कि थोड़ी ही देर में प्राण-पँखेरु यम धाम उड़ गये। (प्रथम भव)

तीर्थयात्रा के शुभ ध्यान से मरने के कारण मैं चम्पा-पुर में मधुराजा के यहाँ पद्मावती नाम की कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। जैसा कि शास्त्र में कहा है-'प्राणियों को मरते समय जो आर्त्त (दुःख) सम्बन्धी ध्यान हो तो तिर्यक् (पशु-पक्षी) आदि योनि में उत्पन्न होना पड़ता है, धर्म--आत्मादि के शुभ विचार से मरे तो (देव-गति) या उत्तम (मनुष्य-गति) को जीवात्मा पाता है और शुक्ल ध्यान से मोक्ष धाम प्राप्त होता है।' इसलिये बुद्धिमानों को उचित है कि जन्म-मरण रूप बन्धन काटने वाला और सर्व कल्याण को देने वाला धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान करने का प्रयत्न अवश्य करें।

शास्त्रकारों के वचनानुसार यात्रादि के शुभ ध्यान में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरने से ही मनुष्य जातीय उत्तम राजकुल में मेरा जन्म हुआ क्रमसे मैंने वहाँ सुन्दर यौवन–अवस्था को प्राप्त किया।

जितशत्रु और पद्मावती

मधुराजा ने जितशत्रु राजा के साथ बड़ी धूम–धाम से मेरी शादी की। मेरे पिता के दिये हुए मदोन्मत्त हाथी सुन्दर सुन्दर घोड़े और मणि मुक्ता के साथ मेरे पति ने नगर में ले जाकर मेरे रहने के लिये सात माल का बड़ा महल दिया।

कुछ दिन पश्चात् मेरे पति ने लक्ष्मीपुर नगर के धन भूपति नाम के राजा की कलावती नाम की कुँवरी से दूसरी शादी कर ली। नवपरिणीता कलावती पर राजा जितशत्रु का प्रेम दिन दिन बढ़ता गया।

एक दिन लक्ष्मीपुर के राजा ने रत्न जडित मनोहर सुवर्ण–कुण्डल मेरे पति जितशत्रु को भेंट दिये। बड़े प्रेम के साथ आदर पूर्वक मैंने उन कुण्डलों को माँगा। परन्तु मुझे न देकर मेरी सपत्नी (सौक) को ही दिये।

प्रायः मनुष्यों का स्वभाव है कि प्राचीन वस्तु अच्छी हो तो भी उसको छोड़ कर नवीन वस्तु को ही चाहते हैं। जैसे कि कौआ पानी से भरे हुए तालाब को छोड़ कर घड़े का पानी ही पीता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक बार मेरे पति जितशत्रु राजा अपनी प्रिया कलावती के साथ अष्टापद महातीर्थ की यात्रा के लिये रवाना हुए। तब मैंने भी पति से अर्ज की कि 'श्रीअष्टापदजी महातीर्थ की यात्रा करने की मुझे भी बहुत दिनों से अभिलाषा है अतः मुझे भी साथ ले चल कर मेरी भी अभिलाषा पूर्ण कीजिये।' क्यों कि शास्त्र में कहा है:—

"शुभ और अशुभ कार्य खुद करने वाले अथवा दूसरे से कराने वाले और हर्ष पूर्वक् अनुमोदन करने वाले एवं उन शुभ—अशुभ कार्यों में सहायता करने वाले इन सभी को समान ही पुण्य एवं पाप होता है ऐसा ज्ञानियों ने कहा है।"×

इसी प्रकार मैंने अपने पति से वारंवार अष्टापद महातीर्थ की यात्रा में साथ ले जाने के लिए प्रार्थना की परंतु उसने मेरा कटु वचन से तिरस्कार कर के नव परिणीता कलावती के साथ तीर्थयात्रा कर के फिर घर लौटे। कुछ काल पश्चात् मेरे पति ने कलावती को नवीन सुन्दर सुन्दर आभूषण बनवा कर दिये, फिर मैंने यह देखकर उन से कहा कि मुझे भी नवीन आभूषण बनवा कर दीजिए। तब उन्होंनें क्रोधातुर हो कर कहा कि यदि तुम अपना हित चाहती हो तो ऐसी इच्छा कदापि मत करो। इस तरह कलावती में आसक्त राजा ने उस भवमें मेरी एक भी अभिलाषा पूर्ण नहीं की। जैसे

×कर्तुः स्वयं कारयितुः परेण, तुष्टेन भावेन तथाऽनुमन्तुः।
साहाय्यकर्तुश्च शुभाऽशुभेषु, तुल्यं फलं तत्त्वविदो वदन्ति॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहा भी है:—

"हाथी एक वर्ष में वश होता है, घोड़ा एक महीना में वश होता है, और स्त्री द्वारा पुरुष तो एक ही दिन में वश हो जाता है।"*

"जो पुरुष बलवान् एवं मानी हैं, वे संसार में किसी के आगे सिर नहीं झुकाते, किन्तु वे पुरुष भी रागान्ध होने से स्त्री के चरणों में सिर झुकाते हैं।"+

"जो पराक्रमशाली और मानी पुरुष मरण पर्य्यन्त दीन वचन नहीं बोलते, वे भी स्त्री के प्रेम रूप राहु से ग्रसित हो कर उन के आधीन हो जाते हैं।"+

"विष्णु, महादेव, ब्रह्मा एवं चन्द्र—सूर्य्य और छः मुख वाले कार्त्तिकेय आदि देवता भी स्त्रियों के किंकरत्व (दासत्व) को स्वीकार कर सेवा करते हैं ऐसी विषय तृष्णा को वारंवार धिक्कार है।।"*

---

*हस्ती दम्यते संवत्सरेण, मासेन दम्यते तुरगः।
महिलया किल पुरुषो, दम्यते एकेन दिवसेन॥ १६५॥

+ये नामयन्ति न शीर्षं न कस्यापि भुवनेऽपि ये महासुभटाः।
रागान्धा गलितबला लुठ्यन्ते महिलानां चरणतले॥ १६६॥

+मरणेऽपि दीनवचनं मानधरा ये नरा न जल्पन्ति।
तेऽपि खलु करोति लल्लि बालानां स्नेहग्रहग्रहिलाः॥ १६७॥

*हरि–हर–चतुरानन–चन्द्र–सूर–स्कन्दादयोऽपि ये देवाः।
नारीणां किंकरत्वं कुर्वन्ति धिग् धिग् विषयतृष्णाम्॥ १६८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मृगली–विभावसु देवकी पत्नी

इस तरह आर्त्त ध्यान में अपूर्ण इच्छा से मरने के कारण मलयाचल पर्वत पर तृतीय भव में मैं मृगी हुई। वहाँ पर एक दुष्टाशय मृग मेरा पति हुआ। उसे मैं जो कुछ कहती, वह उसे स्वीकार नहीं करता था। संसार में सब प्राणियों को अपने अपने भाग्य के अनुसार ही सब कुछ मिलता है, ऐसा सोच कर ही मैं अपना जीवन दुःख में बिताती थी।

एक दिन जंगल में चरते हुए मैंने एक महा तपस्वी शान्त मुनि को देखा, और विचार करते करते मुझे जाति स्मरण पूर्वभव का ज्ञान उत्पन्न हुआ। अतः मैं हमेशा उनका दर्शन व वन्दन करने लगी। एक दिन मैंने अपने पति से कहा कि इस जंगल में एक शान्त मुनि महात्मा रहते हैं। उन के दर्शन करने से पूर्व भव के पाप नष्ट हो जाते है। कहा है:—

"साधुओं का दर्शन उत्तम पुण्य कारक है, क्यों कि साधु तीर्थ समान ही हैं, अथवा तीर्थ से भी साधु समागम उत्तम है, क्यों की तीर्थ यात्रा का फल तो देर से मिलता है, पर साधु महात्मा के दर्शन व समागम का फल तत्काल प्राप्त होता है।"+

+साधूनां दर्शनं श्रेष्ठं (पुण्यं) तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन, सद्यः साधुसमागमः ॥ १७६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतः मैंने उसे उन साधु के दर्शन करने को कहा। यह सुन कर वह अत्यन्त क्रोधित हो गया और कहने लगा 'अरी दुष्टे, तू अपने को बड़ी चतुर समझती है और मुझे उपदेश देती है। तुझे कुछ भी लज्जा नहीं आती है।' ऐसा कहते हुए उस ने मुझे अपने बाण जैसे तीक्ष्ण सींग से बींध दिया। मैं उस मुनि का ध्यान धरती हुई शुभ भाव से मर कर चौथे भव में देवी हुई। वहाँ भी मुझे अपने मन के अनुकुल पति नहीं मिला। जो देव मेरा पति था, वह अपनी पहली पत्नी में आसक्त था। अतः वह मेरा कहा कुछ भी नहीं सुनता था, मानना तो दूर रहा। ईर्ष्या, द्वेष, विवाद, अभिमान, क्रोध, लोभ, और ममत्व तो देव लोक में भी हैं ही। अतः वहाँ भी सच्चा सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? एक दफा मैंने अपने पति से शाश्वत जिनेश्वर भगवान के दर्शन करने कि मेरी इच्छा प्रकट की। उसने क्रुद्ध हो कर कहा कि 'कभी ऐसी बात मुझे मत कहना।' मैंने मौन धारण किया और उसे अपने कर्मों का ही दोष मान कर सब कष्टों को सहती रही। मेरी संपूर्ण देव भवकी आयु इसी तरह के कष्टों में बीताई।

वहां से मर कर मैं पांचवे भव में (अबसे तीसरे में) मुकुन्द ब्राह्मण की प्रीतिमती पत्नी के गर्भ में पुत्रीरूप उत्पन्न हुई।

विप्रकी पुत्री मनोरमा –

पद्मपुर के मुकुन्द नामक ब्राह्मण की पत्नी प्रीतिमती के गर्भ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से उचित समय में मेरा जन्म होने पर पिता ने जन्मोत्सव करके मेरा नाम 'मनोरमा' रखा । मैं क्रम से चंद्रमा की कला की तरह बढ़ती गई और अल्प समय में ही सर्व कला, विद्या, धर्म आदि शास्त्रों में पारंगत हो ग ।

कहा है " इस परिवर्तन शील संसार में बालक को दोनों प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये। एक तो ऐसी शिक्षा जिससे वह न्याय पूर्वक आजीविका का उपार्जन कर सके और दूसरे वह शिक्षा भी देना चाहिये जिससे उसे मर कर सुगति मिले अथवा वह पुण्य कर्मका उपार्जन करे जिससे उसका अगला जन्म भी सुधरे।"

पूर्ण वय की होने पर मेरे पिताने देवशर्मा नामक शेषपुर निवासी ब्राह्मणसे बड़ी धूमधाम पूर्वक मेरा लग्न किया। मैं सुख से उनके साथ रहती थी । मेरे पति हमेशा रात्रि भोजन करते थे तथा पानी का अति दुर्व्यय करते थे जिससे घरमें भी गंदकी होती थी। अतः एक दिन मैं अपने पतिको समझाने लगी । रात्रि भोजन, अनन्तकाय व कन्दमूल के भक्षण से तथा जीव हिंसा से मनुष्यों को दुर्गति मिलती है। पुराण आदि में भी कहा है कि :—

" कूप में स्नान करना अधम है, वापी में स्नान करना मध्यम है, तालाब में स्नान वर्जित है और नदी में स्नान भी अच्छा नहीं, हे पाण्डु नन्दन युधिष्ठिर! कपड़े से छने हुए शुद्ध जल से घर पर स्नान करना ही उत्तम स्नान माना गया है। अतः तू घर पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्नान कर।"×

"हे पाण्डुपुत्र! जल से अन्तरात्मा शुद्ध नहीं होता। अतः संयम रूप जल से पूर्ण सत्य रूप प्रवाह युक्त शील रूप तटवाली तथा दया रूप तरंग से युक्त आत्मा रूप स्वच्छ नदी में स्नान कर।"*

"मछली मारने वाले मछुएको एक वर्ष में जितना पाप होता है, उतना ही पाप एक दिन बिना छाने हुए पानी का उपयोग करने वाले व्यक्ति को होता है।"+

कन्द मूलादि खाने व रात्रि भोजन के दोष पुराण आदि ग्रन्थों म भी इस प्रकार बताये हैं:—

"ये चार नरक के द्वार कहे गये हैं—पहला रात्रि भोजन, दूसरा पर स्त्री गमन, तीसरा शराब आदिका व्यसन तथा चौथा अभक्ष्य व अनंतकाय (बोल विगेरे आचार—अथाना) और आलू,

×कूपेषु अधमं स्नानं, वापीस्नानं च मध्यमम्।
तटाके वर्जयेत्स्नानं, नद्यां स्नानं न शोभनम् ॥ १९५॥
गृहे चैवोत्तमं स्नानं, जलं चैव च शोधितम्।
तथा त्वं पाण्डवश्रेष्ठ! गृहे स्नानं समाचर ॥ १९६॥

*आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा, सत्याऽऽवहा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र! न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा॥

+संवत्सरेण यत्पापं, कैवर्तस्य च जायते।
एकाऽहेन तदाप्नोति, अपूतजलसंग्रही ॥ १९९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूले आदि कंद का—भक्षण करना।"[१] और भी सुनिये—

"पुत्रका मांस खाना अच्छा है किन्तु कन्दमूल का भक्षण करना अच्छा नहीं। क्योंकि कन्दमूल के खाने से नरक गति तथा त्याग से स्वर्ग गति मिलती है।"[२] और भी उदाहरण सुनिये—

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा है कि "सूर्यास्त के बाद जल रुधिर के समान और अन्न मांस के समान होता है।"[३]

इस तरह कई दृष्टान्त दे कर मैंने पतिको समझाया किन्तु वह दुष्ट एक न माना और पहले की तरह ही जीव हिंसा आदि में आसक्त रहा। एक दिन वह कहीं से एक अच्छी सी साड़ी ले आया किन्तु बार बार मांगने पर भी उसने मुझे नहीं दी। इस तरह उस दुरात्मा ने मेरे कोई मनोरथ पूर्ण नहीं किये और मैं सारी उम्र अपने मनोरथों की पूर्ति के विना दुःखी ही बनी रही। अतः दुर्ध्यान में मरने से मैं मलयाचल के वन में छठे भवमें शुकी हुई। वहां अपने पति शुक के साथ बड़े बड़े जंगलों में घूम कर अच्छे अच्छे फल खाती हुई सुख पूर्वक मैं मेरा समय बीताती थी।

---

[१] चत्वारो नरकद्वारा, प्रथमं रात्रिभोजनम्।
परस्त्रीगमनं चैव, सन्धानानन्तकायिके ॥ २०१ ॥

[२] पुत्रमांसं वर भुक्तं, न तु मूलकभक्षणम्।
भक्षणान्नरकं गच्छेद्, वर्ज्जनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥ २०२ ॥

[३] अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं, मार्कण्डेन महर्षिणा ॥२०३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रसव काल समीप आने पर मैंने शुक से कहा कि 'किसी वृक्ष पर मेरे लिए घोंसला (माळा) बनाओ जिससे बच्चों का रक्षण हो सके।' किन्तु कई बार प्रार्थना करने पर भी उसने कोई घोंसला नहीं बनाया। फिर बड़े कष्ट से शमी वृक्ष पर अपना घोंसला बनाया और मैंने दो बच्चे को जन्म दिया।

उन दोनों पुत्रों के लिए चारा दाना भी मुझे अकेली को ही जुटाना पड़ता था और वह शुक उसमें कुछ भी मदद नहीं देता था। एक दफा उस जंगल में परस्पर वृक्षों के संघर्ष से आग लग गई। वह आग बड़े जोरों से मेरे घोंसले नजदीक आ रही थी। मैंने शुक से प्रार्थना की 'कि दोनों एक एक बच्चे को लेकर भाग जायँ' पर उस दुष्ट आलसीने मेरी बात न सुनी। आग लग जाने पर भी उसने कोई सहायता न की और दूर खड़ा खड़ा देखता रहा। इतने में मेरे दोनों बच्चे जल मरे।

"अपने कर्म से प्रेरित बुद्धिमान मनुष्य भी क्या कर सकता है क्योंकि बुद्धि भी प्रायः कर्म के अनुसार ही प्राप्त होती है।"×

शुकी तथा शालिवाहन की पुत्री विक्रमाकी विदा

फिर अंत में शुभ ध्यान से मृत्यु पाकर तथा पूर्व भव के पुण्य प्रभाव से ही यहाँ शालिवाहन राजा की कन्या सुकोमला

×किं करोति नरः प्राज्ञः, प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः।
प्रायेण हि मनुष्याणां, बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥ २१८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के रूप में मेरा जन्म हुआ। एक दिन आदिनाथ भगवान के मन्दिर की दीवार पर शुक का चित्र देख कर मुझे जाति स्मरण ज्ञान हो आया और पिछले सातों भवों का सब वृत्तान्त स्मरण आ गया। तब से 'हे विक्रमा! मुझे पुरुषों के साथ स्वभाविक वैर हो गया है क्योंकि सातें भवों में मुझे पुरुष जाति से अत्यन्त कष्ट एवं विटंबना प्राप्त हुई थी।'

"प्राणियों को पूर्व जन्म में अपने किये हुए कर्म के अनुसार सुख, दुःख, गर्व, द्वेष, अहंकार एवं सरलता आदि शुभ और अशुभ फल प्राप्त होते हैं।"+

तब नर्तकी विक्रमा बोली कि 'हे सुन्दरी! तुम जो कहती हो सो सच है, क्योंकि जिसके प्रति जो द्वेप करता है उसके प्रति उसको भी द्वेष होना स्वभाविक है।' इसके बाद राजपुत्री सुकोमला को विक्रमा ने मनोहर गीत गान सुनाया। राजपुत्री ने चित्त प्रसन्नकारी गाना सुन कर एक अमूल्य मणि देकर सूर्योदय काल में विदा कि।

पाठकों को सुकोमला के नरद्वेषिणी होनेका कारण ज्ञात हो गया। अब सुज्ञ पाठकों को अगले प्र[redacted] किस चालाकी से विक्रमादित्य सुकोमला के साथ विवाह करता है[redacted] बताया जायेगा।

+सुखदुःखमदद्वेषाऽहंकारसरलतादयः।
सर्वं शिष्टमशिष्टं च जायते पूर्वकर्मतः ॥ २२२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारवाँह प्रकरण

लग्न

——×——

विक्रमादित्यका विद्याधरका स्वांग

विक्रम राजकुमारी सुकोमला का दिया हुआ रत्न लेकर वापस अपने स्थान पर लोट रहा था। चलते चलते मन में सोचने लगा कि यह रत्न विवाह का सामग्री भूत अर्थात् सगाई का साक्षी है। ऐसा मान कर बड़ी प्रसन्नता से अपने स्थान पर आपहुंचा और कुछ देरतक आराम किया। जिस तरह मयूर मेघमाला-बिजली को देखकर खुश होता है, उसी तरह मनुष्य भी अपने वांछित कार्य को सिद्ध होते हुए समझकर आनंदित होते हैं। फिर विक्रम ने अपने भट्टमात्र और अग्निवैताल आदि को रात्रिका हाल कह सुनाया तथा सब को अपने साथ वन में चलने को कहा।

वे तीनों व्यक्ति अच्छी तरह भोजन कर के गाँव के बाहर उद्यान में अपने अपने घोड़ों पर सवार हो कर शीघ्रता से आये और अग्निवैताल को कहा कि तुम इन पांचों घोड़ों और दोनों वेश्याओं को अवन्ती ले जाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा पट्टरानी कमलावती से तीन दिव्य शृंगार लेते आना । इनसे अपनी कार्य सिद्धि होगी क्योंकि आडम्बर से ही कई कार्य सिद्ध होते हैं। विक्रमादित्य का आदेश पाकर अग्निवैताल अवन्ती नगरी की तरफ चल पड़ा। कहा है कि—

"सती स्त्री पति की, नौकर मालिक की, शिष्य गुरु की, और पुत्र पिता की आज्ञा में संशय करें तो अपना व्रत खंडन किया ऐसा समझना चाहिये।"×

राजा के बिना सेवक का और सेवक के बिना राजा का व्यवहार नहीं चलता। इन दोनों का अन्योन्य गाढ सम्बन्ध होता है। जो सेवक युद्ध में आगे, नगर में मालिक के पीछे तथा महल में होने पर द्वार पर रहता है व ही सेवक मालिक का प्रीतिपात्र होता है।

यथा समय वैताल पांचों घोडों व वेश्याओं को अवन्ती पहुंचा कर पट्टरानी से दिव्य शृंगार लेकर आया तथा महाराजा विक्रमादित्य को वे तीनों शृंगार दिये।

विक्रमादित्य कहने लगा की चालाकी या माया बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। इस नगर का राजा शालिवाहन जिनेश्वर का भक्त है। उसने जिनेश्वर का मंदिर भी बनवाया है। अतः हम भी वहाँ जाकर नृत्य करें।

×सती पत्युः प्रभोः पत्तिः गुरोः शिष्यः पितुः सुतः।
आदेशे संशयं कुर्वन् खण्डयत्यात्मनो व्रतम् ॥ २३२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चैत्यमें नृत्य

तब वे तीनो संध्या समय मंदिर में गये और रात्रि में प्रभु के सन्मुख महाराजा विक्रमादित्य ने कई भवों के पापों का नाश करने वाली स्तुति गान करके भक्ति प्रकट की। कहा है कि 'भावना भवनाशिनी' दान से दारिद्य नाश होता है, शील से दुर्गति का नाश होता है, बुद्धि से अज्ञान का नाश होता है तथा शुभ भावना से भव याने जन्म–मरण रूप संसार का नाश होता है।

रात्रि में नृत्य करके विक्रमादित्य और उसके दोनों साथी नगर बाहर उद्यान में जाकर सो गये। सबेरे सूर्योदय के बाद पुनः विक्रमादित्य ने दोनों साथियों से कहा--'चलो हम लोग मंदिर में जाकर भगवान के समक्ष नृत्य करें।' साथ ही वैताल को इशारे से समझाया कि 'जब मैं ऐसी खास संज्ञा करूं जैसे हाथ का अंगूठा हिलाऊँ तब तुम हम दोनो को स्कंध पर लेकर उड जाना और वैसे ही दूसरी संज्ञा के करने पर हमें नीचे ले आना तब हम पुनः नृत्य करेंगे।'

महाराजा विक्रमादित्य अग्निवैताल को गुप्त संकेत समझा कर दोनो के साथ प्रभु के मंदिर में आये तथा नृत्य गान करने लगे। कुछ समय बाद जब मंदिर का पुजारी पूजा करने आया तो वह ऐसा अद्भुत नृत्य गान होते देखकर चमत्कृत हुआ तथा सोचने लगा कि ये कौन हैं? क्या ये देव या दानव हैं या कोई विद्याधर या पाताल कुमार हैं जो जिनेश्वर भगवान की स्तुति करने आये हैं। अल्प समय में ही महाराजा शालिवाहन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को भी इस अद्‌भुत नृत्य का पता चल गया कि मंदिर में दिव्य रूपधारी देव प्रेमपूर्ण भक्ति सहित नृत्य गान कर रहे हैं।

राजा शालिवाहन उस अद्‌भुत नृत्य को देखने के लिए योग्य परिवार के साथ युगादि जिनेश्वर के मंदिर में आ पहुँचा। उस को आता हुआ देख कर विक्रमादित्य ने अपने आपको आकाश में लेकर उड़ने का अग्निवैताल को संकेत किया तथा वे तीनों तुरंत उड़ते हुए दिखाई देने लगे। तब राजा शालिवाहन कहने लगा कि 'हे देवो! यदि तुम लोग नृत्य गान किये बिना तथा मुझे नृत्य दिखाये बिना चले जाओगे तो मैं आत्महत्या कर लूंगा!' राजा का ऐसा आग्रह देख कर वे वापस नीचे उतर आये तथा आश्चर्यजनक नृत्यगान से सब जन को मोहित कर लिया।

शालिवाहनका राजसभामें नृत्यकरनेका आग्रह

राजा ऐसे अद्‌भुत नृत्य को देख कर खूब खुश हुआ। उसने उन देवों से प्रार्थना की कि 'आप लोग हमारी राजसभा में भी नाच करें, जिससे उसकी कीर्ति सब तरफ फैले।' नीति में कहा है कि—मानो हि "अधम धनको चाहते हैं, मध्यम धन व मान दोनों चाहते हैं परन्तु उत्तम मनुष्य केवल मान के भूखे होते हैं। ×

कहा भी है कि—

"देवता, राक्षस, गंधर्व, राजा और मनुष्य तीनों जगतमें व्याप्त

× अधमा धनमिच्छन्ति, धनमानौ च मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम् ॥२५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होने वाली उज्जवल कीर्ति की सदा इच्छा करते हैं। "

राजा के पूछने पर कि आप लोग कोन हैं ? विक्रमादित्य ने उत्तर दिया कि ' हम आकाश में विचरने वाले विद्याधर हैं और सिर्फ जिनेश्वर भगवान के सन्मुख ही भक्तिभाव पूर्वक् नृत्य करते हैं ' क्यों कि—

" जिसने राग द्वेष आदि दोषों को जीत लिया है, वे ही सर्वज्ञ, त्रैलोक्य पूज्य और यथास्थित सत्य वस्तु के कहने वाले अरिहंत देव हैं। "*

" यदि तुम्हें चेतना व ज्ञान हो तो तुम इन्हीं भगवान का ध्यान एवं उपासना करो और उनका ही शरण व शासन स्वीकार करो। "×

" राग द्वेषादि शत्रु को जीतने वाले वीतराग प्रभु का स्मरण एवं ध्यान करने वाला योगी स्वयं ही वीतरागत्व प्राप्त कर लेता है। अथवा सरागी देवों का ध्यान करके स्वयं भी राग युक्त बन जाता है। "+

[1] देवदानवगंधर्वमेदिनीपतिमानवाः ।
त्रैलोक्यव्यापिकां कीर्त्तिमिच्छन्ति धवलां सदा ॥ २५६ ॥

* सर्वज्ञो जितरागादि-दोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथास्थित्यर्थवादी च, देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ २५८ ॥

× ध्यातव्योऽयमुपास्योऽयमयं शरणमिष्यताम् ।
अस्यैव प्रतिपत्तव्यं, शासनं चेतनाऽस्ति चेत् ॥ २५९ ॥

+ वीतरागं स्मरन् योगी वीतरागत्वमश्नुते ।
सरागं ध्यायतस्तस्य सरागत्वं तु निश्चितम् ॥ २६० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"जैसे विश्वरूप मणि मनुष्यों को मनोवांछित फल देती है, उसी तरह यंत्र वाहक जैसी जैसी भावना रखता है वैसी ही वस्तु हो जाती है।"*

विद्याधरका नारीद्वेष

विद्याधर की यह बात सुनकर शालिवाहन राजा ने कहा कि मनुष्यों के आगे नृत्य करने से तुम्हें कोई दोष न लगेगा। यदि देव बुद्धि से हमारे आगे नृत्य करो तो तुम्हें दोष लगना संभव है वरना दोष न लगेगा। उसका ऐसा युक्तियुक्त वचन सुनकर विद्याधर (विक्रमादित्य) ने कहा कि राजसभा में स्त्री को देखने से ही मेरा प्राण चला जायगा। अतः आप ऐसा आग्रह न करें। आप को नृत्य देखने की इच्छा हो तो कल प्रातः काल यहाँ मंदिर में ही नृत्य करेंगे उसे देख लें। शालिवाहन राजा ने उसका समाधान करते हुए कहा कि राजसभा में एक भी स्त्री आप को दृष्टिगोचर न हो, ऐसा प्रबन्ध करवा दूंगा। अतः आप प्रसन्नता पूर्वक राजसभा में नृत्य करना स्वीकार करें, इसमें कोई बाधा न होगी।

राजसभामें नृत्य तथा नारीद्वेष के कारणका कथन

राजा शालिवाहन ने नगर में ढिंढोरा पिटवाया कि "आज राजसभा में नृत्य होने वाला है पर कोई भी स्त्री वहाँ उपस्थित नहीं हो सकेगी। स्त्रियाँ अपने अपने घरों में ही रहें।" इस ढिंढोरे की खबर

*** येन येन हि भावेन, युज्यते यन्त्रवाहकः।**
तेन तन्मयतां याति, विश्वरूपो मणिर्यथा ॥ २६१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब राजकुमारी सुकोमला को लगी तो उसने अपनी सखी से इस का कारण जानना चाहा। सखी ने बतलाया कि "राजसभा में कोई देव या विद्याधर मनोहर नृत्य करेंगे पर वे स्त्रियों को देखना पसंद नहीं करते अर्थात् नारीद्वेषी हैं," अतः महाराजा ने यह ढिंढोरा पिटवाया है।

सखी द्वारा यह बात जान लेने पर अद्भुत नृत्य देखने के लिए राजकुमारी सुकोमला पुरुष वेश धारण करके राजसभा में आकर बैठ गई। जब राजसभा में सब लोग राजा, मंत्री व पुरलोक अपने अपने योग्य स्थानों पर जम गये तो मंत्री द्वारा तीनों विद्याधरों को बुलवाया गया और नृत्य करने के लिए राजा ने उनसे विनती की।

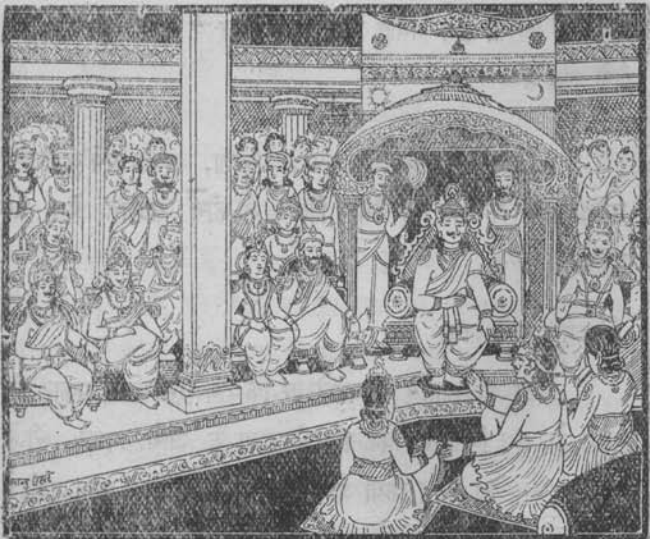

उन तीनों विद्याधरों ने अल्प समय में ही नृत्य गान से सभा के सब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सदस्यों को मंत्र मुग्ध सा कर दिया। लोग अपनी सब सुध बुध भूल गये। थोडे समय बाद पुनः चेतना पाने पर राजा ने कहा कि "यदि आप नाराज न हो तो एक बात पूछूँ।" विद्याधर के आश्वासन देने पर राजा ने कहा कि "सब विद्याधरों के पास अपनी अपनी स्त्रियाँ हैं तो आप को ही क्यों स्त्रियों से द्वेष है? " यह समझाइये।

वह विद्याधर (राजा विक्रमादित्य) बोला कि "स्त्रियाँ मनुष्य के पवित्र हृदय में प्रवेश कर मद, अहंकार तथा अनेक प्रकार की विडंबना एवं तिरस्कार करती हैं। साथ ही वे अपने कटु वचन बाणोंसे उसे घायल कर देती हैं और कभी कभी अच्छे वचनों से उसे आनंद प्राप्त भी कराती है। अर्थात् स्त्रियाँ सब प्रकार के प्रपंच करती हैं।" जैसे कहा है–

"जिस में वंचकता, छलकपट, कठोरता, चपलता एवं कुशीलता आदि स्वाभाविक दोष हैं वैसी स्त्रियों से कौन सज्जन प्रेम कर सकता है?"*

विक्रमके पूर्व सात भव

राजा शालिवाहन के पूछने पर कि तुम ऐसा किस प्रकार कह सकते हो, उस विद्याधर विक्रमादित्यने राजा के आगे स्पष्टतः स्त्री के उन सब दोषों का वर्णन किया जो राजकुमारी सुकोमला ने पुरुष जाति में

---

*वंचकत्वं नृशंसत्वं, चंचलत्वं कुशीलता।
इति नैसर्गिका दोषा यासां तासु रमेत कः?॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होना बतलाये थे और राजसभा में राजकुमारी सुकोमला के कहे हुए सातों भवों की वार्ता उसने उलटे तौरपर कह सुनाई। वह कहने लगा—

'इस भव से पूर्व सातवें भव में मैं लक्ष्मीपुर में धन नाम का श्रेष्ठी था। मेरे 'श्रीमती' नाम की एक पत्नी थी और 'कर्मण' नाम का एक पुत्र था। मैंने व्यापार आदि से काफी धन का संचय किया और समय समय पर दीन दुःखी जनों को सहायता करने तथा साधुतीर्थ आदि में धन व्यय करता था। धर्मद्वेषी 'श्रीमती' मेरे धर्मकार्यों में बाधा डालती रहती थी और मेरे आदेश में नहीं चलती थी। वह पर्व आदि पर भी धन, द्रव्य व कपड़ों का सदुपयोग नहीं करती थी।'

'दूसरे भव में मैं चम्पापुरी में जितशत्रु नामका राजा हुआ और वहाँ भी मुझे मेरे विचार तथा कथन से विपरीत आचरण वाली पद्मा नाम की पत्नी मिली। तीसरे भव में मैं मलयाचल के वन में मृग बना। वहाँ भी मुझे मेरे प्रतिकूल ही पत्नी—मृगी मिली। चौथे भव में मैं देवलोक में उत्पन्न हुआ। और वहाँ मुझे जो देवांगना प्राप्त हुई वह भी मेरे विरुद्ध वर्तन वाली थी तथा मुझे हर समय कष्ट देती रहती थी। पांचवें भव में मैं पद्मपुर में देवशर्मा ब्राह्मण बना। वहाँ मुझे मनोरमा नाम की पत्नी मिली। उसने भी मुझे मेरे पूर्व की स्त्रियों की तरह ही कष्ट दिया। उसके विचार भी मेरे प्रतिकूल थे और वह मुझे हर समय हैरान किया करती थी।'

'छठे भव में मैं मलयाचल पर्वत पर 'शुक' बना। वहाँ मुझे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो शुकी मिली वह भी ऐसी ही प्रतिकूल विचार वाली तथा आलस-पूर्ण थी। उसके गर्भवती होने पर प्रसवकाल निकट आया जान कर मैंने कहा कि हम दोनों मिलकर एक घोंसला बनावें पर उसने मेरी कुछ न सुनी। मैंने अकेले ही प्रयत्न करके शमी वृक्ष पर घोंसला बनाया। वहाँ उसने दो बच्चों को जन्म दिया। फिर मैं हमेशा आहार के लिए फल, जल आदि लाकर उसे तथा उसके बच्चों को दिया करता था। कुछ दिनों बाद भी मैंने जब उसे स्वयं अपना या बच्चों के आहार का कुछ अंश लाने को कहा तो उस आलसी शुकी ने ऐसा कुछ नहीं किया। थोडे ही दिनों बाद वृक्षों के संघर्ष से वन में बड़े जोरों से आग लग गई, जंगल के वृक्ष आदि को भस्म करती हुई वह अग्नि हमारे घोंसले के निकट आने लगी तब मैंने शुकी से कहा कि हम दोनों एक एक बच्चे को लेकर उड़ जायँ तो हम चारों बच जावेंगे। वह दुष्ट शुकी कुछ भी न बोली और जब आग हमारे घोंसले के अत्यन्त निकट आ गई तो वह दुष्टा अकेली ही उडकर दूर चली गई। मैंने दोनों बच्चो को लेकर उडनेका प्रयत्न तो किया मगर मैं न उड सका और उस आगसे हम तीनों भस्म हो गये।' कहा भी है कि–

" सब प्राणी अपने अपने पूर्व जन्मार्जित पुण्य–पापसे ही देव, मानव, तिर्यंच (पशु–पक्षी) एवं नारक इन चारों गतियों में भ्रमण करते हुए सुख दुःखोंका अनुभव करते हैं। "*

---

*पूर्वभवार्जित श्रेयोऽश्रेयोभ्यां प्राणिनोऽखिलाः ।
लभन्ते सुखदुःखे च भ्रमन्तश्च चतुर्गतौ ॥ २९९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'उस शुक के भवमें शुभ ध्यान में मर कर हम तीनों नर्तक विद्याधर देव हुए, किन्तु उस दुष्ट शुकी की क्या गति हुई वह मैं नहीं जानता। इस तरह छहों भवों में मैंने यथाशक्ति यात्रा तथा भोजन आदिसे स्त्रीका मनोरथ पूर्ण किया किन्तु दुष्ट स्त्रीने अपने बुरे स्वभाव को नहीं छोडा और कभी भी मुझे मेरा आदेश मानकर संतोष नहीं दिया।'

पाठकगण! यह तो आप जानते ही हैं कि राजपुत्री सुकोमला पुरुष वेष धारण करके राजसभामें नृत्यको देखने आई हुई थी, राजा के आग्रह से राजसभामें विद्याधर विक्रमादित्यने अपने स्त्री देवका कारण सातों भवोंमें स्त्री द्वारा प्राप्त दुःखको ही बताया। उस समस्त वर्णन को सुन कर राजपुत्री सुकोमला मनही मन अत्यंत आश्चर्य चकित हुई। साथही तुरन्त प्रकट होकर बोली कि 'अरे दुष्ट तू ही आग लगने पर मुझ शुकीको दो बच्चोंके साथ छोडकर भाग गया था और मैं ही दोनों बच्चोंके साथ उस दावानलमें जल कर मर गई थी। वहांसे मरकर मैं यहाँ पर राजकुमारी के रूपमें उत्पन्न हुई हूँ।'

राजकुमारीका यह कथन सुनकर वह विद्याधर विक्रमादित्य बोला कि 'अब तुम झूठ मत बोलो। यदि तुम दोनों बच्चोंके साथ जलकर मर गई थी तो अपने दोनों बच्चों को बतलाओ नहीं तो मैं अपने दोनों बच्चोंको बतलाता हूँ।' राजकुमारीके कहने पर कि 'मैं नहीं जानती तुमही बतलाओ,' वह विद्याधर बोला कि 'ये दोनों अभी भी मेरे साथ हैं और पूर्व भवमें भी साथ थे।' विद्याधर का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह कथन सुनकर सुकोमलाने सोचा कि 'शायद मेरे ज्ञानमें कुछ न्यूनता होगी या मुझे कुच भ्रम रह गया होगा।'

इस प्रकार दोनों की युक्तिसंगत बातें सुनकर शालिवाहन राजा सहित सारी सभाको आश्चर्य हुआ। उधर वे तीनों देव आकाशमें उड कर जाने लगे।

राजकुमारी सुकोमला का लग्न करने का आग्रह

उनको जाता हुआ देखकर राजकुमारी सुकोमला राजसभामें पिता के समक्ष कहने लगी कि यदि यह विद्याधर देव मेरे साथ पाणिग्रहण न करेगा तो मैं आत्महत्या करके मर जाऊंगी। राजा शालिवाहन अपनी पुत्रीके पुरुषके प्रति द्वेष को जाते देखकर प्रसन्न हुए। साथही उसका ऐसा आग्रह देखकर तुरन्त ही उस जाते हुए देव को कहा कि 'हे देव! आप मेरी इस पुत्रीके साथ पाणिग्रहण करके जाओ वरना मैं अपने पूरे कुटुम्बके साथ आत्महत्या करुंगा जिसका पाप तुम्हें लगेगा। अत: हे देव! आप अभयदान देकर मुझे मेरी पुत्री को जीवित रहने दो।' कहा है कि–

"ज्ञान दानसे ज्ञानी, अभयदानसे निर्भय, अन्नदानसे सुखी और औषध दानसे निरोगी होते हैं। अतः सज्जन पुरुष अपनी शक्ति अनुसार परोपकार करके अपना फर्ज पूरा करते हैं।"*

---

*ज्ञानवान् ज्ञानदानेन, निर्भयोऽभयदानतः।
अन्नदानात्सुखी नित्यं, निर्व्याधिर्भेषजाद् भवेत्॥ ३१६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब राजे हत्या, स्त्री हत्या आदिका भय दिखाता हुआ तथा अपना मनोवांछित कार्य सिद्ध हुआ समझकर अपने मन में अत्यंत आनन्दका अनुभव करते हुए पर प्रकट रूप में उसे न बताते हुए वह विद्याधर (विक्रम) नीचे उतर कर राजा को देववाणी (संस्कृत) में कहने लगा 'हे राजन् ! मैं देव हूँ और तुम मनुष्य हो। अतः देव और मनुष्य का योग कैसे हो सकता है। क्यों कि प्राणीयों का सम्बंध अपने समान कुल शील वालों के साथ ही होता है।' कहा हैं कि–

" जिसका जिसके साथ धन अथवा श्रुत (शास्त्रज्ञान) समान रहता है, उन्हीं दोनों में परस्पर मैत्री और विवाह दोनों अच्छे लगते है। किन्तु न्यूनाधिक में वे शोभा को नहीं पाते। और भी–मृग मृग के साथ, गो गो के साथ, मूर्ख मूर्ख के साथ और ज्ञानी ज्ञानी के साथ संग करते हैं। अर्थात् समान स्वभाव एवं आचार वालों में ही प्रेम रहता हैं। "[1]

राजाका विक्रमादित्यको समझाना

राजा शालिवाहनने उनकी ओर देखते हुए तथा शास्त्र वचनों को याद करके अपने मन में निश्चय किया कि ये देव तो नहीं है क्यों कि इनके पाँव जमीन पर टिके हुए हैं और इनकी आँखें भी देवों की तरह अचल नहीं हैं, अतः ये मनुष्य ही हैं अथवा तो कोई मंत्र तंत्र सिद्ध पुरुष हैं। शास्त्रों में कहा है कि–

---

[1]**ययोरेव समं वित्तं, ययोरेव समं श्रुतम् ।**
तयोर्मैत्री विवाहश्च, न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ ३२० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"देवताओ की आँखें सदा खुली रहती हैं, मनुष्यों की तरह बार बार बंद होकर नहीं खुलतीं। देवता लोग क्षण में ही अपना मनोवांछित सिद्ध कर लेते हैं। उनके गले की पुष्पमाला सदा अम्लान (यने विकसित) रहती है। उनके पाँव भूमि से चार अंगुल ऊँचे ही रहते हैं अर्थात् भूमि को स्पर्श नहीं करते। साथ ही देवता तो केवल जिनेश्वर देवों की भक्ति से या उनके पांचों [1]कल्याणक के अवसर पर अथवा तो तपस्वियों के तप के प्रभाव से आकृष्ट होकर ही मर्त्य लोक में आते हैं या कभी पूर्व भवके स्नेह से भी आते हैं। वरना कभी नहीं आते।[2]

ऐसा सोचकर शालिवाहन ने अपने मनमें निर्णय किया कि ये देव तो कदापि नहीं हैं। तब भी उत्तम पुरुष होने के कारण पुत्री दान के योग्य पात्र हैं। यह विचार कर राजा शालिवाहन ने कई युक्तियों से विद्याधर को समझाया। विक्रमादित्य स्वयं यही चाहता था अतः वह शीघ्रही राजा की बात मानने को तैयार हो गया।

सुकोमला व विक्रमका लग्न

राजाने भी शीघ्रही अपनी पुत्री सुकोमला का बडी धूम धाम से उस विद्याधर विक्रमादित्यके साथ पाणिग्रहण कराया। सारे पुरजन

१ जिनेश्वर भगवान के च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान एवं निर्वाण इन पाँच कल्याणकोंके लिये देव देवी महोत्सव करने के लिए पृथ्वीतल पर जाते हैं।

[2]अणिमिसणयणा मणकज्जसाहणा पुप्फदामअमिलाणा।
चउरंगुलेण भूमिं न छुवन्ति सुरा जिणा बिंति॥ ३२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी ऐसी उत्तम जोडी देखकर खूब आनन्दित हुए। राजाने अनेक प्रकार के दास दासी एवं प्रभूत धन संपत्ति देकर अपनी पुत्री के विवाह की चिरकालीन मनोवांछा पूरी की।

इस प्रकार राजा शालिवाहन ने विद्याधर का खूब मान सन्मान कर के उसे वहाँ रहने का आग्रह किया और उसे वहाँ रहने के लिए एक सात मंजिला महल दिया। वह विद्याधर विक्रमादित्य अपनी नव परिणीता पत्नी सुकोमला के साथ आनन्द विलास करते हुए कुछ समय वहीं रहा।

हे सुज्ञ पाठको! विक्रम के लग्न का यह अद्भुत प्रसंग पूर्ण हुआ अब आगे विक्रमादित्य अपनी पत्नी के साथ किस तरह रहता हैं तथा और क्या क्या होता है वह आपको आगे के सर्ग में बताया जायगा।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीविरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
द्वितीयः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानु-
वादः, तस्य च द्वितीयः सर्गः समाप्तः

तृतीय सर्ग

तेरहवाँ प्रकरण

विक्रमका अवन्ती आना तथा कलावतीसे लग्न

इसके बाद कार्य सिद्धि होने पर प्रसन्न विक्रमादित्य भट्टमात्र और अग्निवैताल दोनों को बुलाकर एकान्त में बोलाः—' जो कार्य देवताओं से भी नहीं होसकता था, ऐसा मेरे मनसे चिन्तित कार्य तुम दोनों की सहायता से सिद्ध होगया, क्यों कि—

" जैसा होनेवाला होता है, वैसी ही बुद्धि होती है और वैसी ही मन में भावना होती है तथा सहायक भी वैसे ही मिलते हैं। "[1]

तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ बुद्धि वालों से मन्त्र, बुद्धि तथा भुजाओं का पराक्रम सब कुछ साध्य है। जो धीर है, वही लक्ष्मी तथा शोभा

[1] सा सा सम्पद्यते बुद्धिः सा मतिः सा च भावना।
सहायास्तादृशा ज्ञेया यादृशी भवितव्यता ॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को प्राप्त करता हैं। परन्तु जो डरते है, उन को कुछ भी नहीं मिलता है।

कान जब शस्त्र-प्रहार को सहता है तब सुवर्ण का अलंकार धारण करता है। नेत्र जब शलाका को सहता है तब अञ्जन से शोभा पाता है। इस तरह मैंने तुम लोगों की सहायता से यह कार्य सिद्ध किया है।

भट्टमात्रका अवन्ती गमन

परन्तु अपनी अवन्ती नगरी की रक्षा करने वाला हाल में वहाँ कोइ भी नहीं है। इस समय कोई शत्रु आकर उसको नष्ट—भ्रष्ट करदेगा। इसलिये "हे भट्टमात्र! तुम नगर की रक्षा के लिये शीघ्र यहाँ से जाओ। और हे अग्निवैताल! तुम अदृश्य होकर यहाँ रहो तथा मुझको भोजन दो, जिससे मेरी स्त्री तथा दूसरे लोग ऐसा जानें कि 'यह कोई देव या विद्याधर है, मनुष्य नहीं है; क्यों कि वह कुछ भी खाता नहीं है।' जब मेरी स्त्री सगर्भा होजायेगी तब हम और तुम दोनों अपने नगर को जायेंगे।"

राजा के ऐसा कहने पर भट्टमात्र बहुत वेगसे अवन्तीपुरी के प्रतिगया। विक्रमादित्य और अग्निवैताल वहाँ पर ही रहे। अग्निवैताल हंमेशा एकान्त में राजाको भोजन देकर सदा अदृश्य होजाता था। एक दिन शालिवाहन राजा ने पूछा कि 'वे दोनों देव कहाँ गये?'

विक्रमका दिव्य भोजन

तब विक्रमादित्य रूप देव ने कहा 'वे दोनों कहीं क्रीडा करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चले गये है।' जब राजा शालिवाहन ने विक्रमादित्य को भोजन करने के लिये बुलाया तब विक्रमादित्य ने कहा कि 'हे राजन्! मैं कभी भी अन्न नहीं खाता हूँ किन्तु मनुष्य जो अच्छे फल—फूल आदिका नैवेद्य देते हैं वही मैं ग्रहण करता हूँ।'

तब राजा शालिवाहन उत्तम जातीय अच्छे फल तथा फूल आदि का नैवेद्य देने लगा और विचार करने लगा कि 'यह मेरे जामाता सब लोगों के वन्दनीय है। मैंने ऐसे वर को इस समय अपनी कन्या दी है इस लिये भाग्य से आगे भी मेरी कन्या सुखी रहेगी। क्यों कि —कुल, शील, लोगोंका प्रिय, विद्या, धन, शरीर और अवस्था वर के ये सात गुण देखने चाहियें। इसके बाद कन्या अपने भाग्य के ही अधीन रहती है।

इसके स्वरूप, तेज, वचन, तथा गति से ऐसा स्पष्ट जानपड़ता है कि वह कोई कुलीन राजा अथवा विद्याधर है। यह किसी कारण से अपना कुल तथा नाम कुछ भी प्रकट नहीं करता है। इत्यादि सोचता हुआ राजा शालिवाहन आश्चर्यचकित हुआ। इसकी स्त्री सुकोमला ने जब भोजन करने के लिये पूछा तो विक्रमादित्य ने उसे भी वही उत्तर दिया। तब सुकोमला भी हमेशा उत्तम प्रकार के फल—पुष्पादि का नैवेद्य देती थी। एकदा सुकोमला से माताने पूछाः— "जामाता क्या भोजन करते हैं?"

सुकोमला ने उत्तर दियाः— "वे देव हैं, इस लिये मनुष्य का बनाया हुआ अन्नादि नहीं खाते हैं।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब माता प्रसन्न होकर बोली " हे पुत्रि! तू धन्या है। धर्म से ही तुझे इस प्रकार का दिव्य स्वामी प्राप्त हुआ है। क्यों कि :–

"धर्म, धन चाहने वाले प्राणियों को धन देता है, काम चाहने वाले प्राणियों को काम देता है और परम्परा से मोक्ष को भी देने वाला एक धर्म ही है।"[1]

सुकोमला का गर्भवती होना

छः महीनों के बाद जब विक्रमादित्य को अपनी पत्नी सुकोमला के गर्भवती होने का पता चला, तो एकान्त में अग्निवैताल से बोला:–' क्रमशः प्रपंच करके मैंने पहिले उससे विवाह किया अब धर्म के प्रभाव से मेरी स्त्री गर्भवती हो गई है। कहा है कि–निर्मल धर्म के प्रभाव से अच्छे स्थान में निवास, सब गुणों से युक्त स्त्री, पवित्र बालक, अच्छे मनुष्यों में प्रेम न्याय मार्ग से धन की प्राप्ति, अच्छा हित चिन्तन करने वाला मन, आदि सुख मिलते हैं। परन्तु मुझको ऐसा जान पड़ता है कि हमारे और तुम्हारे अभाव में सम्पूर्ण नगर बुरी अवस्था में है। इसलिये हमको और तुमको शीघ्र ही स्वर्ग समान सुन्दर अपनी अवन्ती नगरी में चलना चाहिये। मेरी पत्नी सुकोमला गर्भवती है तथा अत्यन्त अभिमान वाली है। इसलिये इसका अभिमान तोड़ने के लिए उसे यहीं छोड़ देता हूँ। क्यों कि संसार में

[1]धनदो धनमिच्छूनां, कामदः काममिच्छताम् ।
धर्म एवापवर्गस्य पारम्पर्येण साधकः ॥ २२ ॥

जाति, कुल, रूप, बल, विद्या, तपस्या, लाभ, धन इत्यादिका अभिमान करने से वह हीन हीन होता है।'

विक्रमादित्य का अवन्ती गमन

यह सुनकर अग्निवैताल बोला 'एवमस्तु' अर्थात् ऐसा ही हो।

इसके बाद विक्रमादित्य जिस महल में रहता था, उस महल के प्रवेश द्वार पर उसने स्पष्ट ऐसा लिखा कि× "कमल समूह में क्रीडा करने वाला वीर धर्मराजा, पृथ्वी की रक्षा करने के लिये दंड धारण करने वाला, पुरुष से द्वेष करने वाली काष्ट भक्षण करती हुई तथा चिता में जलने वाली राजकन्या से विवाह करके मैं इस समय अकेला अवन्ती नगर को जाता हूँ।" इस प्रकार लिखकर गाँव के बाहर वाटिका में स्थित श्रीआदिजिन को नमस्कार करके अग्निवैताल के साथ प्रस्थान किया और उज्जयनी आये।

अवन्ती के चोर का वर्णन

इधर विक्रमादित्य का आगमन जानकर तथा उससे मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता से अञ्जलिबद्ध होकर भट्टमात्र राजा के आगे बोलाः— "हे राजन्! मैं आपकी आज्ञा से इस नगर में आया तथा न्यायपूर्वक

× अवन्तीनगरे गोपः परिणीय नृपाङ्गजाम्।
गां पातुं दण्डभृत् पद्मोत्करक्रीडापरोऽनघः ॥ ३० ॥
दृष्टे च पुरुषे द्वेष्यां कुर्वतीं काष्टभक्षणम्।
अहमेकोऽधुना वीरः परिणीय स्यादगाम् ॥ ३१ ॥ (युग्मम्)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैंने सारी प्रजाका पालन किया। परन्तु एक चोर बराबर छल से नगर में चोरी करता रहता है। वह बड़े बड़े सेठों की चार कन्याओं को लेकर चला गया है। यद्यपि मैंने सतत उसके पद तथा स्थान की खोज की लेकिन अभी तक वहाँ जा न सका हूँ कि वह चोर कहाँ और कैसे रहता है। इसलिये मेरे हृदय में अत्यन्त दुःख हो रहा है। क्यों कि धन की इच्छा से जो आतुर है उसका कोई बन्धु तथा मित्र नहीं होता, वह सभी से किसी तरह से धन ही लेना चाहता हैं। काम से जो आतुर है उसको भय तथा लज्जा नहीं होती, वह किसी भी प्रकार वासना शान्त करना चाहता है। चिन्ता से जो व्याकुल है, उसको सुख तथा निद्रा नहीं होती। भूख से जो व्याकुल है उसका शरीर दुर्बल हो जाता है तथा शरीर में कान्ति नहीं रहती।"

ऐसी बात सुनकर राजा बोला "हे मन्त्री! मैं युक्ति से शीघ्र ही उसे पकड कर उस का वध करूँगा, क्यों कि जो कार्य पराक्रम से नहीं हो सकता वह युक्ति से करना चाहिये। जैसे कौओ की स्त्री ने बड़े कीमती सुवर्ण-हारकी मदद से अति भयंकर विषधर सर्प को मार कर अपने बच्चों की रक्षा की। यह सुनकर मन्त्रीने पूछा:— "हे महाराज! यह कैसे हुआ?"

तब राजा विक्रमादित्य कहने लगे:— 'हे भट्टमात्र! सुनो, किसी जंगल में एक वृक्ष पर काक अपनी स्त्री के साथ निवास करता था। कुछ दीन के बाद काक की स्त्री ने बहुतेरे अण्डे दिये। उसी वृक्ष के विवर में एक सर्प रहता था, जो प्रतिदिन उस विवर से निकल कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके अण्डों को खा जाया करता था।

कौवी की युक्ति

काक की स्त्रीने जब देखा कि वह दुष्ट सर्प मेरे सब अंडों को खा जाता है। तो वह बहुत दुःखी हुई। उस सर्प को मारने के लिये उद्योग करने लगी। एक दिन उस काक की स्त्री को सर्प को मारने का उपाय मिल गया। किसी बड़े धनाढ्य शेठ की पुत्री तालाब पर आई और लाख रूपयों के मूल्य का एक बहुत सुन्दर रत्नहार अपने गलेसे निकाल कर किनारे पर रख कर जल में प्रविष्ट होकर अपनी सखियों के साथ स्नान करने लगी। इतने में अवसर पाकर काक की स्त्रीने उस हार को ले लिया और सर्प के बिल में लाकर छोड दिया। इस के बाद उस सेठकी लड़की ने हार को खोजने के लिये उस काक की पीछे भेजा।

वे सब उस सर्प के बिल के पास पहुँच कर तथा बिल में हार को देखकर बिल को खोदने लगे। जैसे ही हार को उठाने लगे कि वह हार छूटकर बिल में नीचे चला गया तब उन लोगों ने समूचे बिल को खोदकर सर्प को मार डाला और वह हार ले लिया। इस प्रकार काक की स्त्रीने उपाय कर के उस सर्प को मारडाला। इस के बाद वह जो अण्डे देती थी वे जीते ही रहते थे। इससे वह जन्म पर्यन्त सुखी रहने लगी।' अतः उपाय करने से सब कार्य सिद्ध होजायेंगे। तुम लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमादित्यका स्वप्न

इस प्रकार अपने मंत्रियों को आश्वासन देकर राजा विक्रमादित्य शयन करने के लिये चला गया। दूसरे दीन किसी नौकर के अकस्मात् बहुत जोरसे बोलने पर राजा विक्रमादित्य की निद्रा भंग होगई। इस पर बहुत क्रुद्ध होकर राजा विक्रमादित्य कहने लगा:—"अरे दुष्ट! मैं कितना अच्छा स्वप्न देख रहा था। तुमने बिना विचारे ही मुझको रात्रि में क्यों जगादिया? मुझको तुम लोगोंने व्यर्थ हीं जगादिया अतः मैं तुम लोगों को दंड दूंगा।"

राजा रूष्ट होने पर मनुष्यों को क्या क्या दुःख नहीं देता है?। क्यों कि सब प्राणि अपने कर्म के अधीन रहते हैं, स्त्री स्वामी के अधीन रहति है, धान्य जल के अधीन कहा गया है और पृथ्वी राजा के अधीन रहती है।

प्रातःकाल जब भट्टमात्र आदि राजा विक्रमादित्य के सब मंत्री वहाँ पर आये और यह मालूम हुआ तो भट्टमात्रने उसे दंड माफ करने की विनती की। तब राजा विक्रमादित्य बोला:—"मैं रात में बहुत अच्छा स्वप्न देख रहा था परन्तु इन दुष्टोंने मुझको जगादिया।"

मंत्रीश्वरने पूछा:—"आप कैसा स्वप्न देख रहे थे?"

राजा कहने लगा:—"स्वप्न में मैंने देखाथा कि पूर्व दिशा के जंगल मे जल से भरा एक गम्भीर कूप है। उसके मध्य में एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत बड़ा सर्प है। उस सर्प के मुख में एक अतीव सुन्दर कन्या है। हम सब भ्रमण करते हुए वहाँ गये तब वह सर्प बोला कि—'तुम मेरे मुख से यह कन्या लेलो। यदि तुम कायर हो, तो यहाँ से शीघ्र दूर चले जाओ।' यह सुनकर जब मैं उस दिव्य रूपवाली कन्या को ग्रहण करने के लिये उद्यत हुआ, उसी समय इन दुष्टों ने आकर मुझे जगादिया।"

यह सुनकर मंत्रीश्वर बोले:—"हे महाराज! यह स्वप्न अवश्य सत्य हो सकता है। स्वप्न शास्त्र में कहा है कि 'संपूर्ण शरीर में श्वेत चन्दन लगायी हुई तथा श्वेत वस्त्र धारण की हुई स्त्री स्वप्न में जिसका आलिङ्गन करे उसकी सब प्रकार से संपत्ति बढ़ती है तथा देवता, गुरु, गाय, बैल, वडील वर्ग, साधुजन, यह सब स्वप्न में मनुष्य को जो कुछ कहते हैं, वह सब वैसे होता है।' इस लिये कोई विद्याधर, देव, किन्नर, अथवा पिशाच प्रसन्न होकर आपको अवश्य ही कन्या देगा। अतः हे राजन! वहाँ शीघ्रता से जाकर उस कन्या को अङ्गीकार करो। क्यों कि मनुष्य का ऐसा स्वप्न देखना दुर्लभ है।"

राजा विक्रमादित्य मंत्रीयों को साथ लेकर शीघ्र ही निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे और स्वप्ने के अनुसार ही सब कुछ देखा। इन लोगों को देखकर वहाँ कुऐ में रहा हुआ सर्प बोला:—"इस में जिसको सबसे अधिक साहस हो, वह मेरे मुख से इस कन्या को शीघ्र ग्रहण करे। यदि भय मालूम हो तो इस कूप से दूर चलाजाय।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्प के मुख से कन्या का छुडाना

ऐसा सुनकर राजा विक्रमादित्यने कूप के बीच में जाकर तथा निर्भय होकर अतीव दिव्य रूपवाली तथा मन को हरण करने वाली उस कंन्या को सर्प के मुख से छुड़ालिया।

इसके बाद वह सर्प दिव्य रूप धारण कर के बोलाः—"वैताढ्य पर्वत के शिखर पर 'श्रीपुर' नाम का एक नगर है। मैं वहीं निवास करता था। मैं 'धीर' नामक विद्याधर हूँ। यह दिव्य रूप वाली 'कलावती' नाम की मेरी कन्या है। यह कन्या सब विद्याओं में पारंगत है। विवाह के योग्य इस को देख कर मैंने इसके सदृश वर को खोजा परन्तु बहुत उद्योग करने पर भी इसके योग्य वर नहीं मिला। हे राजन्! तुम को मैं रूप, विद्या, बल, बुद्धि से श्रेष्ठ तथा सब गुणों से युक्त देख कर यह कन्या देने के लिये यहाँ आया हूँ। मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ राजन् विक्रमादित्य! शीघ्र ही इस कन्या से विवाह करलो।"

कलावती से लग्न

विद्याधर के ऐसा कहने पर राजा विक्रमादित्य ने उस कन्या से विवाह कर लिया। विद्याधर राजा की आज्ञा लेकर अपने स्थान पर चला गया और महाराजा विक्रमादित्य भी उस कन्या को लेकर अपने नगर आये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौदहवाँ प्रकरण

खप्पर चोर

कलावती हरण

एक दिन राजा विक्रमादित्य कलावती के साथ अपने महल में सोये हुए थे। परन्तु रात्रि में कोई चोर आकर कलावती का हरण कर गया। जब विक्रमादित्य की निद्रा भंग हुई तो कलावती को नहीं देखा। जब इधर-उधर बहुत खोज करने पर भी वह न मिली, तब कोई चोर कलावती को हर ले गया, ऐसा समझ कर विक्रमादित्यका मुख अत्यन्त उदास हो गया और वह बहुत चिन्ता करने लगा। प्रातः-काल महल में हाहाकार मच गया। जब मन्त्री लोग राजा के पास आये, तो राजा को बहुत चिन्तित देख कर पूछने लगे कि 'आप इतने उदास क्यों हो गये हैं? कृपा कर हमें बतलाइये।'

तब राजा कहने लगा:—"मेरी प्राणप्रिया कलावती का रात में कोई हरण कर गया है, ऐसा लगता है, क्यों कि मैंने उसे इधर-उधर बहुत खोजा, परन्तु पता न चला। अतः अति चिन्तित हूँ।"

कलावती की खोज

यह बात सुनकर मन्त्री लोग बोले:—"हे महाराज! जो चोर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस नगर में हमेशा चोरी करता है, वही चोर आपकी पत्नी को भी चुरा कर ले गया है, ऐसा प्रतीत होता है।"

यह सुनकर राजा विक्रमादित्य ने मन्त्रीओं को साथ बैठा कर विचार किया और अपनी पत्नी को खोजने के लिए सभी दिशाओं में अपने व्यक्तियों तथा सिपाहियों को भेजा। घोडे सवार, गुप्तचर आदि को भी भेजा। स्वयं राजा की पत्नी का हरण हो जाय, यह गजब की बात है। अतः विक्रमादित्य खूब गुस्से हुआ और नये नये उपाय सोचने लगा।

राजाका नगरमें घूमना

इसके बाद राजा स्वयं तलवार हाथ में लेकर रात में अकेला ही गुप्त वेशमें नगर में चुप चाप घूमने निकल पडा। राजाने यह बात गुप्त रखी, क्यों कि जो बात अपने मनमें रहती है, वही गुप्त रह सकती है। दूसरे या तीसरे आदमी के जान लेने पर 'षट्कर्णो भिद्यते मंत्रः' इस कथनानुसार वह बात गुप्त नहीं रह सकती। इसलिये राजा विक्रमादित्य निर्भय होकर अकेला ही प्रजाकी रक्षा करने के लिये तथा चोर को पकड़ने के लिये रात में जगह जगह गुप्त रूपसे घूमने लगा। 'दुष्ट को दंड देना, अपने कुटुंबियों का सन्मान करना, न्यायपूर्वक प्रजा के ऊपर शासन करके राज्य के खजाने को बढाना, धनवान व्यक्तियों पर धन के लोभ से पक्षपात नहीं करना, ये पाँच कार्य राजाओं के लिये पाँच महा यज्ञ के समान कहे गये हैं।' इस लिये राजा विक्रमादित्य रात भर नगर में गुप्त रूपसे घूमने लगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्रेश्वरी की स्तुति और उसकी प्रसन्नता

वह घूमता हुआ अपने इष्ट देव के मन्दिर में गया और वहाँ जाकर बहुत भक्ति से देवी का ध्यान करता हुआ अच्छे अच्छे स्तोत्रों से उनकी स्तुति करने लगा।

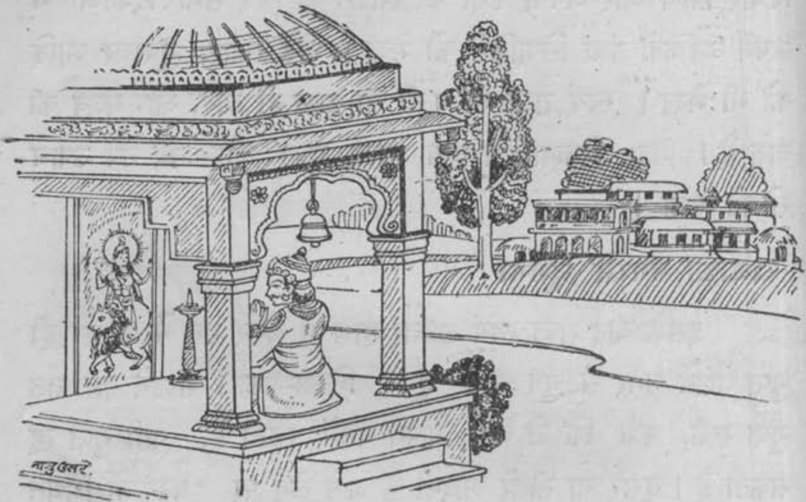

राजा विक्रमादित्य ने अत्यन्त प्रेम से देवी की स्तुति की, जिससे श्रीचक्रेश्वरी देवी प्रसन्न हुई और प्रकट होकर बोली कि—' हे महाराज ! मैं तुम्हारी इस अपूर्व भक्ति से प्रसन्न हूँ। इस लिये तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर मुझ से माँग लो, जिससे देवता का दर्शन सफल हो। क्यों कि जैसे दिन में बिजली का चमकना व्यर्थ नहीं जाता, आँधी या पानी कुछ होता ही है, रात में मेघ का गर्जन करना व्यर्थ नहीं होता, स्त्री तथा बालक का वचन व्यर्थ नहीं होता, इसी प्रकार देवता का दर्शन भी निष्फल नहीं होता। तथा जैसे भोजन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कराने से ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, मयूर मेघका गर्जन सुनकर प्रसन्न होता है, साधुजन दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं, वैसे ही देवता भक्ति से प्रसन्न होते हैं। इसलिये तुम्हारी भक्ति से मैं प्रसन्न होकर तुमको अभीष्ट वरदान देना चाहती हूँ।'

चोरकी कथा

देवी के मुख से यह वचन सुनकर राजा विक्रमादित्य बोला कि– 'हे देवि! जिस चोर ने मेरी स्त्री को चुरा लिया है उसका स्वरूप कैसा है तथा वह कहाँ रहता है? वह स्थान मुझ को बतलाओ।'

तब देवी कहने लगी कि–' हे राजन्! पहले उस चोर की उत्पत्ति के बारे में सुन।

धनेश्वर व गुणसार

इस नगर में पूर्व समय में 'धनेश्वर' नाम का एक सेठ रहता था। बहुत प्रेम करने वाली 'प्रेमवती' नामक अत्यन्त सुन्दर उसकी स्त्री थी। उस के सब गुणों से युक्त 'गुणसार' नामक एक पुत्र था। सुन्दरता से देवताओं की स्त्रियों को भी जीतने वाली तथा सब गुणों से युक्त गुणसार के 'रूपवती' नामक पत्नी थी। इस प्रकार अपने पुण्य के प्रभाव से वह सब प्रकार से सम्पन्न था। जैसा भाग्य होता है, उसी के अनुसार बुद्धि उत्पन्न होती है। कार्य भी सब वैसा ही अनुकूल होता है। सहायता करने वाले भी वैसे ही मिलते हैं।

जो प्राणी अपना कोई स्वार्थ न रख कर धर्म करता है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसको अच्छे स्थान में निवास, सब गुणों से युक्त सुन्दर स्त्री, पवित्र तथा विद्वान पुत्र, सज्जन पुरुषों में अनुराग, न्याय मार्ग से धन की प्राप्ति तथा आत्म कल्याण साधक चित्त की प्राप्ति होती हैं। इस प्रकार वह परिवार के साथ सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।

एक दिन गुणसार के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि विदेश जाकर द्रव्य का उपार्जन करना चाहिये। इसलिये वह अपने पिता से जाकर बोला कि—'हे पिताजी! मैं व्यापार करने की इच्छा से कुछ वस्तुयें लेकर किसी दूर देश में जाना चाहता हूँ।'

गुणसार के मुख से ऐसी बात सुनकर उसके पिता ने कहा—'हे पुत्र! तुम्हारी दूर देश जाने की इच्छा व्यर्थ ही है। क्योंकि अपने घर में धन का कुछ कमीना नहि है। इस से जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो। देशान्तर जाने में बहुत कष्ट होता है। जिस मनुष्य में कष्ट सहन करने की शक्ति अधिक है, वही देशान्तर में निर्वाह कर सकता है। तुम अत्यन्त सुकुमार हो इसलिये अधिक कष्ट नहीं सह सकते हो, अतः देशान्तर जाने का व्यर्थ आग्रह मत करो। जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, जो साहसी है, किसी भी अवस्था में घबराये नहीं और बोलने में भी जो चतुर हो, जिसका शरीर सुदृढ़ हो, जो कष्ट सहन कर सके, उसी को विदेश जाना चाहिये। यह सब विचार करके तुम इस अपने आग्रह को छोड़ दो। अपने घर में ही सुखपूर्वक रहते हुए उसे अलंकृत करो। क्यों कि मेरे नेत्र को आनन्द देने वाले तुम ही एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र हो। तुम्हारे चले जाने से मेरे हृदय में अत्यन्त दुःख होगा।'

इस प्रकार बहुत समझाने पर भी जब उस ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तो लाचार हो कर गुणसार के पिताने उस को धन उपार्जन करने के लिये जाने की अनुमति दे दी।

गुणसार का विदेश गमन

इस के बाद गुणसार ने बहुत सा द्रव्य तथा बेचने के लिये कई प्रकार की वस्तुएं लेकर व्यापार करने के लिये शुभ दिन देख कर अपने पिताको सहर्ष प्रणाम कर तथा उनसे आज्ञा लेकर दूर देशान्तर के लिये प्रस्थान किया।

इधर धनेश्वर के घर के समीप एक बहुत बड़ा वृक्ष था, जिस पर एक पिशाच निवास करता था। वह गुणसार की स्त्री रूपवती की सुन्दरता को देखकर उस पर अत्यन्त मोहित हो गया। क्योंकि कहा भी है:—

"क्या स्वर्ग में कमल के समान—विशाल नेत्र वाली सुन्दरी स्त्री नहीं है? फिर भी देवताओं के राजा इन्द्र ने परम तपस्विनी अहिल्या का सतीत्व नष्ट कर दिया। इस से तो यही सिद्ध होता है कि हृदय रूप तृण के घर में कामदेव रूप अग्नि जब प्रज्वलित होती है, तब पण्डित को भी उचित अनुचित का ज्ञान नहीं रहता है।"+

+किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्यः,
त्रिदशपतिरहल्यां तापसीं यत्सिषेवे।
हृदयतृणकुटीरे दीप्यमाने स्मराग्ना-
वुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि॥ १०१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहा भी है कि देवता लोग सदा विषय में आसक्त रहते हैं, नारकी जीव अनेक प्रकार के दुःख से व्याकुल रहते हैं और पशुओं में तो किञ्चित् मात्र भी विवेक नहीं रहता है। केवल मनुष्य भव में ही धर्म की साधनसामग्री मिलती है। वह तो पिशाच ही ठहरा। उसको दुराचार प्रिय था।

पिशाच का गुणसार का रूप लेना

गुणसार के जाने के बाद पिशाच ने गुणसार के समान अपना रूप बनाया और बहुत सा धन लेकर धनेश्वर शेठ के समीप में आया और उसे पिता कह कर प्रणाम किया। इस को गुणसार समझ कर शेठ बोला कि–'तुम सब चीजें किस के पास छोड़ कर इस समय लौट कर फिर यहाँ आये हो। इस का क्या कारण है, सो कहो?'

धनेश्वर के ऐसा पूछने पर वह कपटी गुणसार बोला कि–'मार्ग में एक सिद्ध ज्ञानी से मेरी मुलाकात हुई। उसने कहा कि यदि तुम विदेश जाओगे तो तुम्हारी मृत्यु अवश्य हो जायगी। इसलिये तुम अपने घर लौट जाओ। यह सुनकर बेचने के लिये जितनी चीजें थीं वे सब मैंने वहीं तुरत बेच दीं और सब द्रव्य मैं अपने साथ ले आया हूँ।'

यह सुनकर उसका पिता बोला:–"हे पुत्र! तुम लौट कर चले आये यह बहुत अच्छा किया। क्योंकि सब गुणों से युक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुल को बढ़ाने वाले तुम अकेले ही मेरे पुत्र हो'।

वह कपटी गुणसार बराबर घर का सब काम करता हुआ धनेश्वर सेठ के मन को बहुत प्रसन्न रख कर अलौकिक सुन्दरता से युक्त उस रूपवती के साथ भोग विलास करता हुआ सुखपूर्वक उसके घर में छल से रहने लगा। कहा भी है कि—"जैसे जल में तेल डालने पर फैलने लगता है, परन्तु घृत डालने से वह जम कर संकुचित हो जाता है। ठीक वैसे ही नीच प्रकृति वाले मूर्ख मनुष्य द्रव्य प्राप्त कर अत्यन्त अभिमान करने लगते हैं, परन्तु जो सत्पुरुष हैं वे किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते जैसा कि पंडितों ने दृष्टान्त देकर बतलाया है कि:—

"जैसे अग्नि से उत्पन्न हुआ धुआँ जब किसी प्रकार मेघपद को प्राप्त करता है, मेघ बन जाता है, तब वह अपनी जनेता अग्नि को ही वर्षा के जल से शान्त कर देता है। उसी प्रकार अधम मनुष्य भाग्य संयोग से प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अपने भाई-बन्धुओं और स्वजन आदि का ही तिरस्कार करता है"। *

सच्चे गुणसार का घर आना

इधर धनेश्वर का सच्चा पुत्र गुणसार जो व्यापार के लिये विदेश

---

*धूमः पयोधरपदं कथमप्यवाप्य,
वर्षाम्बुभिः शमयति ज्वलनस्य तेजः।
दैवादवाप्य ननु नीचजनः प्रतिष्ठां,
प्रायः स्वबन्धुजनमेव तिरस्करोति॥१११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया था, कुछ द्रव्य उपार्जन कर के विदेश से अपने घर आया और अपने पिता के पास जाकर पिता कह कर प्रणाम किया।

तब धनेश्वर अपने मन में विचार करने लगा कि—'यह मेरा पुत्र है, या पहले से जो मेरे पास रहता है वह?' फिर कुछ अपने मन में विचार कर पूछा कि—'आप किस के अतिथि हैं जो यहाँ आये हैं? ।'

यह वचन सुन कर वह सच्चा गुणसार बोला कि 'मैं आप का पुत्र हूँ तथा दूर देश से लौट आया हूँ।'

यह सुनकर कपटी गुणसार बोला कि—'रे पापिष्ठ! धूर्त!२ क्या तू मुझ से कपट करने के लिये ही इस नगर में आया है? क्या इस प्रकार छल कर के मेरा सर्वस्व लेना चाहता है? मैं तुझे सावधान कर देता हूँ। यदि तू फिर भी ऐसा बोलेगा तो यहाँ पर बड़ा अनर्थ हो जायगा। क्या तू मेरा बल नहीं जानता अथवा किसी से सुना नहीं?'

सच्चा गुणसार भी इसी प्रकार उस कपटी गुणसार को फटकारने लगा। वहाँ पर जितने लोग उपस्थित थे सब बड़े संशय में पड़ गये, क्योंकि दोनों का स्वरूप समान था। एक समान ही बोलते थे। दोनों अपने अपने चिह्न भी समान ही बतलाते थे। दोनों एक से ही चलते भी थे। दोनों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं था। इस प्रकार कौन सच्चा गुणसार है और कौन कपटी है, इसका निश्चय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई नहीं कर सका। तब उसका पिता बोला कि—'यहाँ पर तुम दोनों के विवाद का कोई भी समाधान नहीं कर सकता। इसलिये तुम दोनों शीघ्र राजा के पास जाओ। वहाँ पर महा बुद्धिशालि मंत्री लोग तुम दोनों के विवाद का उचित निर्णय करेंगे।'

उनका विवाद तथा सच्चे गुणसार का निर्णय

इसके बाद वे दोनों यह धनेश्वर मेरा पिता है, यह घर मेरा है, सब गुण से युक्त यह कलावती मेरी स्त्री है तथा इतने सुवर्ण, चाँदी, नाना प्रकार के अच्छे अच्छे वस्त्र आदि वैभव भी मेरा है, तू छल कर के ले लेना चाहता है; आदि बोलते हुए दोनों राजा के समीप उपस्थित हुए।

राजा इन दोनों का इस प्रकार वृत्तान्त सुन कर बड़े संशय में पड़ गया। तब परीक्षा करने के लिये मंत्रियों को पास में बुला कर बोला:—" इन दोनों में अभी गृह एवं धन सम्बन्धी विवाद चल रहा है। इसलिये तुम लोग बुद्धि से शीघ्र ही इन के विवाद का फैसला करो। तुम्हारे समान मंत्रियों के रहते हुए इस प्रकार अनर्थ का होना अच्छा नहीं है"। बुद्धिमान् मन्त्री को कार्य में लगाने से राजा को तीन लाभ होते हैं। यथा यश की प्राप्ति, स्वर्ग में निवास तथा पूर्ण धन की प्राप्ति। इसलिये कुलीन, शीलवान्, गुणवान्, सत्यधर्म में सदा तत्पर, रूपवान् तथा बुद्धिमान् व्यक्ति को राजा लोग मंत्री के पद पर नियुक्त करते हैं।

इस प्रकार राजा के कहने पर मंत्री लोग उन दोनों से विवाद के विषय में पूछने लगे। परन्तु बार बार अनेक प्रकार से प्रश्न पूछने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर भी वे दोनों समान ही उत्तर देते थे। इससे मंत्री लोग कुछ भी निश्चय नहीं कर सके। क्योंकि अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त होने पर भी मायाजाल रचने वाले धूर्त लोग उन्हें ठगने में समर्थ होते हैं। जैसे तीन धूर्तों ने ब्राह्मण को ठग कर उससे छाग ले लिया।

इस की कथा इस प्रकार है—' कोई ब्राह्मण यजमान से छाग की याचना करके उसको अपने कन्धे पर रख कर ले जा रहा था। तीन धूर्तों ने सोचा कि—यह ब्राह्मण छाग (बकरा) को ले जायगा और इसे मार डालेगा। इस लिये इसे ठग कर इस से छाग ले लेना चाहिये।

वे तीनों धूर्त मार्ग में अलग अलग जाकर खड़े हो गये। जब ब्राह्मण! छाग लिये हुए वहाँ पहुँचा तब एक धूर्त बोला कि—' अरे! इस कुत्ते को अपने कन्धे पर बैठा कर कहाँ ले जा रहे हो?'

थोड़ा आगे जाने पर दूसरा धूर्त बोला कि—' हे ब्राह्मण! इस शशक को कन्धे पर लाद कर कहाँ ले जा रहे हो?'

कुछ दूरी पर पहुँचने के बाद तीसरा धूर्त बोला कि—' अरे ब्राह्मण राक्षस को अपने कन्धे पर बैठा कर ले जा रहा है, इस से तेरा अवश्य नाश होगा।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब ब्राह्मण ने अपने मन में सोचा कि 'मैं जो कन्धे पर बकरा ले जा रहा हूँ, वह निश्चय ही छाग नहीं है। क्योंकि किसी ने भी छाग नहीं कहा।' ऐसा निश्चय कर के छाग को वहीं छोड़कर ब्राह्मण आगे बढ़ा।

इतने में एक वेश्या वहाँ विवाद के स्थान पर आई, उसको देखकर मंत्री लोग बोले कि अमात्यों को छोड़ कर जो कोई इन दोनों के विवाद का निपटारा करेगा, वह स्त्री हो या पुरुष, उस को राजा बहुत सा धन देकर सत्कार करेगा।

राजा बोला कि–यह ठीक है, 'संसार में बुद्धि किसी के आधीन नहीं है। अधम, मध्यम या उत्तम तीनों प्रकार के मनुष्यों को बुद्धि होती है। इसलिये पुरुष अथवा स्त्री कोई भी इन दोनों के विवाद का निर्णय करें।'

तब वह वेश्या बोली कि 'आप सब लोग देखिये, मैं इसका निर्णय अभी ही करके दिखाती हूँ।'

उस वेश्या ने छिद्र रहित किसी घर में जहाँ प्रवेश करने के लिये केवल एक ही द्वार था, उस घरमें उन दोनों को ले जाकर बोली कि– 'इस में जो द्वार है, उस द्वार के रास्ते से वेग से निकल कर तुम दोनों में से जो पहले आकर मेरा स्पर्श करेगा वही धनेश्वर सेठ के घर का स्वामी होगा।' ऐसा कह कर जब तक वे दोनों उस घर में प्रवेश करते हैं, तब तक उस वेश्या ने उस घर के दरवाजे बंद किये और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोली कि–'आप दोनों में से जो कोई घर में से निकल कर मेरे हाथ का स्पर्श करेगा, वही व्यक्ति सेठ के घर का स्वामी होगा और जो नहीं निकलेगा, वह दण्डित होगा।'

वेश्या के ऐसा कहने पर उस पिशाच रूपी छली गुणसार ने देव माया से उस घर में से निकल कर प्रसन्न चित्त से वेश्या के हाथ का स्पर्श किया। तब उस वेश्या ने भी उसके शरीर पर स्पष्ट जानने योग्य एक चिह्न–निशान कर दिया।

जब दूसरा गुणसार उस घर में नहीं निकल सका तब वह वेश्या बोली कि–'निश्चय ही बन्द घर से निकलने वाला यही व्यक्ति कपटी गुणसार है।' वह समझ गई कि जो मनुष्य होगा, वह इस प्रकार बन्द द्वार से बाहर नहीं निकल सकता। इसलिये जो घर से यत्न बिना ही निकल आया, वही छली है। उसने दोनों को राजा के सामने पेश किया और राजा ने सच्चे गुणसार को घर भेजा तथा कपटी गुणसार को घर से निकलवा दिया।

कपटी गुणसार से रूपवती के गर्भ, रूपवती का बालक को फेंकना व देवी का उठाना

इधर रूपवती के उस कपटी गुणसार से गर्भ रह गया था। उसके अत्यन्त डर जाने से उसका गर्भ पृथ्वी पर गिर गया। मेरी हँसी होगी ऐसा सोच कर रूपवती उस गर्भ को एक खप्पर में रख कर गुप्त रीति से नगर के बाहर उद्यान में रख आई। आकाश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्ग से एक देवी विमान में बैठकर जा रही थी, उसका विमान स्तब्ध होकर रुक गया। तब उस चण्डिका देवी ने सोचा कि कौन मेरे विमान को इतनी दृढता से पकड़ रहा है, जिस से मेरा विमान सहसा अटक गया है। इधर-उधर देखने पर जब नीचे पृथ्वी की तरफ देखा, तो वह देखती है कि एक बालक खप्पर में रखा हुआ है। तब चण्डिका ने जाना कि इसी बालक के प्रभाव से मेरा विमान स्तंभीत हो गया है। यह बालक अतीव बलवान होगा और बालक खप्पर में है, अतः इसका नाम भी 'खप्पर' ही रखा जाये, यह सोच कर वह नीचे उतर आई और उस को चण्डिका देवी ने प्रेम पूर्वक अपने हाथों से उठाया और विमान में ले आई।

देवी का खप्पर को वरदान

इसके बाद उसे देवी अपनी गुफा में ले आई और पुत्र के समान लालन-पालन करने लगी। जब वह खप्पर आठ वर्ष का हुआ, तब चण्डिका देवी ने उसको बड़े बड़े महात्माओं के लिये भी अप्राप्य हो वैसे वरदान दिये। चण्डिका देवी ने कहा कि-'तुम्हारी मृत्यु इसी गुफा में होगी। इस गुफा के बाहर कोई देवता भी तुमको नहीं मार सकेगा। यह खड्ग लो। इसके प्रभाव से तुम को कोई भी नहीं जीत सकेगा। गुफा के बाहर तुम अदृश्य होकर रह सकोगे और जब इस गुफा में आओगे तब ही तुम्हारा शरीर दृश्य होगा।

चण्डिका देवी से वह इतना वर प्राप्त करके सब जगह निर्भय होकर घूमने लगा। अब वह द्रव्य या स्त्रियों का अपहरण आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने में जरा भी नहीं डरता है। तुम्हारी स्त्री कलावती भी इस समय उस की गुफा में ही है। उसका पातिव्रत्य धर्म अभी तक खण्डित नहीं हुआ है। खप्पर चोर ने चण्डिका देवी का वरदान प्राप्त कर के पृथ्वी में अनायास ही बहुत सी सुरंगें बना ली हैं। वह नवीन नवीन रूप धारण करके तुम्हारा सेवक बना रहता है और नगर में बार बार चोरी करके अपने स्थान पर चला जाता है। इसलिये बड़ी कठिनता से तुम उसका नाश कर सकोगे। वह देवता या दानव किसी से भी नहीं पकड़ा जा सकता है। यदि उसकी गुफा में जाकर उससे मिल कर तुम उसको क्षमा करोगे तो तुम अपनी मृत्यु को ही बुलाओगे। इसलिये बाहर रहते हुए ही तुम उसको क्षमा करना, गुफा में नहीं। यदि वह चोर तुम को जान जायगा तो बहुत कष्ट देगा। जिसके हाथ में क्षमा रूपी तलवार है, उसका दुर्जन रुष्ट होकर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जैसे जहाँ पर तृण—घास नहीं हैं, वहाँ यदि अग्नि गिरेगी तो वह स्वयं ही शान्त हो जायगी।

इन्द्रियों को अपने वश में नहीं रखना वही आपत्ति का मार्ग कहा गया है, इन्द्रियों को अपने वश में रखना सम्पत्ति का मार्ग है। जिससे हित साधन हो उसी प्रकार चलना चाहिये। जो हाथ, पैर और जिह्वा पर नियंत्रण—अंकुश रखता है तथा जिसकी इन्द्रियाँ अच्छी तरह गुप्त हैं, दुर्जन लोग रुष्ट होकर भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

विक्रम का संतोष

राजा विक्रमादित्य देवी के मुख से यह सब बात सुन कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवी के चरणकमलों में प्रणाम कर के अपने घर में आकर सो गया। क्योंकि जैसे पूर्ण चन्द्र को देखकर समुद्र बहुत प्रसन्न होता है। ठीक उसी प्रकार देवता, दानव, राजा तथा अन्य मनुष्य भी अपने कार्य के सिद्ध हो जाने पर बड़े प्रसन्न होते हैं।

प्रातःकाल शयन से उठ कर राजा विक्रमादित्य ने अपने मंत्रियों को बुला कर कहा कि–'मेरा जो मनोरथ था वह सिद्ध हो गया है। और मैं अपने शत्रु की स्थिति को आज जान गया हूँ।'

पंद्रहवाँ प्रकरण

खप्पर की मृत्यु

विक्रम का नगर में घूमना व खप्पर से भेंट

तत्पश्चात् हमेशा रात्रि में राजा विक्रम अकेला ही तलवार लेकर तथा विविध रूप बनाकर नगर में घूमता था। एक रात्रि में पुराने वस्त्र धारण कर निर्भय होकर भ्रमण करता हुआ नगर बाहर उसी देवी के मन्दिर में गया और वहाँ चक्रेश्वरी देवी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को प्रणामकर के अनेक अच्छी अच्छी स्तुतियाँ कीं। इसके बाद पञ्चनमस्कार का जप करता हुआ देवी के आगे बैठ गया।

इधर वह खप्पर चोर जिन कन्याओं को चुराकर लाया था, उन के आगे बोला कि 'मैं अवन्ती के राजा विक्रमादित्य को छल से मार कर अवन्ति का राज्य प्राप्त करूँगा। और तब बड़े उत्सव के साथ तुम बड़े बड़े धनिकों की लड़कियों के साथ विवाह करूँगा। ऐसी प्रतिज्ञा मैंने की है।'

खप्पर के साथ गुफा में जाना

इस के बाद वह खप्पर चोर नगर में चोरी करने के लिये गया। मार्ग में जाते हुए एक साधु को बैठे देख कर उस को प्रणाम किया और पूछा कि 'हे साधु! विक्रम मुझ को आज मिलेगा या नहीं?।'

ऐसा पूछने पर वह साधु उस से बोला कि 'तुम को आज विक्रम अवश्य मिलेगा।' इस के बाद वह चक्रेश्वरी देवी के मन्दिर में गया। वहाँ पर उस जीर्ण वस्त्रधारी मनुष्य को बैठा हुआ देख कर उस से पूछा कि 'तुम कहाँ से आये हो?। तुम्हारा क्या नाम है? तथा किस प्रयोजन से आये हो? यह सब बात मुझे बतलाओ।'

राजा इसका आकार, बोल-चाल, समय आदि कारणों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से 'यह हीं चोर है' ऐसा समझा। क्योंकि–किसी का स्वरूप देखने से ही उस के कुल का पता लग जाता है, भाषण से देश जाना जाता है तथा व्यग्रता के तारतम्य से स्नेह का ज्ञान होता है और शरीर के देखने से भोजन के विषय में जना जाता है।

उसे चोर समझ कर वह राजा उस चोर के विषय में अच्छी तरह से जानने के लिये छल से बोला कि–'मैं तैलंग देश से बहुत कष्ट पाता हुआ इस देश में घूमता हुआ आया हूँ और भूख से व्याकुल हो कर विश्राम करने के लिये यहाँ पड़ा हूँ।'

ऐसा सुन कर उस चोर ने अपने मन में विचार किया कि –'इस परदेशी को मैं अपना मित्र बनाकर अपना अभिलषित काम करूँ।'

कहा भी है:—

"एकान्त में एकाकी होकर ध्यान, दो मिलकर पढ़ना, तीन व्यक्तियों का मिलकर गाना, चार व्यक्तियों से मार्ग में गमन करना, पाँच या सात मिलकर के कृषि–खेती (कास्तकारी) तथा बहुत मनुष्यों को मिलाकर के युद्ध किया जा सकता है!" ×

× एको ध्यानमुभौ पाठं त्रिभिर्गीतं चतुः पथम्।
पञ्च सप्त कृषिं कुर्यात् संग्रामं बहुभिर्जनैः ॥ १८२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतः वह चोर बोला कि ' हे परदेशी ! तुम मेरे साथ चलो। जब में नगर के भीतर जाउँगा तब तुम को शीघ्र ही भोजन दूँगा। क्यों कि इसी नगर में मैंने भडभूँजे की स्त्री को अपनी बहिन बना रखी है। वहाँ पर हम दोनों को सुख पूर्वक भोजन मिलजायगा।' तब वे दोनों साथ साथ भडभुँजे के घर पर गये और उस परदेशी को भोजन दिलाया। बादमें शहर में किसी सेठ के यहाँ चोरी कर के आये और कलाल के घर से शराब के भरे हुए दो घड़े लेकर कावड के दोनों तरफ बाँध कर उस परदेशी के कंधे पर रख कर वहाँ से चले गये। इस समय राजा विक्रमादित्य ने अपने साथ रहने के लिये अग्निवैताल का स्मरण किया जो वहाँ उपस्थित हुआ और गुप्त रीति से राजा के समीप में रहने लगा।

एकान्त में अग्निवैताल ने राजा से कहा कि 'मद्य पीने की मेरी इच्छा है' तब विक्रमादित्य बोला कि 'कुछ समय ठहरो मैं तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करुँगा' इस के बाद मार्ग में जाते हुए विक्रमादित्य ने चोर से कहा 'कि 'मद्य पान करने की मेरी इच्छा है।'

ऐसा सुनकर वह चोर बोला कि–'अरे सर्व भक्षक ! बहुत सा भोजन खाने से भी तेरा पेट नहीं भरा ?।'

इस प्रकार चोर के बोलने पर जब विक्रमादित्यने मद्यका एक घडा हाथ में लिया, तो दूसरा घडा कावडमें से नीचे गिर पडा। चोरने जब एक घडे को फूटा हुआ और दूसरा घडा विक्रमादित्य को हाथ में लिये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए देखा तो वह उसे मारने के लिये दौडा। परन्तु विक्रमादित्य अपनी चालाकी से भाग गया। और चोर उस के पीछे पीछे दौड़ने लगा।

जब विक्रमादित्य ने देखा कि वह चोर मेरे पीछे दौड़ रहा है तब वह कृष्ण नाम के किसी ब्राह्मण के घर में प्रवेश कर गया। उसी समय उस ब्राह्मण की गाय को प्रसव हुआ और बीमार पड गई। गाय कदाचित् मर न जाय इस डर से राजा विक्रमादित्य पीपल के वृक्ष पर चढगया।

उसी समय ऊपर से राजा की तरफ एक बड़ा विषधर काला नाग आ रहा था। उधर चोर भी उस परदेशी को मारने के लिये घर के बाहर तैयार खडा था।

इतने में वह ब्राह्मण जग गया और घर बाहर आया। तब आकाश में मृगशिरा नक्षत्र के वामभाग में मंगल को देखकर अपनी पत्नी से बोला कि 'हे पत्नी! उठो! उठो!!। शीघ्रता से दीपक जलाओ। क्यों कि राजा अभी मृत्यु के समान त्रिदोष में पड़ गया है। उसकी शान्ति के लिये मैं शीघ्र ही होम, मन्त्र, तन्त्र आदि क्रिया करूँगा। जिस से शीघ्र ही राजा का कल्याण होगा। क्यों कि पञ्चतारा ग्रहके दक्षिण में चंद्रमा हो, तो बड़ा उपद्रव होता हैं, मंगल हो, तो राजा की मृत्यु होती है, शुक्र हो तो लोगों का क्षय होता है, बुध हो तो रस का क्षय होता है, बृहस्पति हो तो जल का क्षय

१०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है, शनि हो तो उस वर्ष में अनेक प्रकारके उपद्रव होते हैं। रोहिणी के रथके मध्यसे पाटता हुआ चन्द्रमा चले तो अत्यन्त क्लेश समझना चाहिये। उस में भी चन्द्र यदि क्रूर ग्रह के साथ में हो तो और भी महा अनर्थ होता है।' +

खप्पर की श्रेष्ठि कन्याओं से बात दोनों की लड़ाई

अतः ब्राह्मण ने स्वयं दीप जलाया और होमादि क्रिया को सम्पन्न किया।

बादमें जब तक उस ब्राह्मणने गाय को बाँधा तब तक वह चोर कहीं भाग गया। ब्राह्मण ने भी अपने स्थान में जाकर शयन किया और सर्प भी वहाँ से चला गया।

तब राजा भी वहाँ से निकल कर राजमार्ग पर चलने लगा। उसने अपने मनमें विचार किया कि—' जब तक चुप—चाप मैं इसका सब कुछ सहन नहीं करूँगा, तब तक इस बलवान् चोरका निग्रह नहीं कर सकूँगा। इसलिये अब से मुझ को चाहिये कि मैं बराबर उस चोर की विनय करता रहूँ। जिससे वह चोर हाथ में आ जाय।

+पञ्चतारा ग्रहा यत्र सोमं कुर्वन्ति दक्षिणे।
भौमे च राजमारी स्यात् जनमारी च भार्गवे ॥ १९९ ॥
बुधे रसक्षयं कुर्यात् गुरौ कुर्यात् तिरोदकम्।
शनौ वर्षक्षयं कुर्यात् मासे मासे निरीक्षयेत् ॥ २०० ॥
रोहिण्या यदि शकटेन चन्द्रो गच्छति पाटयन्।
तदा दुःस्थं विजानीयात् क्रूरयुक्तो विशेषतः ॥ २०१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर चोर अपने मनमें विचार कर रहा था कि क्या मुनि का वाक्य असत्य ठहरा, जो विक्रमादित्य आज नहीं मिला। तब तक विक्रमादित्य उस चोर से पुनः मिला और बोला कि 'हे मामा! मैं तुम्हारे कान्दविकी के बहिन का लड़का हूँ। माता से अपमानित होने के कारण मैं रोष से इस नगर में भ्रमण कर रहा हूँ। मेरा नाम विक्रम है।

तब चोर बोला कि हे–' भागिनेय! इस समय तुम मेरे साथ साथ चलो। मैं तुम को अच्छा अन्नपान देकर सुखी बना दूँगा। माता पिता तब तक ही अपने लड़के और लड़कियों का आदर करते हैं, जब तक वह उनका थोड़ा वचन भी मानता है। यदि पुत्र अपने माता पिता की अभिलाषा को पूर्ण नहीं करते हैं, तो वे उसको कष्ट देते हैं। प्राणियों के लिये तब तक ही माता पिता, परिवार बान्धव ये सब अपने रहते हैं, जब तक उन में परस्पर प्रेम रहता है। कोई दूसरा मुझ को सुख या दुःख दे रहा है, ऐसा नहीं समझना चाहिये, क्योंकि सुख या दुःख का देने वाला कोई दूसरा नहीं है। मैं करता हूँ ऐसा समझना भी व्यर्थ का अभिमान है। क्योंकि सब अपने भाग्य के अनुसार ही होता है तथा उसी के अनुसार फल भी पाता है। इसलिये तुम अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।'

फिर राजा भी अपने मन में सोचने लगा कि यह बलवान् चोर देवी का वरदान प्राप्त कर के छल से समस्त नगर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में चोरी करता है। इसलिये यह जो कुछ प्रतिकूल कार्य करेगा, वह सब मैं सहता जाऊँगा। जैसे सुवर्ण वेध और आघात को सहता है, तब कर्ण का आभूषण होता है, उसी प्रकार बिना कष्ट सहे गौरव प्राप्त नहीं होता। उस चोर ने मार्ग में राजा के साथ जाते हुए उसी साधु को देखकर प्रणाम किया और वह बोला कि–'हे साधु आपने जो कहा था कि विक्रम मिलेगा, वह नहीं मिला।'

इस पर साधुने सोचा कि यदि मैं सच कहता हूँ कि यही राजा विक्रमादित्य है, तो लोगों का तथा इसका बड़ा अनिष्ट होगा। इसलिये इस को स्पष्ट नहीं कहना चाहिये। ऐसा सोच कर साधु ने उत्तर दिया कि मैंने तुम से कहा था कि तुम को विक्रम मिलेगा। सो तुम को तन्नामक व्यक्ति मिल गया है।

जब वह चोर अपने स्थान पर पहुँचा और गुफा में जाते विक्रम से बोला कि 'भोजन तैयार हो रहा है, तब तक तुम इस मण्डप में बैठो।' विक्रम से ऐसा कह कर वह अपनी गुफा में जाकर कन्याओं से बोला कि–'हे श्रेष्ठि कन्याओ! आज तुम लोग मेरी बात सुनो। मैं अपने भागिनेय की सहायता से राजा विक्रमादित्य को मार कर और उसका राज्य लेकर तुम लोगों से बड़े उत्सव के साथ विवाह करूँगा। हमारे पास में सात कोटि सुवर्ण है। सवालाख मूल्य के कई रत्न हैं। लक्ष मूल्य के कई अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र हैं। मुक्ता से भरी हुई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो मञ्जूषायें हैं और चौदह कोटि नकद द्रव्य है। इस के साथ राज्यलक्ष्मी मिलने से तो आनन्द की सीमा ही न रहेगी।'

यह सुन कर मण्डप में छूप कर गुफा में आकर राजा विक्रमादित्य अपने हाथ में तलवार लेकर उस चोर से बोला:—'रे पापिष्ठ ! अब शीघ्र ही तू अपने हाथ में तलवार धारण कर। तुने पर—स्त्री हरण तथा चोरी आदि दुराचार किये हैं, उन सब पापों का दण्ड देना चाहता हूँ। इस तलवार से तुम्हारा शिर काट कर के मैं आज ही उन पापों का फेसला देता हूँ।' सबुर !

राजा की यह बात सुनकर वह चोर हक्का—बक्का हो गया। जब तक तलवार लेकर वह अपनी शय्या से उठा तब तक उस से युद्ध करने के लिये अत्यन्त क्रोध कर के राजा उसके सम्मुख आया। चोर अपने मन में सोचने लगा कि हाय ! मैं ही अपनी मूर्ख बुद्धि से इसको अपने घर में ले आया। अब यह इस समय क्या करेगा और क्या नहीं ? जिसका निवारण नहीं हो सकता, ऐसे क्रोध से रक्त बाघ को मैंने अपने हाथ से पकड़ लिया। मैंने सुख पाने के लिये अपने ही हाथों कौतुचिका (कवाछ) को लगा लिया।

इधर राजा ने भी अपने मन—में विचार किया कि यह वही अत्यन्त बलवान् खप्पर नाम का चोर है, जिसका वर्णन देवी ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरे सामने किया था। इस दुष्ट बुद्धि चोर को मारने का यही अवसर है यदि यह किसी प्रकार भी गुफा से निकल जायगा, तो देव–दानव सब के लिये अजेय बन जायेगा। इसलिये किसी भी तरह से चोरों के प्रमुख इस खप्पर को शीघ्र ही मार डालना चाहिये। इस तरह दोनों आपस में लड़ने को उद्यत हो गये।

राजा विक्रमादित्य और खप्पर चोर दोनों परस्पर निर्दय होकर प्रहार करने लगे। लड़ते लड़ते राजा विक्रमादित्य ने अपनी तलवार से चोर की तलवार का बड़ी शीघ्रता से टुकडे कर डाला। फिर वह चोर युद्ध करने के लिये देवी की दी हुई अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार गुफा के अन्य खंड में से लेकर आया।

विक्रमादित्य ने यमराज के समान उस चोर को जाते हुए देख कर अग्निवैताल का स्मरण किया। स्मरण करते ही अग्निवैताल विक्रमादित्य के समीप उपस्थित हुआ। ठीक ही कहा है कि जो प्राणी पूर्व जन्म में बहुत अच्छे पुण्य कार्य कर चुके हैं, उन के स्मरण करते ही देवता लोग उसी क्षण उपस्थित हो जाते हैं। जब खप्पर वह तलवार उठा कर राजा–विक्रमादित्य को मारने के लिये दौड़ा वैसे ही अग्निवैताल ने चोर के हाथ से तलवार छीन कर राजा को दे दी। तब क्रोध से लाल लाल आँखे वाला वह चोर भृकुटी टेढ़ी करके अपने चरण के आघात से पृथ्वी को भी कम्पित करने लगा। फिर विक्रमादित्य बोला:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"रे दुष्ट चोर! इसी तलवार से मैं इसी समय तेरी अवन्तीपुर की–राजधानी पाने की इच्छा पूर्ण कर देता हूँ।"

यह सुनते ही वह–चोर डरकर शीघ्रता से गुफा में अन्यत्र जाकर छिप गया और सोचने–लगा कि हाय, मैं स्वयं ही अपने वध के

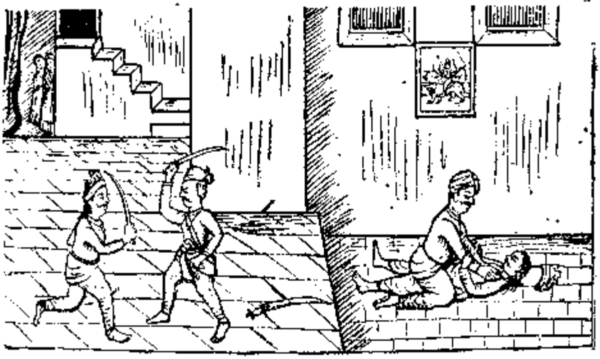

लिये इसको यहाँ बुला कर ले आया। अथवा किसी पुरुष या देव–दानव ने ही इस दुरात्मा को मेरे वध का उपाय बतला दिया है। उसको गुफा में छिपा हुआ जान कर विक्रमादित्य ने अग्नि-वैताल से कहा कि उस चोर को गुफा में से खोज कर शीघ्र ही मेरे सामने ले आओ। जिससे उस दुरात्मा को मैं अपनी तलवार के प्रहार से शिक्षा दूँ। तब अग्निवैताल ने गुफा के भीतर गुप्त स्थान में छिपे हुए खप्पर को बाहर निकाल कर राजा के आगे लाकर रख दिया।

खप्परकी मृत्यु व राजा की विजय

उस चोर को अच्छी तरह से देख कर राजा ने अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन में विचार किया कि–इस ने अनेक प्रकार से हमारी हानि की है। इस की अतुल धन राशि से इस नगर के कितने ही वणिकपुत्रों का अच्छा व्यवसाय चल सकता है। अपने मनमें ऐसा सोचकर विक्रमादित्य ने उस चोर से कहा कि 'तू! मेरे साथ युद्ध कर।' जो वीर होते हैं वे ललकारने पर शीघ्र ही तैयार हो जाते हैं। अतः विक्रमादित्य की ललकार से उत्साहित हुआ वह चोर एक उखड़े हुए वृक्ष को ही शस्त्र बना कर विक्रमादित्य को मारने के लिये दौड़ा। जब तक वह चोर उस वृक्ष से विक्रमादित्य पर प्रहार करे, तब तक बीच में ही स्फूर्ति से विक्रमादित्य ने तलवार से चोर पर जोर से प्रहार किया। तलवार के प्रहार से खप्पर पृथ्वी पर गिर पड़ा। और विचार करने लगा की एक मामुली मनुष्यने मेरा घात कीया विक्रमादित्य उसको खिन्न देख कर आश्वासन देने के लिये बोले कि 'मैं स्वयं ही अवन्ती नगर का राजा विक्रमादित्य हूँ! मेरे साथ युद्ध करके तुझ को खेद नहीं करना चाहिये। जो वीर हैं, वे वीरों के साथ युद्ध करते हुए यदि युद्ध क्षेत्र में मारे जाते हैं, तो कभी खेद नहीं करते। महात्माओं की भी यही मर्यादा है।'

इस प्रकार राजा विक्रमादित्य से आश्वासन पाने पर खप्पर चोर प्राण त्याग कर परलोक गया। क्योंकि मनुष्य का जब तक पूर्वोपार्जित पुण्य रहता है, तब तक ही चन्द्र बल, तारा बल ग्रह बल, या पृथ्वी बल, सहायक होता है, तब तक ही उसका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनोरथ सिद्ध होता है। सज्जनता भी उस में तब तक ही रहती है।

मन्त्र—तन्त्र का सामर्थ्य या अपना सामर्थ्य भी तभी तक ही काम करता है। पुण्य के नष्ट हो जाने से यह सब रहते हुए भी प्राणी आपत्ति से उद्धार नहीं प्राप्त कर सकता। जिसने पूर्व में पुण्य का उपार्जन किया है, वह कितने ही सघन वन में हो या युद्ध क्षेत्र में हो, शत्रुसे घिरा हुआ हो या जल में डूबा हुआ हो, अग्नि में हो, पर्वत के शिखर पर हो या गुप्त हो अथवा कितने ही कठिन संकट में पड़ गया हो, सब जगह धर्म उसकी रक्षा करता है। वैसे ही भाग्य के अनुकूल रहने पर प्राणी को व्यवसाय भी फलित होता है। भाग्य यदि प्रतिकूल हो, तो उद्योग कर के भी प्राणी संकट से त्राण नहीं पाता। जैसे:—

किसी वन में एक मृग विचरण कर रहा था। एक व्याध ने मार्ग में पाश लगा दिया। तथा मृग को खाई में गिराने के लिये खाई के ऊपर घास तथा पत्तों को रख दिया। अकस्मात वह मृग उस पाश में फँस गया। इधर वन में तब तक चारों तरफ से दावाग्नि लग गयी, जिससे अत्यन्त ज्वाला उठने लगी। फिर भी मृग ने अपने सामर्थ्य से पाश को तोड़ दिया और किसी प्रकार खाई में गिरने से बच गया। वह उस अग्नि ज्वाला से भी बच कर वन से दूर निकल गया। तथा कूद कूद कर व्याध के बाणों से भी बच गया परन्तु कोइ एक दौड़ते कूप में गिर गया। इस लिये ऐसा मानना पड़ता है कि भाग्य के अच्छा रहने पर ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राणी को अपना सामर्थ्य या प्रयत्न काम देता है।+

एक मत्स्य किसी धीवर के हाथ में पड़ गया। वहाँ से छूटा, तो जाल में फँस गया। किसी प्रकार उस से भी निकला तो अन्त में उसको एक बक निगल खा गया। भाग्य के प्रतिकूल रहने से इसी प्रकार प्राणी लाख उद्यम करके भी अन्त में नष्ट ही होता है।

दूसरे की स्त्री को हरण करने वाला तथा चोरी इत्यादि महापाप करने वाला वह चोर अपने दुष्कर्म का फल प्राप्त कर अनन्त दुःख वाले नरक को प्राप्त हुआ पूर्वोपार्जित पुण्य के क्षय होने पर देवी का वरदान या अपना सामर्थ्य कुछ भी उसके काम न आया। इसलिये किसी की चोरी आदि दुष्कर्म नहीं करना चाहिये। चोरी रूपी पाप के वृक्ष का फल इस संसार में वध, बन्धन आदि मिलता है और परलोक में नरक का दुःसह कष्ट भोगना पड़ता है। जो मनुष्य चोरी करता है, उसे बाण से बिंधे हुए व्यक्ति की तरह दिन में या रात्रि में, सुप्त हो अथवा जाग्रत, किसी भी समय में सुख नहीं मिलता उसका विचार शील मित्र, पुत्र, स्त्री, पिता, भाई आदि कोई भी प्रेम नहीं रखता है। म्लेच्छ के समान ही सब कोई उस का बहिष्कार कर देते हैं।

+छित्त्वा पाशमपास्य कूटरचनां, भङ्क्त्वा बलाद् वागुराम्।
पर्यन्ताग्निशिखाकलापजटिलाद् निर्गत्य दूरं वनाद् ॥
व्याधानां शरगोचरादतिजवेनोत्प्लुत्य धावन् मृगः।
कूपान्तः पतितः करोति विधुरे किं वा विधौ पौरुषम् ॥२५७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये जो अपना हित चाहता है उस को इन सब दुष्कर्मों में कभी भी नहीं फँसना चाहिये। इन सब दुष्कर्मों के कारण ही विक्रमादित्य द्वारा खप्पर का विनाश हुआ।

नगरजनों की वस्तुओं का उन्हें सौंपना

जब वह चोर इस प्रकार से मारा गया, तब विक्रमादित्य ने प्रसन्न होकर जिन जिन शेठों का द्रव्य, कन्या आदि वह चोर चुरा कर ले आया था, उन सब को अपनी अपनी वस्तु लेनेके लिये नगर से बुलाया। वे श्रेष्ठी लोग आकर अपनी अपनी वस्तु लेकर सब मनोरथ के पूर्ण हो जाने के कारण अत्यन्त प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर गये। श्रीदत्त आदि चारों शेठ अपनी अपनी कन्याओं को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा अपने अपने घर गये।

कलावतीकी प्राप्ति

राजा विक्रमादित्य ने भी उस कृष्ण नामक ब्राह्मण को सुवर्ण से सम्पुटित पत्र देकर अपनी स्त्री कलावती को ग्रहण किया। फिर वे मन्त्रीवरों द्वारा लाये हुए बड़े मदोन्मत्त हस्ती पर चढ़ कर भट्टमात्र आदि मन्त्रियों के साथ बड़े उत्सव के साथ अपने स्थान पर गये।

जहाँ स्तुति पाठ करने वाले चारणों को सदैव सुवर्ण दिया जाता है, जहाँ सतत मनोहर गीत ध्वनि होती है, जहाँ गाने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले बराबर रुपये लूटते हैं, जहाँ नर्तक लोग सतत नृत्योत्सव करते रहते हैं तथा जहाँ सतत मंगलकारक भेरी, दुन्दुभि आदि वाद्य बजते हैं और जिसके उचे उचे शिखरों ने पूर्व राजाओं के महलों व शिखरों को जीत लिया है ऐसे महल में राजा विक्रमादित्य आनन्द से रहने लगे। तत्पश्चात् सब नगर निवासी लोग सुखपूर्वक रहने लगे। राजा विक्रमादित्य भी रामचन्द्र के समान न्याय मार्ग से अपनी प्रजा का पालन करने लगे।

राजा यदि धर्म में तत्पर रहता हैं तो प्रजा भी धर्म कार्य करती है और राजा यदि पापी होता है तो प्रजा भी घोर पाप कर्म करने लगती है।×

प्रजाजन राजा का ही अनुकरण करते हैं। राजा की जैसी प्रवृति है प्रजा भी वैसी ही हो जाती है।

पाठक गण! राजा विक्रमादित्य अपने चातुर्य से किस प्रकार सुकोमला के साथ सुख भोग कर तथा उसको गर्भवती जानकर ड़ कर अपने नगर में आये, किस प्रकार खप्पर नामक चोर का विनाश किया सब बातें समयोपयोगी उपदेशों के साथ आप लग को इस तीसरे सर्ग में बताई गई हैं। अब आप लोगों के मनोरञ्जन के लिये आगे के प्रकरण में सुकोमला का तथा

×राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते, यथा राजा तथा प्रजाः॥ २७१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस के गर्भ से उत्पन्न बालक का वीरता पूर्ण अत्यन्त रोमाञ्चक तथा साहसिक घटनाओं से परिपूर्ण अद्भुत वृत्तान्त आप के समक्ष वर्णन किया जायगा।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
तृतीयः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानु-
वादः, तस्य च तृतीयः सर्गः समाप्तः

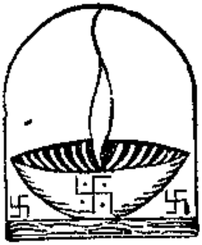

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ सर्ग

सोलहवाँ प्रकरण

देवकुमार

सुकोमला का विलाप

जब विक्रमादित्य सुकोमला को छोड़ कर चले आये, तब अपने पति को गया हुआ समझ कर वह बहुत करुणा से रुदन करने लगी, उसकी माता ने जब रोने का कारण पूछा तो वह बोली:— ' वह देव जो मेरा स्वामी था, मुझको छोड़ कर चला गया है।"

उसकी माता बोली:—" वह देव क्रीडा करने के लिये कहीं चला गया होगा, क्योंकि देव तो सरोवर, कूप, उद्यान इत्यादि स्थानों में कौतूहल से सदा क्रीडा करते हैं।" अपनी पुत्री सुकोमला को रोते देखकर जब उसके पिता ने पूछा तब भी सुकोमला ने वही उत्तर दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माता-पिता का आश्वासन

अपनी पुत्री को आश्वासन देने के लिये उस के माता–पिता बोले कि 'यदि तुम्हारा पति दूर भी चला गया होगा, तो भी वह शीघ्र ही आ जायगा। यदि तेरे पति नहीं मिले तो तू यहाँ रह कर धर्म ध्यान कर और उस में मन लगा। क्योंकि–

"जिनेश्वर की भक्ति से तथा उन की पूजा करने से जितने उपद्रव हों वे सब स्वयं नष्ट हो जाते हैं। जितनी मन की व्यथाऐं और विघ्न लताऐं हैं, वे सब कट जाती हैं। मन सदैव प्रसन्न रहता है। किसी प्रकार का दुःख मन में नहीं होता।"[1] क्योंकि––

"जिसका पिता योगाभ्यास है अर्थात् पिता के समान ही जो योगाभ्यास की सेवा करता है, विषय वासना से विरक्ति ही जिस की माता है अर्थात् माता के समान ही जो विषय विरक्ति में आदर रखता है, विवेक जिसका सहोदर है अर्थात् भाई के समान ही जो विवेक को अपना सहायक मानता है, यानी विवेक पूर्वक ही सब कार्य करता है तथा प्रति दिन किसी विषय की अनिच्छा ही जिस की बहिन है, प्राण प्रिया स्त्री के समान जिस क्षमाकी है, विनय जिस को पुत्र के समान है, उपकार करना ही जिसका प्रिय मित्र है, वैराग्य जिस का सहायक है और जिस के लिये उपशम–शान्ति ही अपना घर है

---

[1]उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥ ६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् शान्ति को ही जो अपना आश्रय-स्थान मानता है, वही सुखी है।"[1]

इसलिये तुम भी इसी प्रकार समझती हुई यहाँ पर सुख से रहो। गर्भ रूप एक सहायक देकर पति चला गया है मानों। इसलिये अब मन में कुछ भी खेद मत करो। यदि पुण्य के प्रभाव से पूर्ण मास होने पर बालक हुआ तो मैं आदर पूर्वक उस बालक को एक समृद्ध देश समर्पित कर दूँगा। यदि कन्या उत्पन्न हुई तो किसी अच्छे राजा के साथ उसका प्रेम पूर्वक पाणिग्रहण करा दूँगा।

इस प्रकार अपने माता पिता की बात सुन कर सुकोमला का चित्त स्थिर हुआ धर्म-कार्य में तथा ध्यान में अपना मन लगाती हुई विधि पूर्वक गर्भ का पालन करने लगी। क्योंकि-

"वायु कारक वस्तु के सेवन करने से गर्भस्थ सन्तान कुब्ज, अन्ध, जड़ या वामन हो जाती है। पित्तकारक वस्तु के सेवन करने से गर्भस्थ सन्तान के सिर में केश नहीं होते तथा वह पीले वर्ण की हो जाती है। कफ कारक वस्तु के सेवन करने से गर्भस्थ सन्तान पाण्डु रोग वाली तथा श्वित्र-सफेद कोढ़ रोग वाली होती है।"[2]

---

[1] पिता योगाभ्यासो विषयविरतिः सा च जननी।
विवेकः सोदर्यः प्रतिदिनमनीहा च भगिनी॥
प्रिया क्षान्तिः पुत्रो विनय उपकारः प्रियसुहृत्।
सहायो वैराग्यं गृहमुपशमो यस्य स सुखी॥७॥

[2] वातलैश्च भवेद् गर्भः, कुब्जान्धजडवामनः।
पित्तलैः खलतिः पिङ्गः श्वित्री पाण्डुः कफादिभिः॥१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्भ पालन व पुत्र उत्पत्ति

इसलिये सुकोमला इन सब वस्तुओं से निवृत्त रह कर अपने गर्भ का पालन करने लगी। समय पूर्ण होने पर, प्रभात काल में जैसे पूर्व दिशा सूर्य को जन्म देती है, वैसे ही उसने अच्छे दिन तथा शुभ मुहूर्त में अतीव सुन्दर बालक को जन्म दिया।

दौहित्र के जन्म होने पर राजा शालिवाहन ने अच्छे अन्नपान के दान से सज्जनों का सत्कार किया और उस बालक का 'देवकुमार' नाम रखा। पांच धात्रियों को उसके पालन पोषण का कार्य सोंप दिया। उन धात्रियों से पालित चित्रशाला के योग्य अत्यन्त सुन्दर अपने बालक देवकुमार को देख कर सुकोमला अति प्रसन्न रहती थी।

उछलना, कूदना, हँसना आदि बाल चेष्टा से बालक जिस स्त्री की गोद में बैठता है, वह ही स्त्री संसारमें अत्यन्त सौभाग्यशाली गिनी जाती है।

देवकुमार का बड़ा होना व पढ़ने जाना

जब देवकुमार कुछ बड़ा हुआ तो राजा ने विचार किया कि–' वह माता–पिता शत्रु हैं कि जिसने अपने पुत्रको पढ़ाया न हो। जैसे हँस समूह में बक शोभा नहीं पाता वैसे ही विद्वानों की सभा में मूर्ख व्यक्ति शोभा नहीं पा सकता। पिता से ताडित पुत्र, गुरु से ताडित शिष्य तथा घन (हथौडा) से आहत सुवर्ण, यह तीनों संसार के सब स्थानो में शोभा पाते हैं।' अतः राजा ने एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्सव कर के देवकुमार को पण्डित के पास पढ़ने भेजा। सुकोमला का पुत्र देवकुमार निरंतर परिश्रम पूर्वक पण्डित के समीप रह कर अध्ययन करता हुआ शीघ्र ही सर्व शास्त्र, शस्त्रविद्या तथा कला में पारंगत होगया। क्यों कि:—

"जैसे जल में तैल, दुर्जन मनुष्य के द्वारा गुप्त बात, और सत्पात्र में दीया अल्प दान बहुत विस्तार को पाता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति में शास्त्र भी बुद्धि के प्रभाव से स्वयं विस्तृत हो जाता है।"+

आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो पशु और मनुष्य दोनों में समान ही हैं। केवल एक ज्ञान ही मनुष्य में विशेष होता है। जिस मनुष्य में ज्ञान नहीं है, वह पशु के समान ही गिनाजाता है।

लडकों का ताना

एक दिन उस पाठशाला का कोई छात्र देवकुमार के साथ लड़ता हुआ अत्यन्त कठोर वचन से बोला:— "अरे अपितृक! मैंने अभी तक तुझे बहुत क्षमा किया, क्योंकि तू राजा शालिवाहन की पुत्री का पुत्र है। परन्तु अब मैं तुम्हारे अपराध को जरा भी सहन नहीं करूँगा।" यह बात सुन कर देवकुमार ने अपने मन में सोचा कि—'यह सत्य कह रहा है; क्योंकि जब मैं सभा में जाता हूँ, तो सभ्य लोग मुझको 'हे राजा के दौहित्र!' अथवा 'हे सुकोमला

+जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः ॥२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र!' आओ, आओ, ऐसा ही कहते हैं, परन्तु पिता का नाम लेकर कोई भी मुझे नहीं बुलाता है!'

इस प्रकार अपने मन में विचार करता हुआ देवकुमार उदासीन मुख लेकर अपनी माता के सन्मुख आया और बोलाः—

माता से पिता के बारे में प्रश्न, माता का शोक

"हे माता! तुमने बिना स्वामी के ही चूड़ियाँ तथा अच्छे आभरण क्यों धारण कर रक्खे हैं? जिस स्त्री को स्वामी नहीं होता, वह इस प्रकार के आभरण धारण नहीं करती है। इसलिये इसका क्या कारण है, सो ठीक ठीक बताओ।"

सुकोमला ने उससे कहा कि तेरा 'पिता एक देव था। वह मेरी शय्या पर से उड़ कर आकाश में क्रीडा करता हुआ कहीं चला गया है। तब से मैंने आज तक उसे कभी नहीं देखा। देवता लोग कुतूहलवश सर्वत्र क्रीडा करते रहते हैं। इसलिये मुझे लगता है कि तेरा पिता देव कहीं जीवित अवश्य है। इसीलिये मैं चूडियों को धारण किये हुए हूँ।'

इस प्रकार शालिवाहन राजा का दौहित्र देवकुमार का माता के साथ होती हुई बात का कोलाहल सुनकर जो लोक एकत्र हुए थे; वे जाने के बाद गृह को शून्य समझ कर सब तरफ देखने लगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिस मनुष्य को धन की व्यग्रता रहती है, उसको कोई मित्र-बन्धु नहीं होता। वह हर किसी से किसी तरह से धन ही लेना चाहता है। काम से जिस का चित्त व्याकुल है, उसको भय या लज्जा नहीं होती। वह कहीं भी अपनी काम वासना को ही तृप्त करना चाहता है। भूख से जो व्याकुल है, उसका शरीर कृश हो जाता है तथा तेज नहीं रहता। इसी प्रकार जो अत्यन्त चिन्तित है उसको कहीं भी सुख नहीं मिलता तथा निद्रा भी नहीं आती। अतः देवकुमार को भी चिन्ता से कहीं शान्ति नहीं मिलती थी।

इस प्रकार देवकुमार को अत्यन्त उदासीन देखकर सुकोमला बोली कि 'इस समय इस चिन्ता को छोड़ कर भोजन करो। देखो किसी कवि ने हाथी को बन्धन में पड़े हुए देख कर कहा है कि- हे गजराज! योगी के समान दोनों नेत्रों को बन्द करके क्यों इतनी चिन्ता करते हो? पिण्ड को ग्रहण करो और जल पी लो। क्योंकि दैवयोग से ही किसी को विपत्ति या सम्पत्ति प्राप्त होती है। इसलिये तू भी चिन्ता छोड़ तथा भोजन कर।' इतने में देवकुमार चारु में दृष्टी फेंकता हुआ, कमरे कि उपर की छतमें देखता है तो उस की नजर द्वार के भारवट्ट पर पड़ी। वहाँ कुछ लिखा हुआ देखा और खड़ा हो कर उसे पढ़ने लगा। उस में लिखा था कि--

"कमल-समूह में क्रीडा करने में तत्पर राजा ने पुरुष के देखने पर उससे द्वेष करने वाली और द्वेष से काष्ट भक्षण की इच्छा वाली राजकुमारी के साथ विवाह कर मैं एक वीर इस समय पृथ्वी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की रक्षा के लिये दण्ड धारण करने वाला अवन्ती नगर में शीघ्र जा रहा हूँ।"+

पुत्रका श्लोक पढकर पिताका पता लगाना

इस प्रकार के उन अक्षरों को पढ़ने से देवकुमार अत्यन्त हर्षित हो गया। अपने पुत्र को इस प्रकार हर्षित देख कर सुकोमला ने पूछा कि 'हे पुत्र! क्या तुम को पिता का स्थान ज्ञात हो गया? क्या तुम्हारा पिता आ गया है?' देवकुमार बोला कि 'आपकी कृपा से मैंने अपने पिता का पता लगा लिया है।' तब सुकोमला ने फिर पूछा कि 'तुम्हारा पिता कहाँ है, वह स्थान मुझ को भी बतलाओ।'

तब देवकुमार बोला कि—'हे माता! मैं पहले वहाँ जाऊँगा। जहाँ मेरे पिता हैं। इसके बाद शीघ्र ही मैं तुम को वह स्थान बतलाऊँगा।'

तब माता ने फिर से पूछा कि 'जिस स्थान पर देवता लोग जाते हैं, उस स्थान पर तुम कैसे जा सकोगे?'

सुकोमला के ऐसा कहने पर देवकुमार ने कहा कि 'मैं देव का पुत्र हूँ। इसलिये उस के समान ही पराक्रमशाली हूँ। वहाँ जाने

+अवन्तीनगरे गोपः परिणीय नृपांगजाम्।
गां पातुं दण्डभृत् पद्मोत्करक्रीडापरो ययौ ॥ ३६ ॥
दृष्टे च पुरुषे द्वेष्टां कुर्वतीं काष्ठभक्षणम्।
अहमेकोऽधुना वीरः परिणीय स्यादगाम् ॥ ३७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में मुझ को कोई भी बाधा नहीं होगी।'

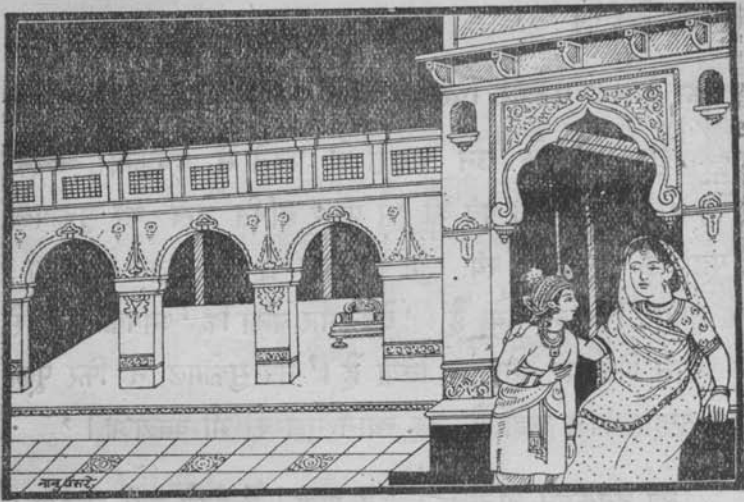

यह सुनकर सुकोमला विस्मित होकर बोली कि 'वह देव वहाँ जा कर देवी, तडाग और वन आदि से मोहित होकर वहीं रह गये है कभी भी यहाँ नहीं आते है। क्योंकि देवलोक के समान दिव्य अलंकार, उत्तम वस्त्र, मणि-रत्न आदि से प्रकाशित भवन, सौन्दर्य भोग विलास आदि की सामग्री यहाँ कहाँ से हो सकती है? और देवताओं को देवलोक में जो सुख मिलता है, उसका वर्णन सौ जिह्वा वाला भी नहीं कर सकता है। इसलिये हे पुत्र! इस प्रकार के सुख के स्थान में जाकर तुम भी अपने पिता के समान ही वहाँ रह जाओगे। तब यहाँ पर मेरी क्या गति होगी?। एक ही सुपुत्र के रहने पर सिंहनी निर्भय हो कर शयन करती है। परन्तु गर्दभी-गध्धी दस दस पुत्रों के रहने पर भी कुपुत्र होने के कारण उन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुत्रों के साथ साथ स्वयं भी भार वहन करती है। इसी प्रकार सुगन्धित पुष्पों से युक्त एक ही वृक्ष संपूर्ण वन को सुवासित कर देता है। उसी तरह सुपुत्र भी कुल को प्रकाशित करता है। इसलिये तुम जैसे सुपुत्र के नहीं रहने से मेरी अवस्था अति दयनीय हो जायेगी।"

माता की यह बात सुन कर देवकुमार ने सुकोमला को प्रणाम किया और बोला कि—'हे मात! यदि मैं जीवित रहूँगा तो यहाँ आकर पुनः शीघ्र ही तुम को वहाँ ले जाऊँगा।'

सुकोमला बोली 'हे पुत्र! तुम जो कुछ भी कहते हो वह सब सत्य है। वे ही पुत्र कहलाने के योग्य हैं जो अपने माता-पिता का हित करते हैं।' ऐसा कहा भी है—

"जो अपने निर्दोष चरित्र से अपने माता-पिता को प्रसन्न करे ऐसा पुत्र, अपने स्वामी के ही हित की सदैव इच्छा करे ऐसी स्त्री, और दुःख में तथा सुख में समान व्यवहार रखने वाला मित्र, संसार में पुण्यशाली को ही मिलते हैं।"×

दीप विद्यमान वस्तु को ही प्रकाशित करता है। परन्तु पुत्र

×प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत् कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यद्।
एतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप दीप बहुत पूर्व में हुए अपने पूर्वजों को भी अपने गुणों की उत्कृष्टता से प्रकाशित करता है।

सुकोमला पुनः बोलीः–"हे पुत्र! पशुओं को भी अपनी सन्तान पर अत्यन्त स्नेह रहता है। तब मनुष्यों को अपनी सन्तान पर कितना स्नेह होता है, इस में अधिक क्या कहना है?"

सुनो, एक हरिणी अपनी सन्तान के स्नेह से व्याकुल होकर व्याध से कहती है कि–'हे व्याध! स्तन को छोड़ कर मेरे शरीर का सब मांस लेलो और प्रसन्न हो कर मुझको छोड़ दो। क्योंकि जिन को चरना नहीं आता, ऐसे मेरे नन्हें नन्हें बालक अभी आने का मार्ग देखते होंगे।'

इसी प्रकार एक हस्ती कहता है कि 'मैं दृढ बन्धन में रहता हूँ। अथवा मेरा शरीर शस्त्र प्रहार से क्षत–विक्षत हो गया है तथा अंकुश से मुझ को महावत बराबर मारता है। मेरे कन्धे पर चढ़ कर ताडन करता है या मुझ को अनेक प्रकार के कष्ट देता है तथा मुझको अन्य देशों में जाना पड़ता है। इन सब बातों का मुझको कुछ भी दुःख नहीं है। परन्तु वन में अपने यूथ को स्मरण कर के उन के गुण केवल मेरे हृदय में चिन्ता उत्पन्न करते हैं कि सिंह के डर से डरे हुए छोटे छोटे बच्चे किस के आश्रय में जा कर अपने प्राणों को बचायेंगे।' इस प्रकार कहती हुई सुकोमला फिर से बोली कि–'हे निर्मल हृदयवाले मेरे पुत्र! तुम शीघ्र जाओ और मुझको बराबर अपने हृदय में स्मरण करते रहना।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

" यात्रा के-समय में 'नहीं जाओ' ऐसा कहने से अमंगल होता है, 'जाओ' यह स्नेहहीन वचन है, 'रह जाओ' यह शब्द स्वामित्व का द्योतक है, जैसी 'इच्छा हो वैसा करो' ऐसा कहने से उदासीनता लक्षित होती है। इसलिये मैं अभी किस शब्द से उचित उत्तर दूँ यह मेरी समझ में नहीं आता। अन्ततः मैं यही कहती हूँ कि जब तक तुम्हारा पुनः दर्शन हो, तब तक मेरा स्मरण करते रहना। मार्ग में सतत कल्याण हो और शीघ्र ही तुम लौट कर वापस चले आओ।"×

'हे पुत्र! तुम अपने कार्य का साधन करो। तथा समय समय पर मेरा स्मरण करना।' क्योंकि—

" माता–पिता के समान तीनों लोक में कोई भी दूसरा तीर्थ नहीं है। कल्याण और सुख का देने वाला यह मनुष्य का शरीर माता–पिता से ही प्राप्त होता है।+

अपनी माता की यह बात सुन कर देवकुमार बोला कि– " हे मात! तुम अपने मन में किसी प्रकार का दुःख मत करना। मैं

×मा गा इत्यपमंगलं, व्रज, इति स्नेहेन हीनं वचः।
तिष्ठेति प्रभुता, यथारुचि कुरुष्वेत्यप्युदासीनता॥
किं ते साम्प्रतमाचराम उचितं तत्सोपचारं वचः।
स्मर्तव्या वयमेव पुत्र! भवता यावत् पुनर्दर्शनम्॥५६॥

+मातृ-पितृसमं तीर्थं विद्यते न जगत्त्रये।
यतः प्राप्नोति सुलभो नृभवः शिवशर्मदः॥५८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम्हारा स्मरण करता हुआ अपने कार्य को सिद्ध कर शीघ्र ही यहाँ आ जाऊँगा। जैसे भाद्रपद मास में भ्रमर आम के कुसुमों का स्मरण करता है। ठीक वैसे ही मेरा हृदय तुम्हारे चरण कमलों का स्मरण निरन्तर करता रहेगा। कुमुदिनी जैसे चन्द्रमा को देखने के लिये उत्कण्ठित रहती है, कमल समूह जैसे सूर्य को देखने के लिये लालायित रहता है, कोकिला मकरन्द के लिये जिस प्रकार व्याकुल रहती है, भ्रमर समूह जैसे पुष्प समूह के लिये व्यग्र रहता है, वैसे ही मेरी चित्तवृत्ति भी तुम को देखने के लिये सदा उत्कण्ठित है और रहेगी।"

माता से अवन्ती गमन की आज्ञा लेना तथा रवानगी।

इस प्रकार अपनी माता को आश्वासन दे कर उसकी आज्ञा पा कर माता को प्रणाम कर के देवकुमार अपने पिता से मिलने के लिये रवाना हुआ। अपनी माता के विरह को सहन करने में असमर्थ देवकुमार ने अपने नेत्रों से अश्रु बहाते हुए बहुत कष्ट से उस नगर का त्याग किया और वहाँ से अवन्तीपुर के लिये प्रस्थान किया। मनुष्य को माता, जन्मभूमि, रात्रि के अन्तिम भाग में निद्रा, तथा अच्छी बात चीत वाली गोष्टी, आदि पाँच बातें अत्यन्त प्रिय होती हैं। इसलिये इन सब का त्याग करना अत्यन्त कष्टकारक होता है। फिर भी देवकुमार तलवार लेकर अपने पिता से मिलने के लिए वहाँ से निकल पड़ा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्रहवाँ प्रकरण

अवन्ती में

देवकुमार का अवन्ती आना

देवकुमार ने अकेले ही हाथ में खड्ग लेकर अवन्ती के लिए प्रतिष्ठानपुर से प्रस्थान किया। धीरे धीरे देवकुमार स्थान स्थान पर अनेक प्रकार के नगर, ग्राम, नदी तथा पर्वतों को देखता हुआ अवन्ती के समीप पहुँचा और अपने मन में विचार करने लगा कि 'जिनोंने विना अपराध मेरी माता का त्याग कीया और जो यहाँ आकर राज्य करते हैं उससे, मैं अपनी वीरता का प्रकाश किये बिना किस प्रकार मिलूँ। जो पुत्र उत्पन्न होकर अपने उच्च चरित्र से पिता को हर्ष नहीं देता है उसके जन्म लेने से क्या? अर्थात् उस पुत्र का जन्म निष्फल ही है। इसलिये मुझ को अपना प्रभाव दिखा कर ही पिता से मिलना चाहिये। तब तक किसी वेश्या के घर में ही रहना चाहिये। क्योंकि वेश्या के घर का आश्रय लिये विना किसी का कार्य सिद्ध नहीं होता।' कारण कि:—

"विनय करना राजपुत्रों से सीखना चाहिये। अच्छी वाणी का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग पंडितों से सीखना चाहिये। मिथ्या बोलना द्यूत–जूआ खेलने वालों से सीखना चाहिये, और कपट करना स्त्रियों से सीखना चाहिये।"+

वेश्या के यहाँ ठहरना

इस प्रकार अपने मन में विचार कर देवकुमार नगरकी मुख्य वेश्या के घर में पहुँचा। उसको देखकर वेश्या ने पूछा कि 'तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? एवं क्या काम है?'

देवकुमार ने कहा कि–'मेरा नाम 'सर्वहर' है। मैं चोर हूँ। राजाओं तथा धनिकों के धन का अपहरण करता हूँ। मैं तुम्हारे यहाँ आश्रय चाहता हूँ।'

वेश्या बोली कि 'मैं तुम को अपने घर में आश्रय नहीं दे सकती। क्योंकि यदि राजा को ज्ञात हो जाय तो वह मेरा सर्वस्व ले लेगा और मुझे बरबाद कर देगा। क्योंकि चोरी करने वाला, चोरी कराने वाला, चोरी करने का विचार देने वाला, भेद बताने वाला, चोरी के धन को खरीदने वाला तथा बेचने वाला, चोर को अन्न और आश्रय देने वाला ये सातों प्रकार के व्यक्ति चोर कहे जाते हैं। वणिक्, वेश्या, चोर, मरे हुए व्यक्ति का धन लेना, पर स्त्री का सेवन करना, और जुगार खेलना ये सब दुष्कर्म के स्थान हैं। राजा लोग चोरी करने वाले को चाहे वह अपना सम्बन्धी ही क्यों न हो, अवश्य दण्ड देते

+विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम्।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत कैतवम् ॥७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। चोर यदि अपना चोरी का काम छोड़ दे, तो वह रौहिणेय नामक-चोर की तरह स्वर्ग को प्राप्त करता है। इसलिये मैं तुम को अपने यहाँ स्थान नहीं दे सकती।'

देवकुमार उसके घर को छोड़ कर शीघ्र ही दूसरी वेश्या के यहाँ पहुँचा तथा उस से वहाँ रहने के लिये बात चीत की। उस वेश्याने कहा कि-'पुरुष और स्त्री की विषम गोष्ठी कुछ भी शोभा लायक नहीं होती। क्योंकि अनवसर का काम, विषम गोष्ठी, तथा कुमित्र की सेवा ये सब कदापि नहीं करना चाहिये। इस प्रकार वहाँ भी स्थान न मिलने पर देवकुमार क्रमशः अन्य वेश्याओं के घर घूमने लगा। परन्तु एक क्षण के लिये भी कहीं स्थान नहीं मिला।

इस प्रकार भ्रमण करता हुआ नगर के बीच में 'काली' नाम की वेश्या के घर पहुँचा। उसके प्रश्न पर उसको भी देवकुमार ने पूर्ववत् उत्तर दिया।

देवकुमार के बातचीत करने पर वेश्या अपने मन में विचार करने लगी कि मेरे घर में कोई भी श्रीमान् सेठ नहीं आता है। इसलिये इस प्रकार के मनुष्य को अपने घर रखने में कोई हर्ज नहीं हैं। ऐसा सोच कर उसने देवकुमार रूपी चोर को अपने घर में रखा। जब दो दिन बीत गये और वह कुछ भी द्रव्य नहीं लाया, तब वेश्याने देवकुमार से कहा कि-'बिना द्रव्योपार्जन के यहाँ कोई नहीं रह सकता अतः कहीं से द्रव्य लाओ अन्यथा अपना रास्ता सँभालो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि जैसे मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुनि सब अर्थों–अहिंसा, सत्य, आदि का संग्रह करके परलोक–मोक्ष में दृष्टि रखते हैं, वैसे अर्थ धन के संग्रह करने वालों को ही वेश्या सुख देती है।' उसे आश्वासन देते हुए चोर ने पूछा कि 'यह सुन्दर भवन जो सामने दीख रहा है, वह किस का है?'

वेश्या बोली कि–'इस गगनचुम्बी महल के सातवें महल में राजा विक्रमादित्य शयन करता है तथा न्याय पूर्वक पृथ्वी का पालन करता है, भट्टमात्र उसका मंत्री है। राजा के महल के बायीं तरफ ऊँचा वह सुन्दर महान् मकान है वह मंत्री भट्टमात्र का है।'

चोर बोला कि 'आज रात्रि में इस नगर को देखने के लिये मैं जाऊँगा जब रात में आकर मैं दरवाजा खटखटाऊँ तो तुम धीरे से खोल देना।'

वेश्या ने उस बातका स्वीकार किया और वह प्रसन्न होता हुआ रात में घर से निकल चला। क्यों कि सिंह कोई शकुन नहीं देखता और न वह चंद्रबल या धन–सम्पत्ति देखता है। वह एकाकी ही शिकार को देख कर सामना करता है। क्योंकि जहाँ साहस है, वहाँ सिद्धि भी है।

इधर राजा के समक्ष आकर अग्निवैताल बोला कि 'हे राजन्! देवद्वीप में देवता लोग बहुत अच्छा नृत्य करेंगे। इसलिये मैं वहाँ जाऊँगा अतः अभी तुम मुझ को वहाँ जाने की अनुमति दो। वहाँ पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं उस नृत्य को देखने के लिये दो महीने रहूँगा। वहाँ तक तुम किसी भी काम के लिये मेरा स्मरण मत करना।' राजा विक्रमादित्य बोले कि 'तुम जाओ, और तुम्हारी इच्छा हो वह करो,' इस प्रकार राजा के कहने पर उसी क्षण अग्निवैताल देवद्वीप में महान् आश्चर्य के करने वाले नृत्य को देखने के लिये वहाँ से अदृश्य हुआ।

चण्डिका को प्रसन्न कर विद्यायें प्राप्त करना

इधर देवकुमार वेश्या के घर से निकल कर चण्डिका देवी के मन्दिर में पहुँचा। चण्डिका देवी को प्रणाम कर के बोला कि 'हे देवी! तुम निरन्तर सब लोगों को अभिलषित वस्तुऐं देती रहती हो। मुझ पर भी प्रसन्न होकर विजय और अदृश्य करण नाम की विद्या दो। यदि तुम मेरी ये अभिलषित वस्तुयें नहीं दोगे तो मैं अपना मस्तक काट कर तुम को सहर्ष समर्पित कर दूँगा।' ऐसी प्रार्थना करने पर भी जब चण्डिका देवी कुछ भी नहीं बोली, तब वह तलवार लेकर अपना मस्तक काटने को तैयार हुआ।

उस चोर (देवकुमार) का अपूर्व साहस देख कर चण्डिका देवी ने प्रसन्न होकर चोर का तलवार वाला हाथ पकड लिया और बोली कि 'साहसी वीर!' मैं तुम्हें दोनों विद्यायें देती हूँ। तुम अपना मस्तक काटने का आग्रह छोड़ दो और अपने इष्ट स्थान को जाओ।

जो सदाचारी, धैर्यवान् धर्मपूर्वक बहुत अग्रिम भविष्य (दीर्घकाल) का सोचने वाला तथा न्यायपूर्वक कार्य करने वाला हो, ऐसे सज्जन मनुष्य की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मी रहे अथवा जाय, परन्तु उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं होसकता। वैसे पुरुष के सब कार्य सिद्ध हो जाते है। बिना उपकार के किसी को प्रेम नहीं होता। देवता को जो अभीष्ट है, वह देने से ही देवता भी प्रसन्न होकर अभीष्ट वरदान देता है। इसलिये मैं तुम्हारी अटूट भक्ति तथा श्रद्धा से प्रसन्न होकर तुम्हें दोनों विद्यायें सहर्ष प्रदान करती हूँ।'

देवी से वरदान प्राप्त करने के बाद वह चोर जब जब जिस किसी कार्य को करने की इच्छा करता था, तब तब उसका अभीष्ट कार्य सिद्ध ही हो जाता था। उसके पूर्व जन्म के उपार्जित पुण्य का उदय हो चुका था।

जिस प्रकार सिंह को मैं एकाकी हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मेरे साथ में परिवार नहीं है, इन सब बातों की चिन्ता नहीं होती। ठीक वैसे ही उस चोर को भी कभी किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती थी। उस के सब कार्य अनायास ही सिद्ध हो जाते थे। क्यों कि क्रिया की सिद्धि आत्म बल से ही हुआ करती है। इस में कोई संदेह नहीं। सूर्य के रथ में एक ही चक्र (पहिया) है, सातों अश्व सर्पो द्वारा बँधे हैं, रथ का मार्ग भी निरालम्ब आकाश है और रथ चलाने वाला सारथी चरण से रहित याने लंगडा है। इस प्रकार साधन के सबल न रहने पर भी सूर्य अपने आत्म बल से प्रतिदिन अपार आकाश के अन्त तक पहुँचता है।

जिस में भयंकर राक्षस निवास करते हैं एसी लंका नगरी को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीतना, अथाग जल भरे समुद्र को अपने चरणों से ही पार करना, पुलस्त्य ऋषि के पुत्र रावण जैसे शक्ति शाली शत्रु का होना और युद्ध में सहायक वानरों की सेना के होने पर भी अपने आत्म बल से श्री रामचन्द्र ने समस्त राक्षसों का संहार किया।

विक्रमादित्य के शयनगृह में

इसी प्रकार आत्म बल से परिपूर्ण वह चोर देवकुमार देवी का वरदान प्राप्त करने के बाद नगर में भ्रमण करता हुआ संपूर्ण दिन बिता कर रात में अदृश्य होकर रक्षक गण होने पर भी विक्रमादित्य के शयन गृह के पास गया और सोचने लगा कि बिना किसी चमत्कार को किये बिना पिताजीसे मैं नहीं मिलूँगा। क्यों कि आडम्बर से ही लोग पूजे जाते हैं। मैं आपके कुटुंब की ही व्यक्ति हूँ, ऐसा कहने से किसीका आदर नहीं होता। जैसे वन में विकसित पुष्प को लोग ग्रहण करते हैं, परन्तु अपने शरीर से उत्पन्न मल का त्याग करते हैं। इसलिये अपना चमत्कार कुछ तो अवश्य दिखाना चाहिये। शयन किये हुए अपने पिता के मुख को देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने अपने माता–पिता के चरण कमलों में भक्ति पूर्वक प्रणाम किया।

राजा के वस्त्राभूषणों की चोरी

देवकुमार अपना पराक्रम तथा चमत्कार दिखाने के लिये राजा की शय्या के नीचे रखे हुए अठाईस कोटि सुवर्ण के मूल्य के वस्त्राभूषणों से भरी हुई पेटी को यत्न पूर्वक चुपचाप लेकर वहाँ से अदृश्य हो गया और वेश्या के यहाँ पहुँचा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

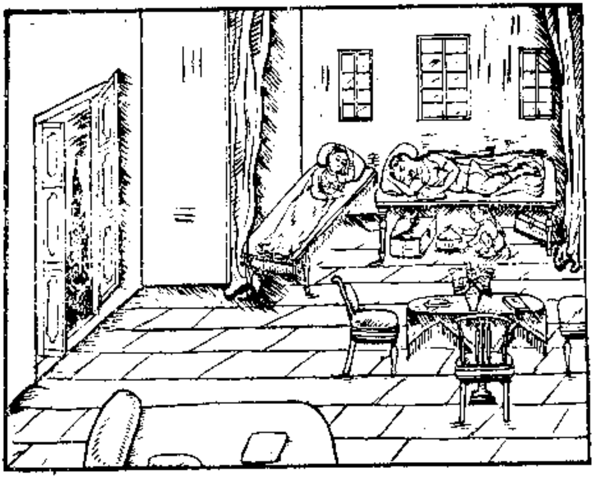

पूर्व संकेत के अनुसार दरवाजा खटखटाया। वेश्या भी उसे आया समझ कर दरवाजा खोलने गई। वेश्या के घर में जाकर चोर ने सब वस्त्राभूषण वेश्या को दिखलाये। वेश्या ने आश्चर्य पूर्वक उन वस्त्राभूषणों को देखा और चोर को पूछा कि 'यह वस्त्राभूषण कहाँ से लाये और इन का कौन मालिक था?' 'चोर ने उत्तर दिया वेश्या के पूछने पर' कि 'ये वस्त्राभूषण मैं राजमहल से लाया हूँ और इनके मालिक स्वयं राजा और रानी है।'

यह सुनकर वेश्या ने सोचा कि–निश्चय ही यह मुँह के सामने से चीजें चुराने वाला चालाक और साहसिक है। जिसने राजा और रानी के वस्त्राभूषणों को चुराया है, उसके लिए दूसरे की चीजें चुराने के विषय में क्या कठिनाई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये सब बातें वेश्या सोच ही रही थी कि, इस के बीच चोर बोला कि–'वस्त्राभूषणों से भरी यह पेटी इस समय तुम अपने प्राण के समान ही यत्न पूर्वक सुरक्षित रखना। दूसर बारी मैं नगर से चोरी कर के जो कुछ भी लाऊँगा वह सब तुम ले लेना।'

यह बात सुनकर वेश्या अत्यन्त प्रसन्न हुई। क्यों कि जितना लाभ होता है, उतना ही अधिक लोभ होता है, लाभ होने से लोभ बढ़ता ही जाता है। दो मासे सुवर्ण होने पर जो सन्तोष हो सकता है, वह कोटि सुवर्ण होने पर भी अपूर्ण ही रहता है। लाभ कितना भी अधिक हो किन्तु उससे लोभ घटता नहीं, एक मात्रा से जो अधिक है, वह मात्रा घटा देने से पूर्ण नही हो सकता। मनुष्यों के लिये लोभ ही सर्वनाश करने वाला राक्षस है। लोभ ही प्राण लेने वाला विष है। लोभ ही मत्त करने वाली पुरानी मदिरा है। सब दोषों का स्थान एक मात्र निन्दनीय लोभ ही है। मनुष्यों का शरीर तृष्णा को कभी नहीं छोड सकता। पाप बुद्धि मनुष्य कदापि सुन्दरता नहीं प्राप्त कर सकता। वृद्धावस्था ज्ञान को नहीं बढाती। इसलिये मनुष्यों का शरीर निन्दनीय हो जाता है। फिर भी लोग तृष्णा नहीं छोड़ते। इसलिये वेश्या ने प्रचुर धन प्राप्त होने की आशा से प्रसन्न होकर मदिरा आदि देकर उसे अत्यन्त प्रसन्न किया।

इस के बाद घर के भीतर बैठा हुआ वह चोर धर्म ध्यान में लीन हो गया। इधर प्रातः काल राजा विक्रमादित्य सोकर उठा और वस्त्राभूषणों को देखा तब जिस पेटी में वस्त्राभूषण रखे हुए थे, उस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पेटी को नहीं देखा। तब रानी से पूछा कि 'आभूषणों से भरी अपनी पेटी कहाँ है?' रानी बोली कि-'रात्रि में मैंने पेटी को शय्या के नीचे ही रखी थी।' राजा ने पुनः कहा कि 'कहीं अन्यत्र रखी होगी। शय्या के नीचे तो पेटी नहीं है।' रानी ने कहा कि 'रात्रि में शयन करने के समय पेटी यहीं रखी थी।'

राजा ने रानी से कहा कि 'इस प्रकार के विषम स्थान में भी रात्रि में कोई चोर प्रवेश कर के ही पेटी को ले गया है। जब इस प्रकार के विषम स्थान में भी चुपचाप कोई आसकता है, तब यदि वह मुझ को मार दे, तो क्या दशा हो? क्षुद्र कीटसे लेकर इन्द्र तक सब को जीने की आकांक्षा एकसी ही होती है। मृत्यु का भय भी सबको समान ही रहता है। जब कोई निर्दय व्यक्ति किसी जीव को मारता है तब वह जीवन को छोड़कर अत्यन्त विशाल राज्य का सुख भी नहीं चाहता। इसलिये सावधानी से रहना चाहिये।'

तत्पश्चात् राजा ने पदचिह्न पहचान ने वालों को बुलाया और पदचिह्न खोजने के लिये कहा गया। परन्तु वे लोग अच्छी तरह खोजने पर भी पदचिह्न को नहीं देख पाये। राजा ने कोतवाल को बुलवाया और उस से कहा कि तुम लोग रात में कहाँ चले गये थे। अथवा तुम लोग सावधानी से मेरे महल की रक्षा नहीं करते हो। तब कोतवाल ने कहा कि 'हे महाराज! हम बराबर रात में जग कर तथा बहुत सावधानी से महल के चारों तरफ सदा घूम घूम कर महल की रक्षा करते हैं।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंत्रियों आदिसे राजा का विचार विमर्श

इस के बाद राजसभा में आकर सिंहासन पर बैठे। भट्टमात्र आदि मंत्रियों को बुलाकर रात्रि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजाने मंत्रियों के प्रति कहा कि 'इस प्रकार के दुर्गस्थान में वस्त्राभूषणों की चोरी करने के लिये कोई चोर नहीं आया है, परन्तु वह इस आचरण से बतला रहा है कि मैं विद्याधरों में श्रेष्ठ अदृश्य करण के प्रौढ मंत्र से अदृश्य शरीरवाला तथा विद्याओं को सिद्ध करने वाला, सात्त्विकाग्रणी कोई मनुष्य हूँ। ऐसा मुझको ज्ञात होता है तथा ऐसा भी मुझको ज्ञात होता है कि मानो वह कह रहा है कि आपके राज्य में जो कोई विद्वान् अथवा सिद्ध हो वह मुझको प्रगट करे। मैं अभी तो वस्त्राभूषणों से भरी हुई पेटी ही लेकर जाता हूँ, परन्तु प्रातःकाल फिर विघ्न करूँगा। इस से मुझको ज्ञात होता है कि वह सात्त्विकों में श्रेष्ठ मुझको राज्य से हटाकर हमारी सब सम्पत्ति शीघ्र ही ले लेगा। दुःसाध्य खप्पर चोरका मैंने निग्रह किया। परन्तु मेरे महल में प्रवेश करने वाला यह दुष्ट भी उसके समान ही पराक्रमी है। यह भी रात्रि में धनिकों के घर में प्रवेश करके खप्पर के समान ही सब की सम्पत्ति का हरण करेगा। इस में कोई संशय नहीं है।'

ऐसा कह कर राजा विक्रमादित्य ने स्वर्णथाल में पान का बीड़ सभा में घूमाया। जो कोई इस चोर को पकड़ कर लावे, वह इस पान का बीडा उठा ले। चोर के पकडा जाने पर बहुत धन देकर मैं उस का सत्कार करूँगा। राजा के इस प्रकार कहने पर लोगों ने अपने मन में विचार किया कि वह चोर बहुत बलवान् है जो राजा के विषम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महल में भी प्रवेश कर गया, अतः भय के मारे किसी भी व्यक्ति ने पान का बीड़ा नहीं उठाया। तब मतिसार नामक विक्रमादित्य के मुख्य मन्त्री ने अच्छे अच्छे योद्धाओं के प्रति कहा कि 'जो राजा का कार्य सिद्ध करता है, वही सच्चा सेवक है, जो युद्ध के समयमें राजा के आगे खड़ा है, नगरमें सर्वदा राजा के पीछे पीछे चले और जो राजा के घर पर उपस्थित रहे, वह राजा का प्रिय होता है। राजा के मन की बात जानने वाला, अच्छे स्वभाव वाला, अल्प बोलने वाला, कार्य करने में अतिशय कुशल, प्रियवचन बोलने वाला, राजा के कहने के अनुसार बोलनेवाला ही राजा का पूर्ण भक्त है, तथा वही प्रशस्त भृत्य. प्रशंसनीय सेवक गिना जाता है। बिना भृत्य के राजा शोभा नहीं पाता। दोनों का व्यवहार परस्पर के सम्बन्ध से ही होता है। राजा प्रसन्न होने पर भृत्य को काफी धन देकर उसका सत्कार करता है। नौकर सत्कार पाने के लिये ही प्राणों को देकर भी राजा का उपकार करता है।

सिंहकी चोर पकड़ने की प्रतिज्ञा

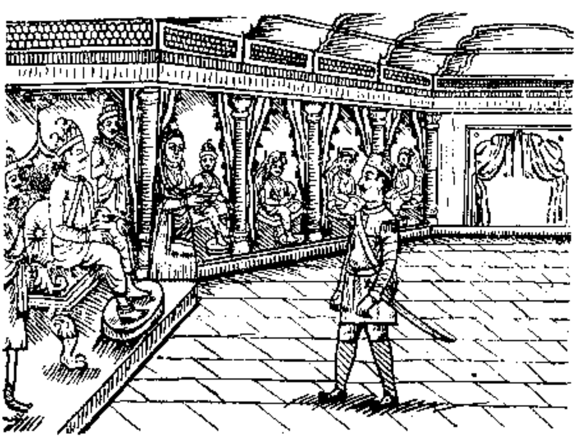

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंत्री की यह बात सुनकर सिंह नामक कोटवाल राजा के समक्ष आया और पान का बीड़ा उठाकर बोला कि 'मैं तीन दिन में उस चोर को किसी प्रकार अपने स्वामी के आगे अवश्य लाऊँगा, वरना आप मुझको चोर का दण्ड दें।' यह प्रतिज्ञा कर के वह कोटवाल वहाँ से चला। द्विपथ, त्रिपथ तथा चतुष्पथादि स्थानों में चोर को पकड़ने के लिये अच्छे अच्छे सिपाहियों को नियुक्त किया और स्वयं तलवार लेकर वह कोटवाल गलियों में घूमता हुआ तीसरे दिन के अन्त में पूर्व द्वार पर पहुँचा।

उधर कालि वेश्या देवकुमार को नगर का हाल पूछने पर कहने लगी कि—'चोर को पकड़ने के लिये सिंह कोटवाल ने प्रतिज्ञा की है। यदि वह घूमता–फिरता कहीं यहाँ आगया, तो तेरी और मेरी क्या दशा होगी? तुमने सर्वप्रथम राजा के महल में ही चोरी की, यह तुमने अच्छा नहीं किया। क्यों कि राजा किसी प्रकार भी वश में नहीं आसकता। शरीर का रोगरूप शल्य, अग्नि तथा विष इन सब वस्तु ओं का प्रतिकार करना सरल है, परन्तु बिना विचारे कार्य करने से जो पश्चाताप होता है, उसका कुछ भी औषध या प्रतिकार नहीं है। इसलिये अब चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं। तुम अभी यहाँ से किसी दूसरे स्थान में चुप चाप एकान्त में चले जाओ। जब उस कोटवाल की प्रतिज्ञा का समय पूरा हो जाय तब फिर तुम यहाँ चले आना। ऐसा करने से तुम्हारा तथा मेरा कल्याण होगा। मेरा हृदय तो अब भय से ध्वजा के वस्त्र के समान कम्पित हो रहा है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेश्या की यह बात सुनकर चोर बोला कि–" तुम अपने मनमें कुछ भी भय मत रखो। मैं तुम को–शीघ्र ही काफी सम्पत्ति से युक्त कर दूँगा। " तब प्रसन्न होकर वेश्या बोली कि ' तुम धन्य हो । तथा अत्यन्त निर्भय हो, क्यों कि इस प्रकार के संकट उपस्थित होने पर तुम्हारी बुद्धि–अत्यन्त स्थिर है। शिकार के लिए जाते समय सिंह कोई शकुन या चन्द्रबल आदि नहीं देखता और न धन या शक्ति देखता है। वह एकाकी ही किसी से भी भिड़ जाता है। जहाँ साहस है वहाँ ही सिद्धि होती है। तुम अत्यन्त साहसी हो। इसलिये तुमको सिद्धि अवश्य मिलेगी।

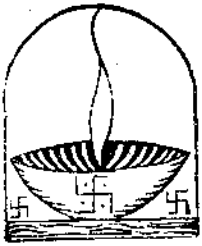

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

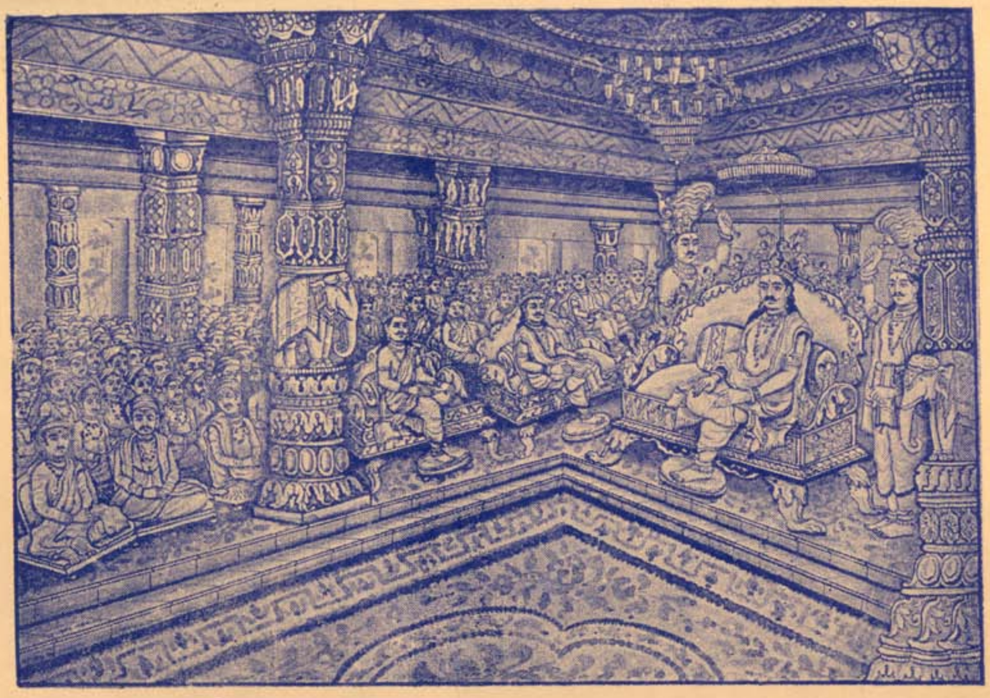

मंत्रीयों आदिसे राजाका विचार विमर्श

[मु नि. वि. सं. पृ १८१ विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठारहवाँ प्रकरण

कोतवाल व मंत्री को चकमा

देवकुमारका श्यामल बनना

देवकुमार ने वेश्या से पूछा कि 'कोटवाल के कुटुम्ब में कितने तथा कौन कौन व्यक्ति हैं?'

वेश्या ने उत्तर दिया कि उस के एक पत्नी तथा बहन है और एक 'श्यामल' नाम का भानजा है। वह सात वर्ष हुए गंगा, गोदावरी इत्यादि तीर्थों की यात्रा के लिये चला गया है। तीर्थ यात्रा में गये हुए उस को सात वर्ष बीत गये हैं। परन्तु वह श्यामल आज तक लौट कर नहीं आया। तुम्हारे शरीर की कान्ति के समान ही उसके शरीर की भी कान्ति थी और कद तथा रूप भी तुम्हारे ही समान था। सुनने में आया है कि—वह दो तीन दिन में ही यात्रा से लौट कर आने वाला है।

वेश्या से यह बात सुनकर वह बोला कि 'मैं अभी नगर के भीतर जाऊँगा। जब रात में आकर मैं दरवाजा खटखटाऊँ, तो तुम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शीघ्र ही आकर चुप चाप दरवाजा खोल देना।

वह वेश्या बोली कि 'हे चोर! निश्चिन्त होकर तुम नगर में जाओ। जब आकर तुम दरवाजा खटखटाओगे तब तुम जैसा कहते हो, वैसा ही करूंगी।'

वेश्या के इस प्रकार कहने पर वह अत्यन्त प्रसन्न होकर वेश्या के घर से निकल गया और निर्भय होकर नगर को देखने लगा। वह नगर के मध्य में घूम घूम कर स्थान स्थान में कौतुक देखने लगा।

सिंहको भुलावे में डालना

कोटवाल को भ्रम में डालने के लिये देवकुमार अपने मन में विचार करने लगा और उन स्थानों को देखने लगा। कार्पाटक (कपाय वस्त्र धारण कर यात्रा करने वाला) के घर से कावडिक लेकर तीर्थयात्रा करने वाले के समान बनकर देवकुमार घूमते घूमते नगर के पूर्व द्वार पर आ पहुँचा तथा उस कोटवाल का क्षुधा—भूख से पीडित शरीर देखकर उस के सन्मुख गया। वह उससे मिला तथा उसे मामा कह कर कपटी-तीर्थ-यात्री चोर ने उस को प्रणाम किया।

उस कपटी तीर्थ यात्री चोर के आकार, वर्ण और स्वरूप देखकर यह मेरा भानजा श्यामल ही है, ऐसा समझ कर कोटवाल ने उसको पूछा कि 'तुमने किस किस तीर्थ की यात्रा की; वहाँ का सब समाचार सुनाओ। तब वह कपटी भानजा चोर—देवकुमार बोला कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'तुम्हारी प्रसन्नता से गंगा, गोदावरी के मुख्य मुख्य तीर्थो की यात्रा की है।' यह सब सुन कर कोटवाल ने कहा कि—'गंगा जल, गंगा की

धूली तथा गोदावरी का जल लाओ। जिस का पान कर तथा उस से सिक्त हो कर अपने शरीर को पवित्र करूँ।' तब उस कपटी श्यामलने कावड से गंगा जलादि वस्तुयें निकाल कर दी। कोटवाल ने अपने भानजे द्वारा दी हुई चीजें ग्रहण कीं और अपने आपको पवित्र बनाया।

इसके बाद उस कपटी श्यामल ने पूछा कि 'आपका मुख इस समय इतना उदास क्यों है?' इस कपटी श्यामल के ऐसा पूछने पर कोटवाल ने उसके आगे अपनी चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा कह सुनाई। वह सब सुनकर उस कपटी श्यामल ने कहा कि 'आपने राजा के सामने इस प्रकार की जो प्रतिज्ञा की, वह अच्छा नहीं किया।' क्योंकि:—

'काक में पवित्रता, द्यूतकार में सत्य, सर्प में क्षमा, स्त्रियों में कामवासना की शान्ति, नपुंसक मनुष्य में धैर्य, मद्यपान करने वालों में तत्त्वज्ञान की चिन्ता, और राजा का मित्र होना, ऐसा कहीं किसी ने न देखा है और न सुना ही है।+

+काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं,
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशांतिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता,
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ॥ १८१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये इस समय शीघ्र ही चुपचाप धन और कुटुम्बादि को कहीं गुप्तस्थान में छिपाकर रख देना चाहिये। ऐसा न करने पर आप की प्रतिज्ञा पूरी न होने के कारण राजा आपकी सम्पति का हरण अवश्य कर लेगा।

उस कपटी श्यामल की इस प्रकार युक्तियुक्त बात सुनकर कोटवालने कहा कि 'तुमने सब बातें सत्य ही कही हैं। परन्तु मैं क्या करूं। इस समय किसी भी प्रकार से मैं घर नहीं जा सकता। मैं नहीं जानता कि यह राजा मुझे इस समय क्या करेगा? इसलिये तुम यहाँ से घर जाओ और सबसे मिलकर शीघ्र ही यह काम कर दो। अपनी सब सम्पत्ति तथा परिवार को एकान्त स्थान में रख कर तुम स्वयं भी घर में गुप्तरूप से रहना।'

तब कपटी श्यामल कहने लगा कि 'मैं किस प्रकार वहाँ सब-से कहूँगा कि मैं मामा के पास से आया हूँ तथा मामा ने इस प्रकार करने के लिये कहा है। इसलिये हे मामा! आप अपने किसी सेवक को यह सब समाचार कहने के लिये मेरे साथ घर भेजो।

तब कोटवालने इस कपटी श्यामल के साथ अपने एक सेवक को सब बातें समझा कर घर भेजा। कोटवाल के सेवक के साथ जाते हुए उस कपटी श्यामलने उस सेवक से कहा—' कि तुम वहाँ चलकर कोटवालने जो बातें कहने के लिये कहा है, वह सब कह देना, क्यों कि मैं बहुत वर्षों से तीर्थयात्रा करके इस समय लौटा हूँ। तीर्थयात्रा करते करते बहुत समय जाने से शायद मुझको वहाँ कोई भी नहीं पहचान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सके। इस प्रकार कोटवाल के सेवक से बातचीत करता हुआ वह कपटी श्यामल उस सेवक के साथ कोटवाल के घर पहुँचा। कोटवाल के घर पहुँचकर सेवकने उसकी स्त्री से कहा—' कि तुम्हारा यह भानजा श्यामल इस समय तीर्थयात्रा करके आया है। तथा श्यामल की माता से कहा कि तुम्हारा पुत्र यात्रा करके लौट आया है अतः उसका स्वागत करो।

कपटी श्यामल ने सेवक की यह सब बातें सुनकर छल से सब का परिचय प्राप्त कर लिया तथा मामी, माता, इत्यादि शब्दों से सम्बोधन करके पृथक् पृथक् सबको प्रणाम आदि करके सबका यथा योग्य विनय किया। श्यामल को बहुत दिन के बाद आया हुआ देख कर उसकी माता आदि अत्यन्त प्रसन्न हुई। कपटी श्यामल ने भी गंगा–जल आदि सब को प्रेम से दिया।

इसके बाद कोटवाल के सेवकने कोटवाल की स्त्री आदि से कहा कि ' कोटवालने मेरे मुख से तुम को कहलवाया है कि सब सम्पत्ति शीघ्र ही किसी गुप्त स्थान में छिपाकर रख दो, क्यों कि अभीतक बहुत तलाश करने पर भी चोर नहीं पकडा गया अतः यह नहीं जाना जाता है कि राजा रुष्ट होकर न जाने क्या क्या करेगा। इस प्रकार कोटवाल का सम्वाद सब को कहकर वह सेवक चला गया। और कोटवाल के पास जाकर कहा कि ' आपने जो कुछ करने तथा कहने के लिये कहा था, वह कार्य मैंने पूरा कर दिया है।

इधर कोटवाल की स्त्री इस कपटी श्यामल को बुलाकर अत्यन्त भयभीत होती हुई बोली कि ' तुम इसी समय शीघ्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही घर में जितनी सम्पत्ति है वह सब चुपचाप किसी गुप्त स्थान में रख दो, जिस से कोई भी मनुष्य उस गुप्त रहे हुए धन को न जान सके। एसा कहने पर कोटवाल की स्त्रीने भानजे (उस कपटी श्यामल) को घर में जितनी सम्पत्ति थी, वह सब दिखला दी।

तब वह कपटी श्यामल बोला—'हे मामी! तुम शीघ्र ही इस कोठी में प्रवेश कर जाओ। तुम अपनी साड़ी जल्दी ही मुझे दे दो। नहीं तो राजा साड़ी आदि जितनी अच्छी अच्छी वस्तुऐं हैं, निश्चय ही वे सब ले लेगा; क्योंकि जब दुष्ट हृदय राजा निर्दय होता है, तब जैसे अग्नि सब वस्तुओं को भस्म कर देता है, उसी तरह राजा भी सब धन का हरण कर लेता है।

इस प्रकार की उस की बातें सुनकर कोटवाल की स्त्री कोठी में प्रवेश कर गई और उसने अपनी साड़ी श्यामल को दे दी। इसी प्रकार उस कपटी श्यामल ने कोटवाल की बहन को अन्न भरने की गुण में प्रवेश करा कर एक कोणे में छोड दीया, और बोला कि—'यदि कोई मनुष्य आकर यहाँ कितना भी तूम लोगों को बुलावे, तो भी तुम लोग कुछ मत बोलना।'

कोटवाल के घर चोरी

तत्पश्चात् कपटी श्यामल पृथ्वी में रखा हुआ तथा घर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में सन्दूक में जितना धन था, वह सब लेकर तथा कावड में भरकर वहाँ से चुपचाप निकल पड़ा और दिया। वह वेश्या के घर पहुँचा और पूर्व के संकेत के अनुसार उसके दरवाजा खोलने पर घर में जाकर वेश्या को सब धन दिखलाने लगा। वेश्याने वह सब धन देख कर पूछा कि 'यह किसका है?' तब देवकुमार वेश्या को कहने लगा कि 'यह सब धन कोट-वाल का है। उसके घर से ही मैं चोरी करके लाया हूँ।'

यह बात सुनकर वेश्या अपने मनमें सोचने लगी कि यह देखते देखते चोरी करने वाला चोर ठीक है। यह तो कोटवाल के घर से भी इस समय इतना धन चुरा कर ले आया है। तो दूसरे के घर से द्रव्य का अपहरण करना इस के लिए क्या कठीन है?। जब वह यह सोच ही रही थी, तब उस चोर ने वेश्या से कहा कि 'यह जितना धन है, वह सब तुम ले लो।' तब वेश्या फिर अपने मन में विचारने लगी कि यह अपूर्व प्रकार का चोर है, क्यों कि इस में दान आदि देने का सद्गुण भी है। इस प्रकार का दानी चोर तो कहीं देखा ही नहीं गया।

इधर कोटवाल प्रातःकाल राजा के समीप पहुँचा और बोला कि 'मैं तीन दिन से भूख और प्यास से व्याकुल हूँ फीर भी नगर में सतत भ्रमण कर के चोर की तलाश करता रहा पर उसे नहीं पा सका। इसलिये मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार चोर के योग्य दण्ड मुझे देना चाहिए।'

इस प्रकार कोटवाल का भक्ति गर्भित वचन सुनकर राजा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रसन्न होकर बोलने लगा:—"हे कोटवाल! तुम अपने घर जाओ। इस में तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। चोर सब प्रकार से सुरक्षित तथा विषम स्थान में प्रवेश कर के चुपचाप मेरे सब वस्त्राभूषणों को लेकर रात्रि में कहीं चला गया, उसे तुम अत्यन्त भ्रमण तथा पूर्ण रीती से खोजने पर भी कैसे पकड़ सकते हो। इसलिये तुम मेरी तरफ से निर्भय होकर अपने घर जाओ। दुर्बलों का, अनाथों का, बालक, वृद्ध, तपस्वी इन सब व्यक्तियों का तथा अन्याय से जो कष्ट प्राप्त कर रहा हो, इस प्रकार के व्यक्तियों का राजा ही गुरु है। राजा की आज्ञा का पालन न करना, ब्राह्मणों की जीविका को नष्ट करना, अपनी स्त्री को पृथक् शय्या देना—ये सब बिना शस्त्र के वध कहे गये हैं। इसलिये तुम मेरी आज्ञा का पालन करने मात्र से निर्दोष हो।"

इस प्रकार की राजा की बात सुन कर कोटवाल प्रसन्न हुआ तथा राजा को प्रणाम कर के अपने घर पर पहुँचा। वहाँ अपनी स्त्री को सम्बोधित कर के बोला: "हे प्रिये! मुझको पाँव धोने के लिये जल दो।" कई बार ऐसा कहने पर भी जब उस की स्त्री ने कुछ उत्तर नहीं दिया, तब कोटवाल अपनी भगिनी–बहन सोमा से बोला कि 'इस समय तुम लोग मुझ से कुछ बोलते क्यों नहीं हो।' इस प्रकार पुनः पुनः कहने पर सोमा ने उत्तर दिया कि 'मैं इस समय बिना वस्त्र के ही बोरे के अन्दर रही हूँ।' तब कोटवाल ने पूछा कि 'भानजा श्यामल कहाँ है?' तब उन लोगों ने उत्तर दिया कि वह सब धन तथा हम लोगों के वस्त्र आदि लेकर गुप्त स्थान में रख कर स्वयं भी इस समय कहीं छिपा होगा। अतः तुम प्रथम अपने भानजे श्यामल के पास

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से शीघ्र ही सब वस्त्र लाकर हम लोगों को दो। जिस से वस्त्र धारण कर हम सब बाहर निकल सके।'

कोटवाल को मूर्च्छा

इस प्रकार की उन लोगों की बात सुन कर उन को पहनने के लिए वस्त्र देकर जब वह दूसरे घर में भानजे को खोजने लगा, तब देखा कि भानजा श्यामल तथा सब सम्पत्ति दोनों ही घर से गायब हैं। तब व्याकुल हृदय होकर कोटवाल अपने मन में सोचने लगा कि "वह महा धूर्त इस समय मेरी सम्पत्ति हरण कर के ले गया है और धर्म के बहाने से उस ने मुझे ठग लिया है।" इस प्रकार सोचता हुआ कोटवाल पृथ्वी पर गिर पड़ा और मूर्छा से बेहोश हो गया। उसके मूर्च्छित होते ही उसके सब परिवार के लोग बाहर निकल कर वहाँ आ पहुँचे तथा 'चोर सब धन छल से लेकर चला गया है' इस प्रकार का उन लोगों का शब्द घर के बाहर रहे हुए कोटवाल के सेवकोंने सुना तो विना समझे ही तथा 'चोर चोर' करते हुए वे सेवक राजा के समीप पहुँचे और राजा को कहा कि 'अपने घर में प्रवेश किये हुए चोर को कोटवाल ने पकड़ा है, परन्तु वह क्रूरात्मा बलवान् चोर कोटवाल का सामना कर रहा है। इसलिये चोर को पकड़ने के लिये आप शीघ्र व्यवस्था कीजिये। इस प्रकार की सेवकों की बात सुनकर राजा शीघ्र ही कोटवाल के घर पहुँचे। कोटवाल को दुःख से मूर्च्छित हो पृथ्वी पर चेष्टा रहित पड़ा हुआ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देखकर शीघ्र शीतोपचार करके उसको सचेतन किया।

चेतना आने पर कोटवाल बोला कि 'चोर ने मेरी सब सम्पत्ति को हर लिया है, अतः इस दुःख से मुझे मूर्छा आ गई थी। मारे जाने के समय में प्राणी को एक क्षण ही कष्ट होता है। परन्तु धन के हरण होने पर उसके पुत्र-पौत्र सब को कष्ट होता है। मेरा सब अभिमान इस समय नष्ट हो गया। इस लिये हे राजन्! अब मैं अन्यत्र चला जाऊँगा।' कोटवाल की बात सुनकर राजा बोला कि-"तुम इस का कुछ भी दुःख अपने मन में मत करो। वह चोर तो मेरा भी वस्त्राभूषण चुप चाप लेकर चला गया है। इसलिये तुम अपने मन में कुछ भी खेद मत करो लक्ष्मी चंचला है। वह किसी भी स्थान में स्थिर नहीं रहती है। क्योंकि:—

"दान देना, उपभोग करना और नष्ट हो जाना, ये तीन गति सम्पत्ति की होती हैं। जो दान नहीं करता अथवा उपभोग नहीं करता, उस का धन अवश्य ही नष्ट होता है।" X उस कृपण का धन बान्धवगण ले लेने की इच्छा करते हैं, चोर हरण कर लेते हैं, राजा लोग अनेक प्रकार का छल कर के ले लेते हैं, अग्नि एक क्षण में सब को भस्म कर

X दानं भोगो नाशस्त्रयो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥२४२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देता है, जल में सब डूब जाता है, पृथ्वी के अन्दर रखे हुअे द्रव्य को यक्ष लोग हरण कर ले जाते हैं या कुपुत्र सब धन को नष्ट कर देता है। इस प्रकार बहुत व्यक्तियों के आधीन में रहने वाला धन अत्यन्त निन्दनीय है। ”

इस प्रकार अनेक प्रकार की बातों से राजाने कोटवाल को आश्वासन देकर तथा उस को बहुत सा धन देकर राजा कुतूहलपूर्ण हृदय से अपने महल पहुँचा । अपने सचिव आदि परिवार से युक्त होकर सभा के बीच में बैठा और पुनः पान का बीड़ा अपने हाथ में लेकर बोला कि—“ इस सभा में कोइ ऐसा वीर है, जो चोर को पकड़ कर उसे मेरे पास लावें। जो ऐसा वीर हो वह इस समय मेरे हाथ से पान का बीडा ले ले। राजा की बात सुनकर राजा का मंत्री भट्टमात्र हर्षपूर्वक राजा के हाथ से पान का बीडा लेकर सभा में बोला कि—

भट्टमात्र की प्रतिज्ञा

‘ यदि मैं तीन दिन में चोर को पकड़ कर नहीं लाऊँ, तो हे राजन् ! मुझ को चोर का दण्ड देना। ’ इस प्रकार कह कर तथा राजा को प्रणाम कर सिर नीचा किये हुए वह भट्टमात्र सभा से एकाकी तलवार लेकर निकल गया। उसने द्विपथ, त्रिपथ, चतुष्पथ आदि स्थानों में चारों बाजु गली गली में चोर पकड़ने के लिये अपने दूतों को नियुक्त किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह स्वयं भी चुप चाप उज्जयिनी नगर में चोर को पकड़ने के लिये दिन रात भ्रमण करने लगा।

इधर चोर ने वेश्या से नगर के समाचार पूछे। वेश्या कहने लगी कि—'भट्टमात्र ने गत दीन सभा में प्रतिज्ञा की है कि यदि मैं तीन दिन में चोर को पकड़ कर आप के पास न लाऊँ तो मुझ को चोर का दण्ड देना। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके और राजा को प्रणाम करके तल्वार लेकर वह सभा से निकला है। स्थान स्थान में गुप्तरीति से दिन-रात भ्रमण करता हुआ विचक्षण भट्टमात्र किसी दिन यहाँ आ गया, तो मेरी क्या दशा होगी? क्योंकि वेश्या का वर, राजा, चोर, जल, मार्जार, बन्दर, अग्नि तथा मदिरा पीने वाले—ये सब कहीं भी विश्वास के योग्य नहीं होते। चोरी रूपी पापी वृक्ष इस लोक में बध और बन्धन रूप ही फल देता है। चोरी के पाप से परलोक में नरक का कष्ट अवश्य भोगना पड़ता है।'

वेश्या की यह बात सुनकर देवकुमार बोला कि 'तुम अपने मन में कुछ भी भय मत रखो। मैं इस प्रकार की चोरी करूँगा कि हम दोनों का कल्याण होगा तथा दोनों को सुख मिलेगा; क्योंकि—उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम ये छः गुण जिस में हैं, उस को देव भी नहीं जीत सकते। इसलिये तुम अपने मन में कुछ भी चिन्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मत करो। तुम क्यों डरती हो ? सब शास्त्रों में वेश्याऐं छल-कपट आदि में पारंगत सुनी जाती हैं। वेश्या एक तरफ रोती है और दूसरी तरफ मुख से हँसती भी रहती है। वह जैसा करना चाहती है, वैसा ही अपना स्वरूप भी बना लिया करती है। खदिर के बीटक खाने से लाल हुए होठ और दाँत की लाली कहीं नष्ट न हो जाय इस भय से वेश्या पिता के मरने पर भी हा तात! हा तात! कह कर रोती है, 'हा पिता' कह कर वह नहीं रोती; क्योंकि 'प' वर्ग का उच्चारण होठ से होता है, इसलिये पिता शब्द कहने में उसे अपने होठ की लालिमा नष्ट होने की आशंका रहती है। इसलिये तुम जरा भी न डरो। शास्त्र में सुना गया है कि राजा लोग मुख से ही दुष्ट होते हैं। मैं किसी के भी समीप रह कर चुपचाप चोरी करूँगा; उसे राजा बहुतसा धन देकर उसका सत्कार करेगा।'

तब वेश्या प्रसन्न होकर बोली कि 'तुम धन्य हो तथा अत्यन्त निर्भय हो; क्यों कि इस प्रकार के संकट उपस्थित होने पर भी तुम्हें कुछ भी भय नहीं होता। जो धैर्यवान् है, वह कितने भी कष्ट में रहेगा परन्तु उसका साहस नष्ट न होगा। जैसे अग्नि को कोई अधोमुख कर देता है तो भी उसकी शिखा तो सदा ऊर्ध्व मुखी ही रहती है।'

वेश्या की यह बात सुनकर वह चोर बोला कि-'मैं नगर में जाऊँगा। जब रात में आकर मैं दरवाजा खटखटाऊँ तब तुम शीघ्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खोल देना। धन प्राप्त हो अथवा न हो, चोर लोग रात्रि में ही अपने घर में आजाते है।' वेश्या ने कहा 'रात में जब तुम आकर दरवाजा खटखटाओगे तब मैं शीघ्र ही खोल दूँगी।'

वेश्या के इस प्रकार कहने पर देवकुमार रूपी चोर निर्भय होकर नगर देखने के लिये वेश्या के घर से निकल कर अदृश्य रूप से समस्त नगर में भ्रमण करता हुआ उसने भट्टमात्र को अत्यन्त उदास तथा चिन्तित देखा भट्टमात्र को निरंतर नगर में भ्रमण करते हुए तीसरे दिन की सन्ध्या हो गई।

उस रात्रि में जब सब लोग अपने अपने घर में सो गये, तब देवकुमार गाँव के बाहर के भाग में हेड–बेडी में अपने दोनों पाँवों को फँसा कर निर्भय होकर स्थित हो गया।

भट्टमात्र को मिलना

गुप्त रूप से समस्त नगर में भ्रमण करके आगे बढ़ते हुए भट्टमात्र को देख कर देवकुमार बोलाः—'हे महा बुद्धिमान्! नरोत्तम! भट्टमात्र! इतनी शीघ्रता से इस रात्रि में कहाँ जा रहे हो? और क्या प्रयोजन है?' पीछे से आई हुई इस आवाज को सुनकर भट्टमात्र चकित होगया और वापस लौट कर आया। बेड़ी में फँसे हुए व्यक्ति को देख कर वह बोलाः—"तुम कौन हो? तथा तुम्हें इस बेड़ी में कौन फँसा गया है?"

देवकुमार ने कहाः—"क्या बताऊँ, बिना किसी अपराध के ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा ने निर्दय होकर इस बेड़ी में मुझ को डाल दिया है। तुम देखते हो कि मैं अत्यन्त दीनता से युक्त कितने कष्ट से इसमें स्थित हूँ।"

उसकी बात सुनकर अमात्य–भट्टमात्र बोलाः–"मैंने राजा के आगे प्रतिज्ञा की है कि मैं चोर को अवश्य पकड़ूँगा। परन्तु उस को अभीतक कहीं नहीं पाया। न ऐसा भी सुना गया कि वह अमुक स्थान पर रहता है। इसलिये इस समय मेरे मन में अत्यन्त चिन्ता तथा दुःख है; क्यों कि राजा लोग किसी भी मनुष्य के हित–चिन्तक नहीं होते। इसलिये में अत्यन्त व्यग्र हूँ।"

भट्टमात्र की ये बातें सुन कर चोर बोला कि यदि मुझ को कई गाँव पुरस्कार में दिलाओ तो मैं उस चोर के पकड़ने का उपाय बताऊँ। भट्ट-मात्र ने कहा कि 'यदि तुम चोर को दिखलाओ तो तुमको राजासे कई गाँव पुरस्कार में दिला दूँगा।' वह बेड़ी में स्थित पुरुष बोला–"मैं कुंभकार का पुत्र हूँ। मेरा नाम भीम है। मैं दैव योग से उस चोर को मिला था। वह चोर मुझ से कहने लगा कि यदि तुम मेरे साथ नगर में आओगे तो तुम को मैं चोरी करके प्रचुर धन दूँगा। इस के बाद लोभ से मैंने उस चोर के साथ इस नगर में बहुत भ्रमण किया। परन्तु उस चोर ने मुझको कुछ भी नहीं दिया। कहा भी है कि 'क्रोध प्रेम का नाश करता है, अहंकार विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सर्व का विनाश करने वाला होता है। इसलिये उस चोर की संगति से इस समय राजाने मुझको चोर समझ कर इस हेड–बेड़ी में रख दिया है। मैं उसकी संगति से अत्यन्त दीन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हूँ। आम और नीम दोनों का मूल एकत्रित कर देने से वृक्ष होता है, परन्तु आम का सुस्वाद नष्ट होता है, क्यों कि उस में नीम के समान कड़वापन आजाता है। इसलिये दुर्जन का संसर्ग बुद्धिमानों को छोड़ देना चाहिये। दुर्जन के संसर्ग से सतत विपत्ति ही आती है। परन्तु यह भी निश्चय है कि जो कुछ भाग्य में लिखा हुआ है, उसका परिणाम सब लोगों को भोगना ही पड़ता है। यह जानकर बुद्धिमान् लोग विपत्ति होने पर भी कायर नहीं होते। इसलिये मैं भी दुर्जन के संसर्ग से विपत्ति प्राप्त कर के भी धैर्य पूर्वक सहन करता हूँ। क्या करूँ, दूसरा कोई उपाय नहीं है। कल वह चोर यहाँ आया था, उस को देख कर मैंने कहा कि तुम्हारी संगति से ही मैं ने इस अत्यन्त दुःखद अवस्था को प्राप्त किया है। इसलिये इस महान् संकट से मेरा उद्धार करो। क्यों कि सच्चे मित्र की मैत्री कभी भी भंग नहीं होती। जैसे सूर्य और दिन दोनों की संगति अखंडित है। क्यों कि सूर्य के बिना दिन नहीं हो सकता और दिन के बिना सूर्य भी नहीं रह सकता। चन्द्रमा ऊपर रहता है और कुमुद बहुत नीचे दूरपर रहता है। इतनी दूरी पर रहने पर भी वह चन्द्रमा को देख कर हँसता है। हजारों युग बीतने पर भी दोनों मिल नहीं सकते परन्तु दोनों का स्नेह कभी भी कम नहीं होता। इसी तरह सच्चे मित्रों की मैत्री कभी नहीं घटती।"

इस प्रकार मेरी बातें सुन कर वह दुष्ट चोर बोला कि—'मेरे बाँयें हाथ में बहुत बड़ा फोड़ा निकल आया है। इसलिये मैं तुम को अभी इस बेड़ी में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से नहीं निकाल सकता।' तब मैंने चोर से कहा कि—'जब तक तुम्हारा हाथ इस रोग से अच्छा नहीं हो तब तक तुम मुझको रोज भोजन दे दिया करो। तब से वह रात्रि में आकर मुझ को भोजन दे जाता है। दिन होने पर वह अपने स्थान में गुप्त होकर निवास करता है। उस चोर ने मुझको अपना स्थान नहीं दिखाया है। वह नगर के अन्दर कभी दृश्य शरीर होकर तथा कभी अदृश्य शरीर होकर निवास करता है। वह बड़े बड़े सेठ तथा राजा के घरों में ही पूर्ण चोरी करता है। वह चोर अभी आयेगा। इसलिये तुम एकान्त में गुप्त होकर चुप चाप बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करो।"

बेड़ी में स्थित पुरुष की यह बात सुन कर अमात्य भट्टमात्र अत्यन्त हर्ष से एकान्त में चुप चाप गुप्त होकर बैठ गया। बहुत देर तक बैठ रहने पर भी जब चोर नहीं आया, तब भट्टमात्र ने बेड़ी में स्थित पुरुष से कहा कि 'तुम्हारा मित्र अभी तक क्यों नहीं आया?'

भट्टमात्र को बेडी में फँसाना

बेड़ी में स्थित पुरुष बोला कि 'चोर तुमको जान गया है, इसलिये वह तुमको देख कर बार बार पीछे लौट जाता है। उसको बहुत प्रपञ्च कर के बड़े कष्ट से पकड़ सकोगे। अतः तुम इस बेड़ी में अपना पाँव फँसाकर स्थित होजाओ। मैं दूर चला जाता हूँ। यदि तुम को कोई मनुष्य आकर कुछ भोजन दे, तो तुम खूब दृढ़ता से उसका हाथ पकड़ लेना, जिससे वह चोर कहीं भाग न सके।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि तुम हाथ न पकड़ोगे तो वह चोर छल कर के शीघ्र अदृश्य होकर यहाँ से भाग जायेगा।

बेड़ी में स्थित पुरुष की यह बात सुनकर अमात्य भट्टमात्र बोला कि–' हे मित्र ! यदि इस प्रकार उस चोर को पकड़ सकें, तो तुम चोर को पकड़ने के लिये मुझ को इस बेड़ी में डाल दो।

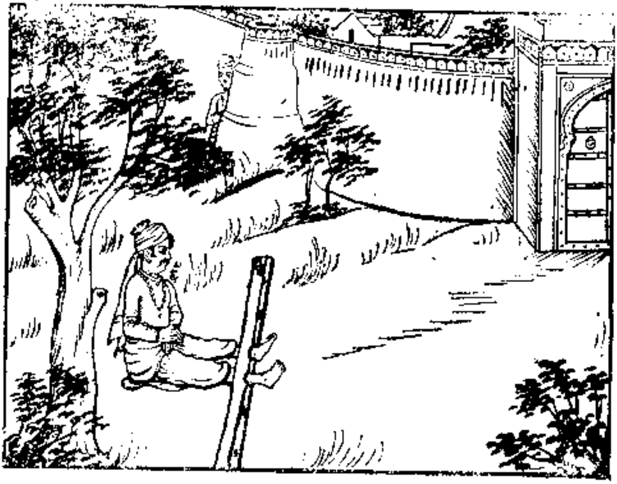

तब भट्टमात्र को बेडी में डाल कर तथा एकान्त में कुछ देर रह कर वहाँ से चुप चाप निकल कर वह छली चोर पूर्ववत् वेश्या के घर चला गया।

इधर अमात्य भट्टमात्र चोर के आगमन की आशा में रात भर उस बेड़ी में फँसा हुआ पडा रहा। जब प्रातःकाल होने लगा, तब निराश होकर अत्यन्त व्याकुल चित्त से दुःखी होकर बोला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि 'हे नरोत्तम ! आओ और इस समय मुझ को इस वेडी में से निकाल दो' इस प्रकार बार बार बोलता हुआ वह बुद्धिमान् भट्टमात्र अपने मन में विचार कर अत्यन्त लज्जित हुआ। भट्टमात्र सोचने लगा कि 'छली दुरात्माने छल कर मुझ को इस में डाल दिया और स्वयं यहाँ से निकल गया। अब मैं प्रातःकाल में अपना मुख लोकों को कैसे दिखाऊँगा ?' इस प्रकार बार बार सोचता हुआ उदासीनता से खिन्न अपने मुख को वस्त्र से आच्छादित कर अत्यन्त दुःखीत हृदय से वहीं पर स्थित रहा।

वस्त्रादि चिह्नों से भट्टमात्र-को पहचान कर लोग बोल ने लगे कि 'इस समय इस को अपने ही कर्तव्य का यह फल मिला है, क्यों कि जो कर्म किया हुआ है उसका नाश कोटी कल्प बीत जाने पर भी नहीं होता। जो कुछ-सुकर्म अथवा दुष्कर्म किया जाता है, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है।'

प्रायः सब लोग यही बोलते है कि राजा के जो प्रधान तथा सचिव लोग होते हैं, उनको किसी भी स्थान में किसी भी समय में शुभ नहीं होता। जो राजा का हित साधन करता है वह लोक में प्रजा के द्वेष को प्राप्त करता है। तथा जो प्रजा हित साधन करता है उसका राजा लोग त्याग करते हैं। इस प्रकार यह एक बहुत बड़ा विवाद है। ऐसी स्थिति में राजा और प्रजा दोनों का हित साधन करने वाला कार्यकर्ता संसार में दुर्लभ ही है।

इस प्रकार बोलते हुए लोगों के मुख से भट्टमात्र की यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दयनीय दशा सुनकर 'हर' नामक एक अमात्य शीघ्रता से राजा के समीप जाकर बोला:—"हे राजन्! मैं आपको प्रातःकालीन प्रणाम करता हूँ। आप छोटे और बड़े दोनों को समान दंड देने वाले हो गये हैं। क्या बबूल और आम, बगुला और हँस, गधा और हस्ती, सज्जन तथा दुर्जन इन सब को आप समान समझते हैं? यदि अपना सेवक कोई अपराध करता है, तो स्वामी उसको घर के अन्दर उचित दंड देता है। दुर्जन के दंड के समान सब लोगों के सम्मुख नहीं।"

अमात्य हर की बात सुनकर राजाने कहा कि "मैं ने किसको अनुचित दंड दिया है, सो बतलाओ।" तब वह मन्त्री बोला कि—'भट्टमात्र को तुमने बेड–हेडी में क्यों डलवाया है? यदि सन्तान कोई अनिष्ट कार्य करती है, तब भी पिता उस पर अच्छा वात्सल्य रखता है। उसको अनुचित दंड नहीं देता।' अमात्य हर की बात सुन कर राजा भट्टमात्र के पास गया और उस दशा में उसको देखा तथा शीघ्र ही भट्टमात्र को बेडी से बाहर निकाल कर पूछा कि—'हे भट्टमात्र! तुम को इस समय यह कष्ट किस कारण से प्राप्त हुआ?' भट्टमात्र बोला कि 'मैं यह सब बात यहाँ सब के सामने नहीं कह सकता।'

भट्टमात्र की बात सुनकर राजाने सब कुछ कहने के लिए आग्रह पूर्वक उसे पूछा। तब भट्टमात्र ने रात्रि में जो कुछ हुआ था, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया। इसके अनंतर रात्रि में चोरने जो कुछ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किया था वह सब स्मरण कर भट्टमात्र ने अपने चित्त में अत्यन्त खेद का अनुभव किया। काल बहुत बलवान् है। काल ही सन्मान कराने वाला है। तथा काल ही पुरुष को याचक या दाता बनाता है। चन्द्रमा में कलंक लगाने वाला और कमल की नाल में कंटक लगाने वाला भी काल ही है। समुद्र के जल को अपेय करने वाला, पंडित को निर्धन करने वाला, प्रिय जन का वियोग कराने वाला, सुन्दर पुरुष को कुरूप बनाने वाला, धनाढ्य मनुष्य को कृपण बनाने वाला तथा रत्न जैसे उत्तम पदार्थ को दोष युक्त बनाने वाला एक काल ही है। चन्द्रमा और सूर्य का राहू से पीड़ित होना, हस्ती और सर्प का बन्धन, तथा बुद्धिमान् पुरुषों की दरिद्रता, ये सब देख कर यही निश्चय होता है कि—'विधि ही सब से बलिष्ठ है।' इसलिये भट्टमात्र जैसा बुद्धिमान् पुरुष भी चोर से ठगाया गया।

राजा का भट्टमात्र को आश्वासन

भट्टमात्र से चोर का वृत्तान्त सुनकर राजा ने पूछा कि 'चोर कैसा है? उसका स्वरूप कैसा है? अवस्था कितनी है?' मंत्री भट्टमात्र ने उत्तर दिया कि–'हे राजन्! उसका रूप तथा देह अतीव सुन्दर है। वह अत्यन्त मधुर भाषी है। उसकी अवस्था छोटी है।' यह बात सुनकर राजा बोला कि 'धूर्त लोग तथा चोर इस प्रकार के ही होते हैं। जो बराबर अपनी वाणी आदि से लोगों को सुख देकर वञ्चना करते हैं। उन धूर्त लोगों का मुख कमल–पत्र के समान सुन्दर और कोमल होता है तथा वाणी चन्दन के समान शीतल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती है। परन्तु हृदय उनका कैंची के समान होता है, जो समय पाकर लोगों को कष्ट देता है। यही धूर्त का लक्षण है। दुर्जन से बोला गया अत्यन्त मधुर वचन भी अकाल में खिले हुए पुष्प के समान अत्यन्त भय का उत्पादक होता है। चोर, चुगली करने वाला, दुर्जन, भ्रष्ट, वेश्या, अतिथि, नर्तक, धूर्त और राजा--—ये सब दूसरों के दुःख को नहीं समझते।

अतः हे भट्टमात्र ! इस में तुम्हारा दोष नहीं है। उस दुष्ट चोर ने तो कोटवाल को तथा मुझ को भी दुःख सागर में डूबा दिया है। तुम ने सब प्रकार से मेरी आज्ञा का पालन किया है। परन्तु कार्य सिद्ध नहीं हुआ, इस के लिये तुम अपने मन में जरा भी खेद मत करो। पतिव्रता स्त्री अपने पति की, सिपाही राजा की, शिष्य अपने गुरु की, पुत्र अपने पिता की आज्ञा का यदि उल्लंघन करे तो वह अपने व्रत को खंडित करता है। तुमने मेरी आज्ञा का पालन करके अच्छा ही किया है। इसलिये खेद मत करो।'

इस तरह राजा ने भट्टमात्र को आश्वासन दिया तथा अपने चित्त में चोर के वृतान्त का स्मरण 'करता हुआ अपने निवास--स्थान पर आ गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उन्नीसवाँ प्रकरण

तीव्र बुद्धिका परिचय

वेश्या के घर में स्थित उस चोर ने एक दिन वेश्या से पूछा—' नगर में इस समय क्या क्या बातें हो रही हैं। राजा क्या क्या करता है ? नगर में क्या चर्चा चल रही है ?'

चोर के ऐसा पूछने पर वेश्या बोली कि ' राजा ने भट्टमात्र आदि मंत्रीवरों को बुला कर पूछा कि 'आप लोग विचार कर बतलाइये कि यह चोर किस प्रकार पकड़ा जायगा ?' तब भट्टमात्र आदि मंत्रीवरों ने कहा —" हे राजन् ! यह नगर बहुत बड़ा है। वह चोर किसी के घर में आश्रय लिये हुए है और छल से बराबर नगर में चोरी करता रहता है। इसलिये नगर में ढोल बजवाना चाहिये कि जो कोई पुरुष या स्त्री चोर को पकड़ेगा उस को राजा आठ लक्ष्य द्रव्य उत्पन्न करने वाले अनेक नगर पुरस्कार में देगा।' भट्टमात्र की यह बात सुनकर राजा ने कहा कि ऐसा ही किया जाये।

नगर में पटह बजवाना

मंत्रियों ने नगर में सर्वत्र पटह बजवाया। वेश्याओं के मोहल्ले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में जब पटह बजने लगा तब चार प्रमुख वेश्याओं ने परस्पर विचार किया कि अपने घर में प्रतिदिन कितने हि लोग आते हैं। उन में से किसी एक को पकड़ कर "यही चोर है", एसा कह कर राजा को अर्पण कर देंगे। इस से राजा हम लोगों पर प्रसन्न होगा और हम सब प्रकार से धनादि प्राप्त कर सुखी हो जावेंगी।

वेश्याओं का पटह स्पर्श

इस प्रकार परस्पर विचार कर उन्हों ने पटह का स्पर्श किया। यह देखकर राजा तथा भट्टमात्र आदि मंत्री अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। क्यों कि अपना अभिलषित जितना कार्य है वह सब यदि सिद्ध हो जाता है, तो मनुष्य अपने मन में चन्द्रमा के उदित होने से समुद्र की तरह प्रसन्न होता है।

तत्पश्चात् मंत्रियों ने उन वेश्याओं को राजा के समीप उपस्थित किया। राजा के समीप जाकर वेश्याअें बोली—कि 'यदि आठ दिन के अन्दर हम लोग चोर को नहीं पकड़े तो हम लोगों को आप चोर का दण्ड देना।'

वेश्याओं की बात सुनकर मंत्री लोग कहने लगे कि 'वेश्याअें बड़ी बुद्धिशाली होती हैं। वे असाध्य कार्य को भी साध्य कर देती हैं। इसलिये ये सब चोर को अवश्य पकड़ेगी।' राजा के आगे इस प्रकार प्रतिज्ञा कर के वेश्याअें अपने घर गई और प्रतिदिन चोर को पकड़ने का उपाय करने लगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नगर के लोग अपने अपने घरों में अपने अपने लड़कों से बोले कि वेश्याओं ने चोर को पकड़ने के लिये पटह का स्पर्श किया है, इस लिये वे कदाचित् किसी अन्य पुरुष को छल से राजा के समीप ले जाकर के कह देंगी कि यह चोर है तब तुम लोगों की क्या गति होगी ? अतः सब कोई सावधानी से रहना। क्योंकि वेश्याऐं अनेक प्रकार की कुटिलता और वञ्चना में तत्पर रहती हैं। उनके मन में रहता कुछ और ही है, और बोलती कुछ और ही है, और करती कुछ और ही हैं। इस प्रकार वेश्या कभी भी सुख देने वाली नहीं होती।

ऐसी अनेक बातें स्थान स्थान पर नगर में हो रही हैं। इसलिये छल छद्म-कपट के घर समान एवं कपट करने में तत्पर ये दुष्ट वेश्याऐं कदाचित् जान जायँ कि तुम मेरे घर में हो, तो तुम्हारा और मेरा बहुत ही अनिष्ट होगा'

काली वेश्या की यह बात सुन कर चोर बोला कि 'तुम अपने मन में जरा भी डर मत रक्खो। मैं बुद्धि से ऐसा काम करूँगा जिससे हम दोनों को सुख मिलेगा। एक बात बतलाओ कि उसकी प्रतिज्ञा के कितने दिन बीते हैं ?।'

चोर के ऐसा पूछने पर वेश्या बोली:—"कल प्रातःकाल आठवाँ दिन होगा।"

देवकुमार का सार्थवाह बनना

देवकुमार ने वेश्या से सब वृत्तान्त सुन कर सेठ का रूप धारण किया और नगर में गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नगर के बाहर थोडे दूर कीसी स्थान पर जाकर देवकुमार ने बीस बोरे खरीदे, उस में उसने गुप्त रूप से गोबर, राख, धूल आदि भर दिया तथा कीसी व्यक्ति से गाड़ी किराये माँगी। गाड़ीवाले ने पूछा कि 'तुम कितना किराया दोगे?'

सेठ रूप चोर बोला 'मैं अवन्ती पहुँचने पर प्रत्येक बोरी का दस दस रूपया किराया दूँगा।'

तत्पश्चात् वह चोर सब बोरी को गाड़ी में लाद कर उसका स्वामी बन कर रात्रि में अवन्ती के राज मार्ग पर पहुँचा। गाड़ी के चलते हुए बैलों के घुघरु की मधुर आवाज सुन कर लोग बोलने लगे कि–कोई बड़ा धनी सेठ नगर में आया लगता है?

उस सार्थवाह रूप चोर ने गाँव के बहार मुख्य वेश्या के घर के समीप में ही बोरों को गाड़ी से उतार कर रख दिया और मद्य बेचने वाले के घर जाकर मद्य से भरे हुए दो घड़े खरीद लाया। वैद्य के घर जाकर उसकी दुकान से निश्चेष्ट अवस्था करने वाला तथा मधुर स्वर करने वाला चूर्ण की दो पुड़िया खरीद कर वह सार्थवाह–चोर वहाँ से चला। रेशमी वस्त्र बेचने वाले की दुकान से बहुत अच्छे अच्छे वस्त्र तथा माली के घर जाकर अच्छे अच्छे सुगन्धित बहुत से फूल खरीद लाया। और एक आदमी को मुख्य वेश्या के घर भेजा।

वह आदमी वेश्या के घर जाकर बोला–'यहाँ एक बहुत धनाढ्य सेठ आया है। वह बहुत प्रकार से दान देता है। यदि तुम लोग उस के आगे अच्छा नृत्य करोगी तथा मधुर ध्वनि से गीत गाओगी तो तुम लोगों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को वह सेठ अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे वस्त्र, द्रव्य आदि चीजें देगा।'

उस आदमी की यह बात सुन कर उन वेश्याओं ने एकान्त में परस्पर विचार किया कि 'इस समय हम लोग वहाँ चले, पहले उस से धन ले लेंगे, पीछे तुम चोर हो, ऐसा कह कर उस का सब धन लेकर राजा के समीप ले जायेंगे। तब हमें राजा से आठ लाख द्रव्य उत्पन्न करने वाले अनेक गाँव पुरस्कार में मिलेंगे।'

ये सब बातें सोच कर उन वेश्याओं ने उस आदमी से कहा 'हम लोग बहुत शीघ्र तैयार होकर नृत्य के लिये आती हैं। तुम इस समय जाओ।' वेश्यायें आने की बात उस आदमी से जानकर उसको उचित द्रव्य दिया और इकठे हुए सब मनुष्यों को हटा दिया तथा सब बोरे एकत्र कर के वह स्वयं वहाँ बैठ गया।

वेश्याओं का नृत्य तथा मद्यपान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर वेश्याऐं दीपक आदि सब सामग्री लेकर नृत्य करने के लिये उस सेठ के समीप उपस्थित हुई और सार्थवाह से ही पूछा कि 'सेठ कहाँ है? और अन्य सब व्यक्ति कहाँ गये हैं?'

वेश्याओं के पूछने पर सेठ बोला कि 'दूसरे सब लोग अपने अपने कार्य के लिये नगर में चले गये हैं। मैं स्वयं ही सार्थवाह हूँ। तुम लोग इस समय मेरे आगे अच्छा नृत्य करो। मैं तुम लोगों को पुरस्कार में बहुत सा धन दूँगा।'

फिर उन वेश्याओं ने क्रमशः अच्छा नृत्य किया। तब उस सार्थवाह ने उन वेश्याओं को अच्छे अच्छे वस्त्र पुरस्कार में दिये। अतः प्रसन्न होकर उन वेश्याओं ने पुनः सार्थवाह के आगे अनेक प्रकार का नृत्य—गान किया। दूसरी बार नृत्य के अन्त में वह सार्थवाह बोला कि 'यदि तुम लोगों की मद्य पीने की इच्छा हो तो, मैं इस समय तुम लोगों को पीने लिये मद्य दूँ।' तब उन वेश्याओं ने कहा कि 'हमें मद्य से अच्छी कोई दूसरी चीज नहीं मालूम होती। इसलिये हमारे जैसे मनुष्यों के लिये तो मद्य अत्यन्त अभीष्ट वस्तु है।'

वेश्याओं की यह बात सुनकर उस सार्थवाह ने उन वेश्याओं को बहुत तेज मद्य पीने के लिये दिया। तथा उन वेश्याओं ने मधुर ध्वनि करने वाले चूर्ण से मिश्रित मद्य का पान किया तथा अत्यन्त मधुर ध्वनि से गान करने लगी, जो सुनने में कानों को अत्यन्त सुख देता था। उन वेश्याओं के मधुर स्वर का गान सुन कर तथा मनोहर नृत्य देखकर वह सार्थवाह प्रसन्न होकर वस्त्र तांबुलादि युक्त योग्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरस्कार देता था। इस प्रकार पुरस्कार देने वाले उस सार्थवाह के सामने वेश्याऐं अत्यन्त प्रसन्न हो कर उसके आगे फिर से सर्वोत्तम नृत्य करने लगीं। फिर कुछ समय बाद सार्थवाह ने कहा:—"तुम लोगों को पुनः मद्यपान करने की इच्छा होती है ?"

तब वेश्याओं ने कहा:—"हम लोगों को इस प्रकार की सर्वोत्तम मदिरा अत्यन्त प्रिय है।"

तब उस सार्थवाह ने निश्चेष्ट अवस्था करने वाला चूर्ण से मिश्रित मदिरा उन वेश्याओं को पीने के लिये दी। उन वेश्याओं ने पूर्ववत् यथेष्ट मदिरा पी और पुनः नृत्य करने लगी।

वेश्याओं का अचेतन हो जाना

इस प्रकार नृत्य करती हुई वे वेश्याऐं कुछ ही समय के अनन्तर मूर्च्छित हो गई तथा निश्चेष्ट काष्ट समान चेतना रहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। जिस प्रकार स्त्री विधवा होने ष्ट होजाती है, उसी प्रकार अत्यन्त बुद्धिमान व्यक्ति भी मद्य पीकर नष्ट होजाता है। पापी व्यक्ति मदिरा पान कर के जब चेतना से रहित हो जाते , तब वे जननी के साथ ही प्रिया के समान व्यवहार करने लगते है और प्रिया के साथ माता के समान व्यवहार करते हैं। मदिरा पीने से जिस की चेतना लुप्त हो गई है, वह व्यक्ति अपना तथा पराया कुछ हीत भी नहीं समझता है। वह उन्मत्त होकर अपने को कभी स्वामी समझने लगता है, कभी अपने को सेवक समझता है। मदिरा पान कर के-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोग बिलकुल अचेत होकर मृतक के समान बाजार में मुह खोले सोजाते हैं, कुत्ते आदि उस मुख को विवर समझ कर उस में मूत्र आदि कर देते हैं। इसी प्रकार मद्यपान करके मत्त होकर लोग बाजार में नग्न ही सो जाते हैं। चेतना रहित होजाने के कारण अनायास अपनी गुप्त बातों को प्रगट कर देते हैं। जिस प्रकार दीवाल–भित्ति आदि पर बनाये हुए अनेक प्रकार के मनोहर चित्र काजल के लेप से नष्ट होजाते हैं। उसी प्रकार मदिरा पान करने से कान्ति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी आदि सब कुछ नष्ट होजाते हैं। मदिरा पान कर के लोग भूत, पिशाच, आदि से पीडित व्यक्ति के समान नृत्य करने लगता है, शोकग्रस्त के समान अनर्थक बहुत बकता है तथा दाह, ज्वर आदि से पीडित व्यक्ति के समान पृथ्वी पर इधर–उधर लेटने लगता है।

कूप के घटी यंत्र से बाँधना

इस प्रकार ये वेश्याऐं भी मदिरा का पान कर के चेतना रहित होगयीं। उन लोगों के चेतना रहित होजाने पर उनके सब वस्त्र तथा आभूषण और स्वयं जो धन दिया था वह सब उस सार्थवाह रूप चोर ने ले लिया और पास के उद्यान में महादेव के कूप में लगे हुए अरघट की माला से घटों को उतार कर चेतना शून्य उन वेश्याओं को नग्न ही रज्जु से बाँध दिया। किसी दूसरे स्थान से दहीं लाकर उन वेश्याओं के मुख में लगा दिया। फिर वह चोर पूर्ववत् अपने स्थान को चल आया। वहाँ पहुँच कर उस काली नाम की वेश्या को उसने सब आभूषण तथा वस्त्र दिखलाये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काली यह सुन कर सोचने लगी कि निश्चय ही यह लोगों के मुख के सामने से चोरी करने वाला चोर है, क्यों कि इसने इन वेश्याओं को भी अनायास ही ठग लिया। कहा भी है–' जो अवश्य होनेवाला भावी है, वह बड़ा आदमी हो या छोटा सबको होता ही है, नहीं तो नीलकंठ महादेव जो विष को भी पी गये, वह नग्न क्यों रहते हैं ? विष्णु जो संसार के रक्षक हैं, उनकी शय्या सर्प की क्यों है ? चन्द्रमा और सूर्य जैसे प्रकाश करने वाले पदार्थ भी ग्रह से पीडित होते हैं ? बड़े बड़े हस्ती, महा भयानक सर्प और आकाश में उड़ने वाले विशालकाय पक्षी भी बन्धन को प्राप्त करते हैं। बड़े बड़े बुद्धिमान् मनुष्य भी दरिद्री देखे जाते हैं। इस ध्यान से यही निश्चय होता है कि भाग्य बहुत ही बलवान् है।' इसीलिये छल कपट आदि में निपुण वेश्यायें भी इस अवस्था को प्राप्त हुई।

प्रातःकाल महादेव को स्नान कराने के लिये पूजारी महादेव के मन्दिर में उपस्थित हुआ और कूप में जो घटीयन्त्र लगा हुआ था, उसको चलाने लगा, परन्तु वह घटीयन्त्र नहीं चला। उस जलयन्त्र को स्थिर देखकर उसका कारण–जानने के लिये ज्योंही वह कूवे में नीचे देखता है, वैसे ही वहाँ उसने चार नग्न स्त्रियों को अत्यन्त निश्चेष्ट अवस्था में पृथ्वी पर लेटी हुई देखी। यह देख कर उस पूजारीने अपने मन में सोचा–कि ये सब शाकिनी अथवा दुष्ट पिशाचिनी हैं ? या शक्ति अथवा शिकोतरी हैं ? या महामारी व्यन्तरी या राक्षसों की स्त्री हैं ? उन सब की अत्यन्त भयानक आकृति देखकर डर से काँपता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ वह पूजारी दौडता हुआ महाराजा विक्रम के समीप पहुँचा और बोला कि–'शम्भू का कूप और घटीयन्त्र अभी शक्तियों से भरा हुआ है। इसलिये हे राजन्! वहाँ चलकर शान्त–क्रिया कीजिये, नहीं तो दुष्टाशय यह सब शक्तियाँ जग उठेंगी, तो नगर में लोगों का बड़ा अनिष्ट करेंगी।' क्यों कि जो अनागत विधाता है और जो हाजर जवाबी बुद्धिवाला है यह दोनों दुनिया में शांति से नींद लेने वाले है कि जिसका भविष्य नष्ट हुआ ÷

राजा आदिका आकर छुडाना

उस पूजारी की यह बात सुन कर राजा अत्यन्त आश्चर्य युक्त होकर परिवार (मंत्री आदि) सहित महादेव के मन्दिर के समीप पहुँचा और वहाँ उन चारों वेश्याओं को देखा तथा देखकर मुख फेर लिया। जो उत्तम प्रकृति के पुरुष है वे दूसरे की स्त्री को नग्न देखकर वैसे ही मुख फेर लेते हैं जैसे वर्षा करते हुए मेघ को देखकर बड़े बड़े वृषभ मुख फेर लेते हैं। उन सब को देख कर मंत्री लोग बोले कि "हे राजन्! ये सब शक्तियाँ नहीं हैं किन्तु जो चार वेश्याऐं आपके आगे प्रतिज्ञा करके गई थी ये हैं। हम लोगों को ऐसा ही लगता है। किसी छली ने कूप के अरघट में इन लोगों को बाँध दिया है। शायद उसी चोर ने इन लोगों की ऐसी दुर्दशा की हो ऐसा ज्ञात होता है।"

÷अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिश्च यः।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति ॥ ४१३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद राजा ने अन्य स्त्रियों को बुलवा कर इन वेश्याओं को अरघट से नीचे उतरवाया और वस्त्र आदि पहनवा कर शक्कर मिलाया हुआ दूध पीलाया। कुछ देर के बाद उन लोगों के सचेतन होने पर राजा ने पूछा कि तुम लोगों की ऐसी दुर्दशा किसने की है? तब वेश्याओं ने रात्रि का समस्त वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया।

राजा यह सब सुन कर बोला कि 'यह वही छली चोर है, जो तुम लोगों की ऐसी दशा करके रात्रि में कहीं चला गया। तुम लोग मुझ से कुछ भी भय मत करो।' ऐसा कह कर राजा अपने स्थान पर चला गया। मंत्री लोग, वेश्याऐं तथा अन्य लोग भी चोर का यह आश्चर्य करने वाले वृत्तान्त पर विचार करते हुए अपने अपने स्थान को गये।

फिर एक दिन काली वेश्या के घर में बैठा हुआ वह चोर वेश्या से पूछने लगा कि नगर में अभी क्या क्या वार्ता चल रही है? भट्टमात्र आदि मंत्रियों से युक्त राजा इस समय क्या करता है?

तब वह वेश्या चोर के आगे एकान्त स्थान में कहने लगी कि—'राजा ने भट्टमात्र आदि मंत्रियों को बुलाकर कहा कि उस चोर ने उन वेश्याओं की बड़ी दुर्दशा की है। इसलिये इस प्रकार के पराक्रम वाले उस चोर को किस प्रकार पकड़ेंगे?' तब भट्टमात्र आदि मंत्रियों ने राजा के आगे कहा कि 'वह इसी नगर में किसी के घर में ही स्थित है, और बराबर अनेक प्रकार के रूप धारण कर के नगर में इस प्रकार चोरी करता है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्यूतकार कौटिक की प्रतिज्ञा

मंत्रियों की यह बात सुन कर कौटिक नामका द्यूतकार बोला:– " हे राजन् ! चोर को पकड़ने के लिये मुझ को आज ही आदेश दो तथा आपके जितने सेवक हैं वे लोग सब अपने अपने स्थान पर रहे। आपकी आज्ञा से अनायास ही मैं उस चोर को पकड़ लूँगा।"

कौटिक की यह बात सुन कर राजाने कहा कि 'हे कौटिक ! तुम ऐसी बात न करो, क्यों कि बड़े बड़े बलवान् देवताओं से भी वह चोर दुर्ग्राह्य है।' राजा के ऐसा कहने पर कौटिक बोला कि 'हे राजन् ! मैं आपका द्यूतकार सेवक हूँ। आपकी प्रसन्नता से वह चोर शीघ्र ही मेरे वश में आजायगा। राजा के आश्रय से विद्वान् उन्नति को प्राप्त होता है, मलयाचल पर्वत को प्राप्त करके चन्दन का वृक्ष बढ़ता है, अत्यन्त धवल आतपत्र, बड़े बड़े सुन्दर घोड़े और मदोन्मत्त हस्ती राजा के प्रसन्न होने से मिलते हैं। यदि मैं चोर को नहीं पकडूँ तो मेरा मस्तक मुंड करके तथा मुझको गधे पर चढ़ाकर अपने सेवकों के द्वारा नगर में घुमाना।'

कौटिक का आग्रह देख कर राजा ने 'एवमस्तु' कहा। तब द्यूतकार कौटिक अपने सेवकों से युक्त होकर चोर को पकड़ने के लिये चला।

वेश्या की यह बात सुन कर चोर बोला कि 'मैं नगर में जाऊँगा और रात्रि में लौटूँगा। चोर लोग धन प्राप्त कर के तथा बिना प्राप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किये भी रात्रि में ही घर लौट आते हैं। मैं द्यूतकार कौटिक से बड़ी सरलता से प्रत्यक्ष ही मिलूंगा तथा उसका कुछ चिह्न लेकर आऊँगा।'

फिर वह चोर अत्यन्त प्रसन्न होकर कौटिक को देखने की इच्छा से वेश्या के घर से निर्भय होकर निकला। अदृश्य होकर समस्त नगर में भ्रमण करता हुआ चतुष्पथ में आया और वहाँ पर कौटिक को देखा। वह चोर रात्रि में बड़ी बड़ी लम्बी जटा बनाकर तथा एक संन्यासी का रूप धारण करके सरोवर के तट पर स्थित चण्डिका देवी के मन्दिर में आकर बैठ गया।

इधर द्यूतकार कौटिक भी नगर में चारों तरफ भ्रमण करता हुआ चण्डिका देवी के मन्दिर में आया। मन्दिर में संन्यासी को बैठा हुआ देखकर उस को प्रणाम किया और बोला, 'हे योगी! इतनी लम्बी तथा ऐसी मनोहर जटा तुम्हारे सिर पर कैसे हो गई? क्या तुम नगर में सतत चोरी करने वाले चोर का स्थान जानते हो? क्योंकि रोगियों का वैद्य मित्र होता है, राजाओं का खुशामद वाले मित्र होता है। दुःख से संतप्त लोगों के मुनि लोग मित्र होते हैं, निर्धन मनुष्यों का ज्योतिषी मित्र होता है।'

कौटिक की ये सब बातें सुन कर वह संन्यासी बोला कि 'हे भद्र! यदि तुम अपने मस्तक का मुंडन कराकर इस चूर्ण का मस्तक में लेप कर के मैं जो मंत्र देता हूँ, उस का कण्ठ पर्यन्त जल में स्थित हो कर दो घड़ी दिन बीते वहाँ तक जप करो और मैं यहाँ बैठ कर विधिपूर्वक ध्यान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता हूँ, जिससे तुम उस चोर का स्थान शीघ्र ही जान जाओगे और मेरी जटा के समान तुम्हारी भी बड़ी बड़ी लम्बी जटा हो जायेगी। दो घड़ी दिन बीतने पर निश्चय ही यह सब हो जायगा। इस में कोई सन्देह नहीं।'

उस द्यूतकार कौटिक ने योगी के कहने के अनुसार सब काम किया और अपने सेवक के साथ जल में जाकर स्थित हो गया।

कौटिक की दुर्दशा

फिर वह चोर द्यूतकार कौटिक तथा उस के सेवकों के सब वस्त्र, खड्ग आदि चीजें लेकर अपने स्थान को चल दिया। चलते समय उसने संन्यासी के सब चिह्न वहां छोड दिये और वेश्या के घर पहुँच कर रात्रि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

चोर की बातें सुनकर वेश्या बोली कि 'तुम निश्चय ही चोर शिरोमणि हो। क्योंकि इस समय तुमने कौटिक को भी बडे कठिन संकट में डाल दिया है।'

प्रातःकाल जल भरने के लिये जब पनिहारि स्त्रीयें सरोवर पर आई तो जल में कौटिक को देखकर बोल ने लगीं कि 'यह तो द्यूतकार कौटिक है। उस ने चोर को पकड ने की प्रतिज्ञा की थी, इसी लिये चोर ने इस को इस प्रकार की विचित्र अवस्था में डाल दिया है। इसने बहुत लोगों को ठगा है तथा छल किया है, इसलिये इस लोक में ही इस को उन सब कर्मों का फल प्राप्त हो रहा है, और पर लोक में कोन जाने क्या दशा होगी ?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रातःकाल लोगों के मुख से कौटिक को इस प्रकार की विपत्ति में पड़ा जान कर मंत्री लोग राजा के पास गए और बोले कि–'हे राजन्! द्यूतकार कौटिक की प्रतिज्ञा के अभी तो दो दिन बाकी हैं, फिर आपने इतनी शीघ्रता से उसे क्यों दण्ड दे दिया ?। शास्त्र में भी कहा है—

" राजा लोग तथा साधु लोग एक ही बार बोलते हैं, कन्या एक बार ही दी जाती है, अन्य मनस्क अवस्था में भी सज्जन पुरुष जो कुछ बोल जाते हैं, वह पत्थर पर लिखे हुए अक्षर के समान अन्यथा नहीं होता है। महादेव ने जो विष पान किया था, उसे आज भी नहीं त्यागते। कूर्म इतनी भारी पृथ्वी को धारण किये हुए है। दुर्वह वडवानल को समुद्र धारण किये हुए है। इस से यह सिद्ध होता है कि सज्जन पुरुष जिस को अंगीकार करते हैं उस का पालन करते हैं। "*

मंत्री लोगों की यह बात सुन कर राजा बोला कि 'द्यूतकार कौटिक को मैंने कोई दण्ड नहीं दिया है।' तब मंत्री लोक बोले–' हे राजन्! इस समय वहाँ चल कर देखो कि उस की किस प्रकार की विचित्र अवस्था है?'

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति साधवः।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥४६१॥

*अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्ति धरणीमपि पृष्ठकेन।
अम्भोनिधिर्वहति दुर्वहवाडवाग्नि-
मङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥ ४६२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब राजा परिवार सहित वहाँ पहुँचा तो उस को विचित्र स्थिति देख कर बोला कि 'हे द्यूतकार कौटिक! तुम अब जल से निकल कर बाहर आओ। तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी हो गई।'

राजा की बात सुन कर कौटिक बोला:—"हे राजन्! कुछ देर ठहरिये। मैं चोर की स्थिति जानकर आप लोगों से सब बातें कहूँगा।" इस प्रकार पुनः पुनः कहता हुआ द्यूतकार कौटिक जब दो घड़ी दिन बीत गया तब जल से बाहर निकला, परन्तु चोर का कुछ भी वृत्तान्त उसे ज्ञात नहीं हुआ। जब वह जल से बाहर आया तब राजाने पूछा कि 'तुम्हारी ऐसी दुर्दशा किस ने की?' तब द्यूतकार कौटिक ने उत्तर दिया कि 'चण्डिका देवी के मंदिर में एक संन्यासी है, उस के कथनानुसार ही मैंने यह सब किया है।'

तत्पश्चात् चण्डिका देवी के मन्दिर में देखने पर वहाँ संन्यासी आदि कोई नहीं मिला, तो कौटिक से कहा कि निश्चय ही तेरी यह सब दशा रात्रि में उस चोर ने ही की है। इसलिये तुम इस समय अपने मन में कुछ भी दुःख मत करो। जिस चोर ने मेरे जैसे व्यक्तियों को भी संकट में डाल दिया है वहाँ तुम्हारी क्या गणना? इसलिये तुम्हारा इस में कुछ भी दोष नहीं है। क्यों कि देवता भी भाग्य से अनेक प्रकार की दशा प्राप्त करते हैं। भाग्य के फल से कोई भी व्यक्ति नहीं छूट सकता। जिस रावण का नगर त्रिकूट पर्वत पर था तथा नगर के चतुर्दिक् समुद्र ही परिखा—खाई थी, युद्ध करने-वाले राक्षस लोग सेना में थे, कुबेर ही जिस का खजानची था तथा जिसके मुख में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजीवनी विद्या थी, वह भी काल के अधीन हो कर मर गया। इसलिये भाग्य ही प्रधान है। कोई शुभ ग्रह कुछ भी नही कर सकता। जिस के राज्याभिषेक के लिये वसिष्ठ जैसे ब्रह्मर्षि ने लग्न स्थिर किया था, उन रामचन्द्र को भी वन गमन करना पडा। अनेक तीर्थंकर, गणधर, सुरपति, चक्रवर्ती, केशव, राम आदि सब भी जब भाग्य के अधीन हो कर मरण को प्राप्त हुए वहाँ दूसरे लोगों को क्या गणना है?

दूसरे लोग भी बोले कि 'वह छली चोर ही तुम्हारी यह सब दुर्दशा करके रात्रि में कहीं चला गया है।' राजा ने कहा कि 'हे द्यूतकार कौटिक! तुम इस समय मुझसे कुछ भी भय मत रखो।' इस प्रकार कौटिक को आश्वासन देकर राजा अपने स्थान पर गया तथा भट्टमात्र आदि मंत्री लोग भी उस चोर के वृत्तान्त का स्मरण करते हुए अपने अपने स्थान पर गये और कौटिक भी अपने स्थान पर गया।

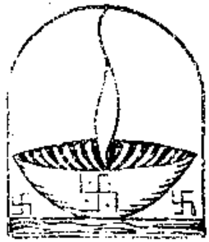

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीसवाँ प्रकरण

पिता-पुत्र मिलन

राजा की प्रतिज्ञा

फिर दूसरे दिन काली वेश्या के घर में बैठे हुए देवकुमार ने वेश्या से पूछा कि 'नगर में अब क्या वार्ता चल रही है ? इस समय राजा क्या कर रहा है ? तथा भट्टमात्र आदि मंत्री लोग क्या करते हैं ?'

तब चोर के आगे एकान्त में वेश्या कहने लगी कि राजा ने सब मंत्रियों को बुलाकर कहा है कि–' तीन दिन के भीतर मैं स्वयं ही चोर को पकड़ूँगा।'

राजा की बात सुन कर मंत्री लोग बोले कि 'हे राजन् ! वह चोर अत्यन्त छली तथा दुर्ग्राह्य है, इसलिये आप इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करें।'

राजा बोले:—" हे मंत्रीश्वरो ! जो जो व्यक्ति प्रतिज्ञा करता है, उस उस व्यक्ति की ही वह चोर दुर्दशा करता है। तब ऐसी स्थिति में मैं आज फिर दूसरे किस व्यक्ति को चोर पकड़ने के लिये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञा दूँ। इसलिये आज मैं स्वयं चोर को पकड़ने के लिये नगर में घूमूंगा। यदि प्रपंच कर के मैं उस चोर को नहीं पकड़ सका, तो तुम लोग अवश्य ही मुझ को चोर का दण्ड देना। ''

राजा की यह बात सुन कर मंत्री लोग बोले कि 'राजा को चोर का दण्ड आज तक किसी भी शास्त्र में न सुना गया है, न कहीं दीया गया है। दुष्ट को दण्ड देना, सज्जन व्यक्तियों का सत्कार करना, न्याय पूर्वक अपने कोष को बढ़ाना, धनवानों का पक्षपात किये बीना हि अपने राष्ट्र की रक्षा करना राजाओं के लिये ये पाँच यज्ञ के समान कहे गये हैं। दुर्बल, अनाथ, बाल, वृद्ध, तपस्वी तथा अन्याय से जो पीडित हों ऐसे व्यक्तियों के लिये राजा ही आधार है। गुरु की सेवा करना, उनके आदेश का पालन करना, पुरुषों को अपने अधीन रखना, शूरता तथा धर्म कार्य में लगे रहना, ये सब राज्यलक्ष्मी रूपी लता के लिये मेघ समान हैं। इसलिये आपको चोर का दण्ड नहीं दिया जा सकता। अतः हे राजन्! यदि आपके चित्त में चोर पकड़ने की प्रबल इच्छा है, तो बिना प्रतिज्ञा के ही इस समय आप उसे पकड़ने के लिए उद्यम कीजिये। साथ में सहायता के लिये योग्य सात--आठ सेवकों को भी ले लीजिये।'

मंत्रियों की बात सुन कर राजा बोले कि—'मैं एकाकी ही चोर को पकडूँगा। यदि तीन दिन के भीतर चोर को नहीं पकड़ सका, तो आठ कोटि द्रव्य धर्म कार्य में व्यय करूँगा।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नगर भ्रमण

इस प्रकार कह कर राजा खड्ग लेकर तथा गुप्त वेश धारण कर के चोर को पकड़ने के लिये गुप्त रूप से नगर में भ्रमण करने लगा।

काली वेश्या चोर से बोली कि—'तुम को अब इस समय यहाँ रहना नहीं चाहिये। यदि राजा विक्रमादित्य तुम को यहाँ पर ठहरा हुआ जान जायेगा, तो तुम्हारा तथा मेरा अनिष्ट होगा। राजा लोग दुष्टों का दमन और शिष्ट जनों का पालन अपनी पूर्ण शक्ति से करते हैं।'

वेश्या की बात सुन कर चोर बोला—'तुम अपने मन में कुछ भी डर न रखो! मैं अपनी बुद्धि से इस प्रकार कार्य करूँगा–कि जिस से हम दोनों का कल्याण हो। मैं इसी समय विक्रमादित्य से मिल कर तथा उसका दुशाला–खेस आदि लेकर यहाँ वापस आ जाऊँगा।' फिर तीसरे दिन रात्रि में वह वेश्या के घर से निकल कर नगर में गया और अदृश्य करण विद्या से अदृश्य हो कर नगर में भ्रमण करने लगा। घूमता हुआ वह चोर धोबी के घर के समीप पहुँचा और वहाँ होने वाली बात सुनने लगा। धोबी अपनी पत्नी से कह रहा था:—"हे प्रिये! मैं धोने के लिये राजा के वस्त्र लाया हूँ। परन्तु चोर के भय से इस समय मैं सब वस्त्र अपने मस्तक के नीचे रख कर सोता हूँ। तुम सबेरे वस्त्र धोने जाने के लिये मुझे बहुत जल्दी जगा देना। नहीं तो महाराजा कुपित हो जायगा।"

देवकुमार का धोबी के यहाँ से राजा के कपड़े चुराना

धोबी की यह बात सुन कर उस चोर ने गुप्त रूप से उसके घर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में प्रवेश किया और उस धोबी के मस्तक के नीचे से चालाकी पूर्वक सब वस्त्र ले लिये फिर गर्दभ की पीठ पर सब वस्त्रों को रख कर धीरे धीरे नगर के द्वार पर पहुँचा। वहाँ चोर द्वारपाल से बोला कि 'शीघ्रता से द्वार खोलो। मुझे राजा के वस्त्रों को शीघ्र ही धोने के लिये इसी समय कूप पर जाना है।'

द्वारपाल बोला कि 'राजा ने मुझ को आज्ञा दी है कि सूर्योदय के पहले नगर का द्वार किसी प्रकार भी मत खोलना। इसलिये हे रजक! मैं इस समय नगर का द्वार नहीं खोल सकता।'

धोबीरूप चोर का नगर बाहर जाना

द्वारपाल की बात सुन कर कपटी रजक (चोर) बोला कि 'मैं यहाँ राजा के सब वस्त्र छोड़ कर जाता हूँ। प्रातःकाल जब राजा या राजपुरुष वस्त्रों को यहाँ गिरा हुआ देखेंगे तो धन आदि हरण कर के तुझे ही दण्ड देंगे, मुझे क्या ?।'

रजक की यह बात सुन कर द्वारपाल डर गया तथा उसने नगर का द्वार खोल दिया। इस के बाद वह कपटी रजक कूप के समीप पहुँचा। वहाँ पहुँच कर सब वस्त्रों को गधे की पीठ पर से उतार कर नीचे रखा तथा इधर उधर देखते हुअे ठहर गया।

जब रजक की निद्रा भङ्ग हुई, तब राजा के वस्त्रों को न देख कर अत्यन्त उच्च स्वर से बोलने लगा कि 'अभी ही चोर चुपचाप राजा के वस्त्रों को लेकर चला गया है।' उस का उच्च स्वर घूमते हुए राजाने सुना और वहाँ धोबी के पास आ गया तथा पूछा कि 'क्या क्या चीजें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चोरी गई हैं ?।' रजक राजा को पहचान कर कहने लगा कि–'हे राजन् ! मैं इस समय आपके वस्त्र अपने मस्तक के नीचे रख कर सो रहा था। मैंने सोचा था कि प्रातःकाल होने पर इन्हें धो दूँगा। परन्तु कोई चोर चुपचाप उन्हें चुरा कर ले गया है।'

राजा द्वारा चोर का पीछा करना

रजक की बात सुन कर राजा बोला कि 'तुम इस समय अधिक ऊँचे स्वर से मत चिल्लाओ। मैं उस चोर को जाते हुए वस्त्र सहित चुपचाप पकड़ लूँगा।' फिर राजा अश्व पर बैठा, बड़ी शीघ्रता से चुपचाप चोर के पाँवों का अनुसंधान करता हुआ नगर के द्वार पर पहुँचा द्वारपाल से पूछा कि 'इस द्वार से इस समय नगर के बाहर कोई गया है अथवा नहीं ?'

इस प्रकार राजा के पूछने पर द्वारपाल ने रजक के जाने की बात कही। द्वारपाल की बात सुन कर राजा ने कहा–'निश्चय ही वह चोर ही इस समय गया है। इसलिये शीघ्र द्वार खोलो। मैं उस के पीछे पीछे ही जाऊँगा, जिस से वह पकड़ा जायगा।' द्वारपाल से कहा 'कि मैं जब तक चोर को पकड़ कर आता हूँ, तब तक तुम द्वार को बन्द कर यहाँ पर सावधानी से जागते रहना।'

राजा की बात सुन कर द्वारपाल बोला कि 'आप के कहने के अनुसार ही करूँगा।' इस प्रकार द्वारपाल की बात सुन कर राजा स्थान स्थान पर इधर उधर देखता हुआ उस कूप के प्रति चला।

जब चोर ने देखा कि राजा कूप के नजदीक आ रहा है, तब उसने एक बहुत बड़ा पत्थर लाकर कूप में जोर से गिरा दिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा स्वयं एक वृक्ष की आड में छुप गया जब राजा विक्रमादित्य वहाँ पहुँचे तो कूप में किसी चीज के गिरने का शब्द सुना तथा उस के ऊपर वस्त्र की गठरी देखी। राजा ने अपने मन में सोचा कि निश्चय ही यह चोर भय से कूप में कूद गया है। उसने कूप में छिप कर अपने प्राण बचाने की चेष्टा की है। परन्तु मैं कूप में प्रवेश कर इस चोर को अवश्य पकड़ूँगा। इस समय यह चोर कुछ भी नहीं कर सकता। यह चोर आज निश्चय मेरे हाथ में आगया है।

राजा का कूप में उतरना व देवकुमार का नगर में आ जाना

इस प्रकार सोचकर राजा विक्रमादित्य शरीर से अलंकारादि निकाल कर तथा ऊर्ध्व वस्त्र और तलवार कुए के ऊपर ही छोड़ कर चोर को पकड़ने के लिये घोड़े को वृक्ष के साथ बाँध कर कूप में कूद पड़ा।

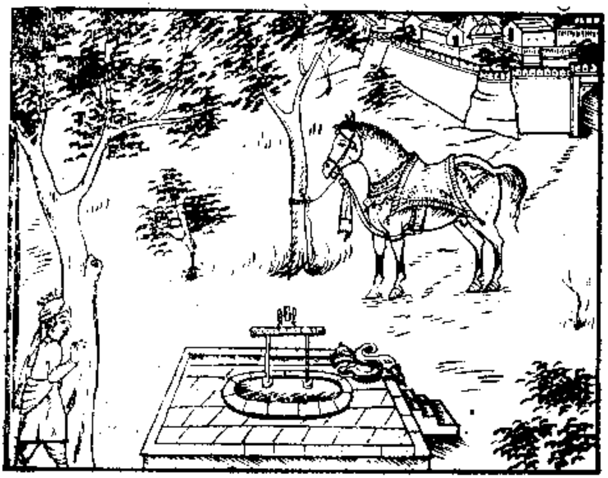

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर वह चोर शीघ्रता से राजा विक्रमादित्य के वस्त्र तथा तलवार लेकर अश्व पर चढ़ बैठा तथा वहाँ से नगर के द्वार पर पहुँचा और द्वारपाल से बोला–' :द्वारपाल ! मैं (विक्रमादित्य) आया हूँ । द्वार खोल । ' द्वारपाल ने घोड़े का हिनहिनाना सुन कर राजा विक्रमादित्य ही आया है, ऐसा समझ कर शीघ्रता से द्वार खोल दिया । तब वह चोर राज वेष में प्रवेश करके द्वारपाल से बोला:– "बहुत खोज करने पर भी चोर को कहीं नहीं देखा । इसलिये मैं वापस लौट कर आया हूँ । मैं इस समय अपने स्थान पर जाऊँगा । तुम द्वार बन्द करके खूब सावधानी से रहना । कदाचित् वह चोर आयगा तो छल से ऐसा बोलेगा कि ' द्वारपाल ! मैं विक्रमादित्य हूँ इसलिये द्वार खोलो ।' परन्तु उस समय तुम किसी प्रकार भी द्वार मत खोलना । वह प्रतिदिन रात्रि में नगर में चोरी करता है तथा कहीं एकान्त में जाकर गुप्त रीति से निवास करता है । इसलिये तुम सतत सावधान रहना तथा किसी प्रकार द्वार मत खोलना । "

फिर वह बाजार में आया और हर्ष से शब्द करते हुए अश्व को शीघ्रता से छोड़ दिया । राजा के वस्त्र आदि लेकर वह काली वेश्या के द्वार पर उपस्थित हुआ और पूर्व कथित संकेत के अनुसार दरवाजा खोल देने पर घर में पहुँचा । वेश्या के आगे वह इस प्रकार बोला–' राजा विक्रमादित्य के ये–सब वस्त्र अलंकारादि वस्तु हरण करके लाया हूँ । '

यह सुन कर आश्चर्य चकित होकर वेश्या ने पूछा:–" तुमने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किस प्रकार–राजा की सब चीजें हरण कीं।" तब देवकुमार ने उसे आदि से अन्त तक का सब वृत्तान्त कह सुनाया।

यह सब वृत्तान्त सुन कर वेश्या बोली कि 'तुम निश्चय ही चोर शिरोमणि हो। स्वयं राजा की ही वस्त्रादि चीजें लेकर चुपचाप यहाँ चले आये हो। परन्तु यदि राजा यह जान जायगा कि तुम मेरे यहाँ रहते हो तो वह उसी क्षण मुझ को घानी में डालकर टुकड़े टुकड़े करा देगा। क्रुद्ध हुए राजा का निवारण कौन कर सकता है? उस समय राजा प्रलय काल के समुद्र समान दुर्बार हो जाता है।'

वेश्या की भययुक्त बात सुन कर उसको आश्वासन देता हुआ चोर बोला कि 'तुम अपने मन में कुछ भी भय मत रखो मैं वैसा ही काम करूँगा जिससे मेरा तथा तुम्हारा कल्याण ही होगा। तुम बार बार इस प्रकार संकल्प–विकल्प मत करो। जो भावी होता है, उसको देवता लोग भी दूर नहीं कर सकते।' उसे इस प्रकार समझा कर भय रहित किया।

जब राजा विक्रमादित्य ने कूप में प्रवेश किया और अच्छी तरह खोजने पर उस में उसे एक बहुत बड़ा पत्थर मिला, तो वह चकित होकर अपने मन में विचार करने लगा कि "पत्थर के गिराने से उस छली दुरात्मा ने मुझे कूप में उतरने को बाध्य किया। अब क्या करूँ?। हर एक प्राणी अपने पूर्व भवों में किये हुए कर्मों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का ही फल पाता है। सद्बुद्धि से यही सोचना चाहिये। कोई बुरे संकल्प–विकल्प करके अपने मन में दुःखी नहीं होना चाहिये, प्राणियों को सम्पत्ति या विपत्ति में भाग्य ही बराबर उत्सुक रहता है। जो कुछ अदृष्ट में लिखा हुआ है, उसका ही परिणाम सब लोग भोगते हैं। यह समझ कर बुद्धिमान्–लोग विपत्ति में भी अधीर नहीं होते।" राजा अत्यन्त कष्ट से किसी तरह कूप से बाहर निकला। ऊपर आकर अपना अश्व तथा वस्त्र आदि कुछ भी नहीं देखा ; तब सोचा कि कूप में पत्थर फेंकने का छल करके वह चोर मेरा अश्व, वस्त्र, खड्ग आदि चीजें लेकर कहीं चला गया। राजा विक्रमादित्य वस्त्र के न रहने से शीत से अत्यन्त पीडित हो रहा था, फिर भी किसी प्रकार पैदल चल कर नगर के द्वार पर पहुँचे। उन्होंने द्वारपाल से कहा कि द्वार खोल दे। मैं विक्रमादित्य हूँ। जब इस प्रकार बार बार राजा विक्रमादित्य ने कहा तब वह द्वारपाल अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला–'रे दुष्ट! दुराचारी अपने को राजा कह कर तू छल से इस समय मेरे सामने नगर में प्रवेश करना चाहता है, यह नहीं होगा।'

द्वारपाल की बात सुन कर राजा पुनः बोलाः–"हे द्वारपाल! मैं चोर नहीं हूँ। किन्तु इस नगर का स्वामी विक्रमादित्य हूँ, चोर ने छल करके मेरी ऐसी दुर्दशा की है।"

यह बात सुन कर और अधिक क्रुद्ध हो कर द्वारपाल बोला "रे दुष्ट! इस प्रकार बार बार मत बोल। अन्यथा मैं अभी बड़े पत्थर से तेरा मस्तक तोड़ दूँगा। राजा विक्रमादित्य तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कत्र से ही नगर में आ गया।"

द्वारपाल की क्रोध युक्त-वाणी सुन कर राजा समझ गया कि चोर ने ही इसे ऐसा कहा होगा तब वह राजा बिना वस्त्र के दरवाजे के बाहर बैठ गया। सूर्योदय के समय राजा के महल पर राजा के अश्व को खाली आया देख कर लोग सोचने लगे कि "क्या चोर ने राजा को मार दिया, अथवा अश्व ही कहीं राजा को गिरा कर चला आया है, अथवा किसी शत्रु ने राजा को मार दिया, अथवा राजा किसी रोग के कारण पृथ्वी पर गिर गया।" इत्यादि अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प करने लगे। मंत्रियों को ज्ञात होने पर वे नगर में सर्वत्र खोज करते हुए क्रमशः नगर के द्वार पर पहुँचे और द्वारपाल से पूछा कि "द्वारपाल! क्या राजा यहाँ आये थे? अथवा क्या रात्रि में तुमने राजा को कहीं जाते हुए देखा था? अथवा क्या यह जानते हो कि राजा कहाँ है? राजा के बिना इस समय सब लोग अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं।"

नगर में राजा की शोध

नगर में प्रत्येक स्थान पर हम लोगों ने राजा की तलाश की परन्तु कहीं भी उन को नहीं देखा। राजा के बिना समस्त राज्य नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। मेघ के वर्षा न करने से पृथ्वी कितने समय हरी भरी रह सकती है? क्यों कि—

मंत्री रहित राज्य, शस्त्र रहित सेना, नेत्र रहित मुख, जल नहीं देने वाली वर्षा ऋतु, धनी यदि कृपण हो, घृत बिना भोजन, दुष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वभाव वाली स्त्री, प्रत्युपकार चाहने वाला मित्र, प्रताप रहित राजा, भक्ति रहित शिष्य, तथा धर्म रहित मनुष्य सब वृथा हैं अर्थात् उनका होना न होना बराबर है।+

विद्या आलस्य करने से नष्ट होजाती हैं, स्त्रियाँ पर पुरुष से परिहास करने से नष्ट होजाती हैं, अल्प बीज देने से क्षेत्र नष्ट होता है और सेनापति के न रहने से सेना नष्ट होजाती है।*

मंत्रियों की बात सुन कर द्वारपाल बोला कि 'राजा चोर को पकड़ने के लिये नगर से बाहर गये थे परन्तु चोर नहीं मिला। तब वह उसी समय रात्रि में लौट कर आगये थे और अपने स्थान पर चले गये थे।'

द्वारपाल की बात सुन कर मंत्रीश्वर लोग बोले 'कि राजा स्वयं नहीं आये, किन्तु उनका अश्व खाली आया है। उससे जान पड़ता है कि रात्रि में कोई राजा को मार गया।'

तब द्वारपाल पुनः कहने लगा कि—'रात्रि में कोई मनुष्य इस स्थान पर आकर बाहर से बोला कि मैं राजा विक्रमादित्य हूँ। शीघ्रसे

+राज्यं निःसचिवं गतप्रहरणं सैन्यं विनेत्रं मुखम्।
वर्षा निर्जलदा धनी च कृपणो भोज्यं तथाऽऽज्यं विना॥
दुःशीला गृहिणी सुहृन्निकृतिमान् राजा प्रतापोज्झितः।
शिष्यो भक्तिविवर्जितो नहि विना धर्मं नरः शस्यते ॥५६९॥

*आलस्योपहता विद्या परिहासहताः स्त्रियः
मन्दबीजं हतं क्षेत्रं हतं मृसैन्यमनायक ॥५७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वार खोलो। मैंने कहा कि तुम राजा नहीं, किन्तु दुष्ट बुद्धिवाले चोर हो। पुनः यदि ऐसा बोलोगे तो मैं पत्थर से तुम्हारा मस्तक तोड़ दूँगा। मेरे ऐसा कहने पर वह सन्तोष करके कहीं चला गया अथवा बाहर द्वार पर बैठा है, यह मैं नहीं जानता।'

नगर बाहर राजा का मिलना

तब मंत्री लोग शीघ्र ही द्वार खुलवा कर बाहर गये। वहाँ शीत से शरीर को संकुचित किये हुए राजा को देखकर शीघ्र ही राजा के वस्त्रादि मंगवाये और पूछा कि 'हे राजन्! आज आप की यह दुर्दशा कैसे हुई?' राजा विक्रमादित्य ने अपने शरीर को ढकते हुए रात्रि में हुआ सब वृत्तान्त सविस्तर कह सुनाया।

राजा के सब वृत्तान्त कहने पर वह द्वारपाल राजा के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा कि 'रात्रि में मुझ से बहुत बड़ा अपराध हुआ है, उसे दया कर के क्षमा करें। माता पिता तथा राजा प्रसन्न होते हैं तो अपने सन्तान तथा सेवक के अयोग्य कार्य को भी अच्छा ही समझते हैं। जो जिस के हृदय में बसा हुआ है उसे वह बहुत सुन्दर स्वभाव वाला समझता है। जैसे व्याघ्र की स्त्री अपने बच्चों को अत्यन्त कल्याण कारी सौम्य और सुन्दर समझती है।'

द्वारपाल की प्रार्थना सुनकर राजा विक्रमादित्य ने कहा कि– 'हे द्वारपाल इस में तेरा कुछ भी दोष नहीं है। किन्तु इस समय यह सब मुझे मेरे अदृष्ट के दोष से हुआ है। उत्तम व्यक्ति अपने किये कर्म को ही दोष देते हैं अन्यों को नहीं। श्वान, पत्थर से मारे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाने पर पत्थर को ही काटने जाता है। परन्तु सिंह बाण से आहत होने पर जिसने बाण चलाया है, उस व्यक्ति को खोजता है। मनुष्य अपने मन में जितने सुखों की इच्छा करता है, उतने सुख किस को मिलते हैं ? किसी को नहीं। यह समस्त संसार अदृष्ट के अधीन है। इसलिये हमें सन्तोष है।'

तत्पश्चात् मंत्रियों से लाये हुए उत्तम अश्व पर नवीन वस्त्र, खड्ग आदि से भूषित होकर राजा सवार हुए तथा अमात्य आदि व्यक्तियों के साथ जैसे उदयाचल पर्वत पर सूर्य आते हैं, उसी प्रकार अपने आवास को प्राप्त हुए।

राजा विक्रमादित्य ने अपने मंत्रियों से कहा—'यह चोर अत्यन्त बलवान् मनुष्य है तथा महान् विद्याओं को धारण करने वाला है, ऐसा लगता है। वह कौतुकार्थी होकर अथवा मेरा राज्य हरण करने की इच्छा से इस समय मंत्री आदि हमारे सब व्यक्तियों की दुदर्शा करता है।'

अग्निवैताल का आना

इस समय अनेक प्रकार के कौतुक तथा नृत्य आदि देख कर वहाँ देव द्वीप से अग्निवैताल लौट आया और राजा विक्रमादित्य से मिला। अग्निवैताल को आया हुआ देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा अग्निवैताल से बोला कि 'तुम ठीक समय पर आ गये हो। यह बहुत अच्छा हुआ।' क्योंकि:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेघ की वर्षा करना, कृषि करना, क्षेत्र में धान्य का बीज वपन करना, औषध भक्षण करना, सहायता करना, विद्याध्ययन करना, विवाह तथा अश्वशिक्षा, गोपालन करना, ये सब अवसर पर ही अच्छे होते हैं।*

हे अग्निवैताल! इस समय बहुत विचित्र संकट उपस्थित हो गया है। किसी चोर ने भट्टमात्र आदि व्यक्तियों को क्रमशः संकट में डाल दिया है। परन्तु आज तक वह कहीं भी न देखा गया है और न पकड़ा गया है।'

चोर को पकड़ने की प्रतिज्ञा

राजा विक्रमादित्य की बात सुन कर अग्निवैताल बोला—'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तीन दिन के अन्दर चोर को अवश्य पकडूंगा।' राजा के सम्मुख प्रतिज्ञा करके अग्निवैताल चोर को पकड़ने के लिये स्थान स्थान पर नगर में भ्रमण करने लगा।

वेश्या के घर में स्थित चोर ने काली वेश्या से पूछा कि 'नगर में इस समय क्या क्या वार्ता चल रही है?'

काली वेश्या ने कहा—" अग्निवैताल कल ही यहाँ आया है। उसने प्रतिज्ञा पूर्वक कहा है कि चोर कैसा भी बलवान तथा दुर्ग्राह्य हो तथा कहीं भी क्यों न रहता हो, किन्तु मैं उस को अवश्य पकडूँगा। वह असुर अग्निवैताल स्थान स्थान पर गुप्त रूप

---

* **घनवृष्टिः कृषिर्धान्यवापौषधसहायिता।**
विद्योद्वाहाश्वगोशिक्षाधर्माद्यवसरे वरम् ॥५९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से चोर को पकड़ने के लिये प्रातःकाल से भ्रमण कर रहा है। यदि वह अपने ज्ञान से यह जान लेगा कि तुम मेरे घर में स्थित हो तो तुम्हारा तथा मेरा अवश्य ही अनिष्ट होगा।"

वेश्या की बात सुन कर चोर ने कहा—'तुम अपने मन में जरा भी मत डरो। मैं उसी प्रकार काम करूँगा, जिससे वह मुझ को जान नहीं सकेगा।'

उस चोर का इस प्रकार का साहस देख कर वह वेश्या विचार करने लगी कि यह अवश्य कोई विद्याधर है? अथवा देव या दानव है? अन्यथा कैसे इस प्रकार के संकट के उपस्थित होने पर भी इस के मन में इतना साहस हो सकता हो।

अग्निवैताल का खड्ग हरण

देवकुमार वेश्या से कह कर नगर में घूमने के लिए उसके घर से निकला। वह अदृश्यीकरण विद्या से अदृश्य होकर नगर में घूमता हुआ अग्निवैताल के सामने पहुँचा और अग्निवैताल के हाथ से अदृश्य रूप धारण किये हुए खड्ग ले लिया। अग्निवैताल उस के पुण्य प्रभाव से उस का रूप तथा स्थान कुछ भी ज्ञानदृष्टि से नहीं जान सका। इस प्रकार वह चोर अग्निवैताल का खड्ग लेकर नगर में भ्रमण करके धूर्त के समान पुनः वेश्या के घर में आ पहुँचा। और वेश्या के पूछने पर अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। वेश्या अपने मन में विचारने लगी कि यह निश्चय ही कोई देव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा विद्याधर है। इसलिये इस के पास में ऐसी चमत्कार करने वाली शक्ति अवश्य है।

इधर अग्निवैताल तीन दिन तक नगर में भ्रमण करते करते अत्यन्त कृश शरीर तथा उदासीन हो कर भी जब चोर को नहीं पकड़ सका तब चौथे दिन राजा के समीप आकर तथा दीन हो कर बोला —'हे राजन्! जो चोर चोरी करता है वह कोई विद्याधर है अथवा असुर है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि वह किसी के वश में नहीं आ सकता।'

यह बात सुन कर राजा अग्निवैताल से बोला—"यह चोर कोई धूर्तराज है। वह व्यक्ति या देव किसी को भी अपना रूप देखने नहीं देगा। यदि वह किसी से मिलेगा तो भी सरल स्वभाव से ही मिलेगा। इसलिये आज सारे नगर में पटह बज-वाना चाहिये और कहना चाहिये कि जो कोई पटह का स्पर्श करेगा और चोर को पकड़ेगा उसको राजा आधा राज्य देकर उस के मनोरथ को पूर्ण करेंगे।"

राजा की यह बात सुन कर मंत्री लोग बोले—कि इस समय यही करना उचित है। क्योंकि वह अत्यन्त बलवान तथा छली है। पटह बजा कर ऐसी घोषणा किये बिना वह चोर पकड़ा नहीं जा सकता। सब की सम्मति होने पर राजा ने पटह बजवा कर घोषणा कराने का निर्णय किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आधा राज्य देने की घोषणा

इसके बाद राजा की आज्ञा से मंत्रियों ने नगर में सब जगह स्पष्ट रूप से पटह बजवाते हुए घोषणा करवाई कि 'जो कोई चोर को पकड़ने के लिये पटह का स्पर्श करेगा तथा चोर को पकड़ेगा, उसको राजा अपना आधा राज्य देकर अत्यन्त सम्मानित करेंगे।'

जब पटह बजता हुआ वेश्याओं के मुहल्ले में आया तो देवकुमार ने वेश्या से पूछा कि यह क्या है? क्या घोषणा हो रही है? तब वेश्या ने उसे पटह के बजने तथा घोषणा की बात कही। यह सुन कर चोर ने उस से कहा कि 'तुम तुरन्त जाकर पटह का स्पर्श करो, इससे तुम्हारे घर में आधे राज्य की लक्ष्मी आयेगी।' चोर की यह बात सुन कर वेश्या ने कहा कि 'राजाओं का व्यवहार बहुत दुर्निवार होता है। यदि वह अपनी घोषणा वापस ले ले और मुझ पर दोषारोपण करे तो बहुत दिनों से उपार्जित मेरा अपना भी सब धन हरण कर लेगा। क्यों कि:—

काक में पवित्रता, द्यूतकार में सत्य, सर्प में क्षमा, स्त्रियों में काम की शान्ति, नपुंसक में धैर्य, मद्य पीने वालों में तत्त्वज्ञान का विचार, तथा राजा मित्र, यह न कहीं भी देखा गया है, और न कहीं भी सुना गया है।×

× **काके शौचं द्यूतकारे च सत्यं,**
सर्पे क्षान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्तिः।
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्त्वचिन्ता,
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा ? ॥६२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेश्या की बात सुन कर उस चोर ने पुनः कहा कि 'तुम कुछ भय मत रखो तथा शीघ्र जाकर पटह स्पर्श करो। तुम्हारा कल्याण होगा।' चोर के आश्वसन देने पर वेश्या ने मार्ग पर आकर शीघ्र ही बजते हुए पटह का स्पर्श किया। सेवकों ने जाकर राजा से सारा हाल कह सुनाया और कहा कि 'काली वेश्याने पटह का स्पर्श किया है।' राजा ने यह सुन कर भट्टमात्र आदि सचिवों से विचार विनिमय किया कि 'वेश्या को किस प्रकार आधा राज्य दिया जायगा?' यह सुन कर मंत्रीगण बोले कि 'इस में खेद करने की कोई बात नहीं है। जब अपने घर में वस्त्राभूषण आदि सब वस्तुऐं आ जावें, तथा दुर्निवार चोर अपने हाथ में आ जाय तो उस दुष्ट चोर का निग्रह करके जनता को सुखी बनावे, तत्पश्चात् उस वेश्या से भी विवाह कर लें। इस प्रकार राज्य का आधा हिस्सा जो उसे देना है वह अपने ही घर में रह जायगा।'

मंत्रियों की बात सुन कर राजा ने कहा कि 'हीन जाति से कैसे विवाह करेंगे?' मंत्रियां ने उत्तर दिया कि—'हीन जाति की स्त्री से भी विवाह करने से राजाओं को दोष नहीं लगता। क्योंकि शास्त्र में कहा है कि विष में से भी अमृत ले लेना चाहिये। अमेध्य—अपवित्र वस्तु में से भी सुवर्ण लेना चाहिये। अधम मनुष्य से भी उत्तम विद्या लेनी चाहिये और नीच जाति से भी स्त्री रत्न ले लेना चाहिये।'*

राजा के सम्मत होने पर मंत्रियों ने उसी समय उस वेश्या को बुलाने

* विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
अधमादुत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥६३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिये अपने सेवकों को भेजा। वे उस वेश्या के घर जाकर बोले कि 'राजा के समक्ष चलो और चोर को समर्पित करो, सेवकों के ऐसा कहने पर वेश्याने घर के अंदर जाकर सोये हुए उस चोर को जगाया और कहा कि 'हे चोर शिरोमणि! उठो, राजा के सेवक हमें बुलाने के लिये आये हैं' तब चोर ने कहा–कि 'इस समय मुझे सुख निद्रा आ रही है अतः एक प्रहर ठहर जाओ।'

यह सुन कर वेश्या चिल्लाई और बोली कि 'तुमने पहले तो मुझसे पटह का स्पर्श करा लिया और इस समय निश्चिन्तता से निद्रा का सुख लेते हो। क्या तुम को राजा का कुछ भी डर नहीं है?' इस प्रकार वेश्या के बार बार कहने पर वह उठा और नहा धोकर मध्याह्न के समय तक तैयार हुआ फिर वेश्या से कहा कि 'अब तुम मेरे साथ चलो।'

वेश्या बोली कि 'तुम स्वयं ही जाओ। मुझे क्यों संकट में डालते हो। अब समझ में आया कि इस प्रकार के मनुष्य अपने आश्रयदाता को ही विपत्ति में डालते हैं। वृश्चिक, सर्प तथा दुर्जन को ब्रह्मा ने क्रमशः पूछ में, मुख में तथा हृदय में विष दे रखा है। इसलिये दुर्जन चाहे कितना भी बड़ा विद्वान् हो उसका परित्याग ही करना–चाहिये। क्या मणि से अलंकृत सर्प भयंकर नहीं होता? जैसे गजराज शान्त होकर छाया के लिये जिस वृक्ष का आश्रय ग्रहण करता है उसी को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार दुर्जन लोग भी अपने आश्रयदाता का ही नाश करते हैं।'

वेश्या को आश्वासन देते हुए चोर ने कहा कि 'तुम मेरे साथ चलो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और अपने मन में जरा भी डर मत रखो। तुम्हारा कल्याण ही होगा।' तब वह वेश्या साहस करके उसके साथ चलने को तैयार हुई और बोली कि तुम—'धन्य एवं कृतार्थ हो। तुम्हारा साहस कोई अद्भुत है।' इसके बाद चोरने सुंदर वेषसे सज्जित होकर वेश्या के साथ राजमहल जाने के लिए प्रस्थान किया।

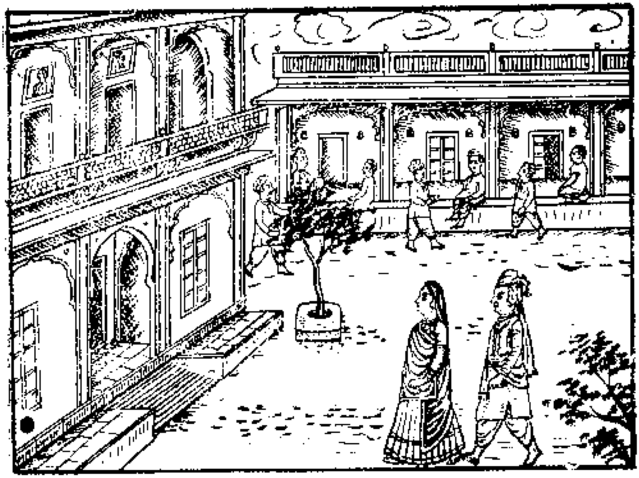

वेश्या व देवकुमार का राजसभा में आना

जब देवकुमार वेश्या के साथ निकला, तब उसको देखने के लिये सब लोग अपना अपना कार्य छोड़ कर बड़ी शीघ्रता से अपने अपने घरों से बाहर आने लगे और उस चोर का अत्यन्त लावण्ययुक्त शरीर देख कर बोलने लगे कि "अहो! इस का अकाल में ही मृत्यु आगया। कोई कहता था कि राजा इसका बहुत सत्कार करेगा। कोई कहता था कि इसके साथ इस वेश्या को भी आपत्ति आयगी।" इत्यादि अनेक प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की लोगों की बातें सुनता हुआ वह चोर अत्यन्त निर्भयता के साथ राजा के समीप उपस्थित हुआ तथा राजा के आगे उसके आभूषण आदि रख कर चोर ने भक्तिपूर्वक राजा के चरण कमलों में प्रणाम किया।

इस चोर को देखकर राजा के मनमें स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हुआ। राजा ने उसे पूछा कि 'हे चोर! तुम कौन हो? किस स्थान से यहाँ आये हो? किस प्रयोजन से आये हो? और तुम किस के पुत्र हो?'

राजा के इस प्रकार पूछने पर चोर बोला कि 'हे राजन्! आप अपने सात पूर्व भवों की बात जानते हो, तो विदेश से आये हुए मुझ को क्यों नहीं पहिचानते? मैं श्रीमान् शालिवाहन राजा की पुत्री का पुत्र हूँ और प्रतिष्ठानपुर से अपने पिता को प्रणाम करने के लिये आया हूँ।'

पिता पुत्र मिलन

उस की बात सुन कर राजा ने सोचा कि 'प्रतिष्ठानपुर में मैं अपनी पत्नी को गर्भवती छोड़ कर आया था, निश्चय ही यह पुत्र उस का है।' यह सोच कर राजा ने उसे पूछा कि 'तुमने यह कैसे जाना कि तुम्हारे पिता कौन है।' देवकुमारने अपना पूरा वृत्तान्त सुनाया कि किस तरह उन के लिखे श्लोक से उसने उन्हें पहचाना। यह सुन कर राजा ने सिंहासन से उठ कर अपने पुत्र का बड़े हर्ष से आलिंगन किया और सस्नेह उसे अपना आधा आसन बैठने के लिये दिया।

फिर राजा ने कहा कि 'यह मेरा पुत्र है। यह साहसिकों में अग्रणी मेरी स्त्री सुकोमला के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, राजा विक्रमादित्य ने अनेक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार के चरित्र करने के कारण उसका ' विक्रम-चरित्र ' ऐसा नाम राजसभामें प्रकाशित किया। पुत्र के आगमन से हर्षित होकर राजा ने उस वेश्या को आठ नगर पुरस्कार में देकर उस वेश्या को सम्मान पूर्वक वहाँ से बिदा किया।

इस वेश्या को राजा से इस प्रकार सम्मानित होते देख कर वे चारों प्रमुख वेश्यायें उदास मुख करके अपने मन में अत्यन्त दुःखी हुईं।

इसके बाद राजा ने उस विक्रमचरित्र से पूछा कि 'हे पुत्र! तुमने इस नगर में इस प्रकार चोरी क्यों की है? प्रतिष्ठानपुरसे आकर सीधा मुझे क्यों नहीं मिला ?'

तब विक्रमचरित्र कहने लगा कि "आपने कपट करके मेरी माता से विवाह किया तथा छल से उस को छोड़ कर आप यहाँ चले आये थे। इसीलिये मैंने राजमहल से छल पूर्वक् वस्त्राभूषणादि ले लिये तथा कौतुक से कोटवाल आदि को हैरान किया। चंडिका देवी ने प्रसन्न होकर मुझे विद्या प्रदान की है। वह विद्या इस के आगे भी अवधि पर्यन्त रहेगी। विद्यायें अनेक हैं। एक जीव के लिये वह संख्या के योग्य नहीं हैं, एक विद्या का भी यदि नियम पूर्वक उपयोग किया जाय तो वह सर्वत्र उपयुक्त होती है। मैंने देवी से दिये हुए विद्याबल से तथा अपनी बुद्धि से और पुण्य उदय से इतना विचित्र प्रकार का कौतुक किया है। आपका पुत्र आप से सवा गुना सिद्ध हो तब आप भी खुश हों, यही साबित करने के लिये मैं सीधा आप के पास नहीं आया।"

पाठक गण! आप लोग इस विक्रमचरित्र का विचित्र चरित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढ़ कर तथा इस के दुर्दमनीय साहस, अवसर प्रत्युत्पन्न मति (हाजर जवाबी) तथा निर्भयता को देखकर आश्चर्य चकित हुए होंगे। परन्तु जो पुण्यात्मा है, जिसने देवी को प्रसन्न कर लिया है और स्वयं बुद्धिमान् है तथा विशुद्ध बुद्धि से छल रहित कार्य करता है उस के लिये ऐसा कोई काम असम्भवित नहीं है।

इस चरित्र के पढ़ने से आप लोगों को अत्यन्त कौतुक तथा पूर्ण मनोरञ्जन हुआ होगा। तथा पिता की अपेक्षा पुत्र को ही अधिक चमत्कार दिखाने वाला समझे होंगे। अब आगे पुनः इसकी माता को लाने आदि की तथा विक्रमादित्य के विषय में इस प्रकार की ही आश्चर्य भरी तथा मनोरञ्जक बातें आप लोगों को पढ़ने के लिये मिलेंगी।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
चतुर्थः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रविशारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसूरीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविजयेन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानुवादः, तस्य च चतुर्थः सर्गः समाप्तः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चम सर्ग

इक्कीसवाँ प्रकरण

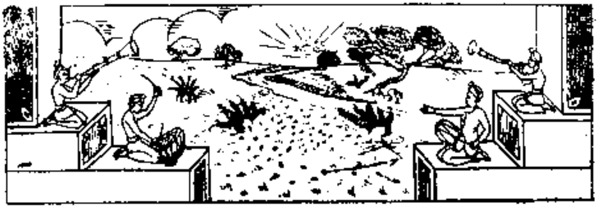

सुवर्ण पुरुष की प्राप्ति

कुछ समय बाद राजा ने विक्रमचरित्र से कहा कि–हे पुत्र! अब तुम उठो और भोजन करो। राजा की बात सुन कर विक्रमचरित्र ने उत्तर दिया कि–'मैं माता के आगे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि पिता से मिलने के बाद पुनः तुम को प्रणाम करने के लिये लौटते हुए जब प्रतिष्ठानपुर के मार्ग में पहूंगा, तब जल-पान करूँगा। इसलिये अभी मैं भोजन नहीं कर सकता।'

अपने पुत्र की इस प्रकार प्रतिज्ञा सुन कर महाराजा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमादित्य अपने मन में विचार करने लगा कि इस की नम्रता प्रशंसनीय है तथा माता-पिता में अत्यन्त भक्तिवाला भी है। क्यों कि-

जो अपने उत्तम आचरण से माता-पिता को प्रसन्न करता है वही पुत्र है, अपने हित से भी बढ़कर अपने स्वामी का ही हित चाहती है वही पत्नी है, तथा जो सम्पत्ति और विपत्ति में समान व्यवहार रखे वही मित्र है। इस प्रकार के तीनों ही व्यक्ति संसार में पुण्यवान् लोगों को ही प्राप्त होते हैं।*

दीप पास में स्थित वस्तु को ही प्रकाशित कर सकता है। किन्तु कुल-प्रदीप सुपुत्र तो पहिले बहुत समय पर मरे हुए पूर्वजों को भी अपने गुणों की श्रेष्ठता से प्रकाशित करता है।

रात्रि का प्रकाशक दीप चन्द्रमा है, प्रातःकाल में प्रकाश देने वाला दीप सूर्य है, तीनों लोगों का प्रकाशक धर्म है और कुल का प्रकाशक सुपुत्र ही है।

विक्रमचरित्र ने पुनः कहा—'हे पिताजी! आप प्रतिष्ठानपुर में मेरी माता सुकोमला से विवाह करके छल से यहाँ चले आये, अतः मैंने उसका बदला लेने के लिये ही सामन्त, मन्त्री, वेश्या आदि को इस प्रकार छल कर लज्जित किया।'

---

* प्रीणाति यः सुचरितैः पितरं स पुत्रो,
यद् भर्तुरेव हितमिच्छति तत् कलत्रम्।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-
देतत् त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमचरित्र की बात सुनकर राजा बोले–' मुझे बार बार धिक्कार है, जो मैंने सुकोमला जैसी स्त्री से विवाह कर के छल से उसका परित्याग किया यह मैंने ठीक नहीं किया। '

राजा को इस प्रकार खेद करते देख कर विक्रमचरित्र ने कहा–" हे पिताजी! इस में आपका कोई दोष नहीं। यह सब कर्म का ही फल है। प्रत्येक प्राणी अपने पूर्व कृत कर्म का ही फल भोगता है।"

विक्रमचरित्र का प्रतिष्ठानपुर गमन

तत्पश्चात् विक्रमचरित्रने अपने पिता के चरणों में भक्ति पूर्वक प्रणाम कर के प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान किया। क्रम से विक्रम-चरित्र ने प्रतिष्ठानपुर पहुँच कर अपने आगमन से अपनी माता के हृदय में अत्यन्त हर्ष उत्पन्न किया और अपनी माता के तथा शालि-वाहन राजा के चरणों में प्रणाम कर पिता से मिलने का सब वृत्तान्त कह सुनाया, फिर अपनी माता को लेकर शीघ्र ही विक्रमचरित्र अवन्ती नगर के समीप उपस्थित हुआ।

माता को साथ लेकर आना

राजा विक्रमादित्य अपनी स्त्री तथा पुत्र का आगमन सुन कर उसी समय नगर के बाहर आये और महोच्छव पूर्वक अपनी स्त्री और पुत्र का नगर–प्रवेश कराया और उसे रहने के लिए सात मँजिला महल दिया। विक्रमादित्य स्त्री तथा पुत्र के साथ आनंद से अपना समय बिताने लगे और न्याय पूर्वक राज्य शासन करने लगे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिव्य सिंहासन

एकदा शुभ मुहूर्त में राजा ने कारीगरों को बुलाया तथा सिद्ध विद्या वाले तक्षकों (लुहार) को कीर काष्ठ (लकड़ी विशेष) का रत्न जटित सिंहासन बनाने की आज्ञा दी। कारीगरों ने राजा विक्रमादित्य के लिए शीघ्र ही कीरकाष्ठ का अत्यन्त मनोरम रत्न जटित सिंहासन बनाया और उस में कीरकाष्ठ की ही रत्न जटित बत्तीस पुत्तलिकायें लगाई। बत्तीस पुत्तलिकाओं से युक्त वह सिंहासन सुन्दर काष्ठ से अच्छे मुहूर्त में बना होने के कारण अत्यन्त दीप्तिमान् था। "राजा विक्रमादित्य के साहस से प्रसन्न होकर इन बत्तीस पुत्तलिकाओं से युक्त यह श्रेष्ठ सिंहासन इन्द्र ने लाकर दिया है।" इत्यादि अनेक प्रकार से पंडितों ने प्रशंसा की। उस सिंहासन को ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त हुई, जो आज तक भी लोगों में प्रचलित है।

योगी का अद्भुत फल भेंट करना

एक समय कोई योगी राज द्वार पर आये तथा द्वारपाल से राजा को निवेदन करवाया। राजा की आज्ञा मिलने पर वह योगीराज राजा के समीप उपस्थित हुए और एक बीजपुर (बीजोरा—जम्बीरी लीम्बू) भेंट किया। बाद में प्रति दिन प्रातःकाल वह योगिराज एक एक बीजपुर भेंट देता रहा। कई दिन बाद एक मर्कट-बंदर राजा के हाथ से वैसा एक बीजपुर लेकर खाने लगा, तो उस में से एक रत्न निकल कर नीचे गीरा। वह अमूल्य रत्न देख कर राजा ने योगीराज से पूछा कि—'आपके इस प्रकार के रत्न को इस में गुप्त रख कर भेंट देने का क्या कारण है?"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योगीराज ने उत्तर दिया कि–'राजा, देवता, गुरु, उपाध्याय–शिक्षक और वैद्य–इन सब के पास रिक्त–खाली हस्त नहीं जाना चाहिये। फल से ही फल का आदेश करना चाहिये। मनुष्यों का किया हुआ उपकार कल्याण कारक होता है, परन्तु सज्जन व्यक्ति–सात्विक प्रार्थना को भंग नहीं करते। अपने पेट तथा परिवार के भरण पोषण के व्यापार में अत्यन्त अभिरुचि रखने वाले हजारों क्षुद्र व्यक्ति संसार में वर्तमान हैं, परन्तु परार्थ ही जिसका स्वार्थ है, ऐसा जो सज्जनों का अग्रणी व्यक्ति है, वही उत्तम पुरुष है। जैसे वडवानल कभी नहीं भरने वाले अपने पेट को भरने के लिये समुद्र का जल पीता है, किन्तु मेघ उष्णता से संतप्त संसार के सन्ताप को नाश करने के लिये समुद्र का जल पीता है। लक्ष्मी स्वभाव से ही चञ्चला है, जीवन लक्ष्मी से भी अधिक चञ्चल है और भाव तो जीवन से भी अत्यधिक चञ्चल होता है। अतः उपकार करने में क्यों विलम्ब किया जाय?'

योगीराज की यह बात सुन कर राजा विक्रमादित्य ने कहा कि 'आपको क्या प्रयोजन है? वह मुझे कहो।' तब योगीराज ने कहा कि 'हे राजन्! प्राणियों का साहस से अत्यन्त कठिन कार्य भी शीघ्र सिद्ध होजाता है। तथा उससे अत्यन्त सुख होता है। क्योंकि—

श्रीरामचन्द्र को लंका जीतना था, तथा पाँव से ही समुद्र पार करना था, पुलस्त्य ऋषि के वंश में उत्पन्न रावण जैसे बलवान् व्यक्ति के साथ उनकी शत्रुता थी और युद्ध भूमि में लड़ने वाली सेना भी बन्दरों की थी, फिर भी श्री रामचन्द्र ने समस्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राक्षस समूह का संहार किया। अतः सच बात यह है कि क्रिया सिद्धि महान् आत्माओं को अपने आत्मबल से होती है, सामग्री के बल से नहीं। ×

इसी प्रकार सूर्य के रथ में एक ही चक्र है तथा रथ को वहन करने वाले घोड़े साँप से बँधे हुए हैं। मार्ग आकाश जैसा शून्य है जिस में कोई अवलंब नहीं और रथ को चलाने वाला सारथी भी चरण हीन है, फिर भी सूर्य प्रतिदिन अपार आकाश को पार करता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि महान् व्यक्तियों को क्रिया सिद्धि अपने आत्मबल से ही मिलती है सामग्री के बल पर नहीं। हे राजन्! मेरी प्रार्थना है कि मैं एक मंत्र सिद्ध करने के लिये अनुष्ठान कर रहा हूँ, उस में सात्विकों में अग्रणी आप उत्तर साधक बनकर सहाय करें।'

राजा का उत्तर साधक बनना

राजा विक्रमादित्य उस योगी का वचन मानकर तलवार लेकर निर्भयता से उस के साथ रात्रि में वन के मध्य में पहुँचे। मैं एकाकी हूँ, अथवा असहाय हूँ, मेरे साथ में कोई परिवार सेना नहीं है इत्यादि चिन्ता सिंह को स्वप्न में भी नहीं होती, उसी तरह निर्भय

× विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि-
विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्याजौ रामः सकलमवधीत् राक्षसकुलं।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥ ३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा उस योगी के साथ वन में पहुँच कर योगी की सहायता के लिये तत्पर हुए। उस दुष्ट बुद्धि वाले योगी ने राजा को वृक्ष की शाखा में बँधे हुए एक शव को लाने के लिये भेजा और स्वयं खदिर की लकड़ी से एक कुंड में अग्नि प्रज्वलित कर के अपनी क्रिया करने के लिये वहाँ ध्यान में लीन हो गया।

राजा ने वृक्ष पर चढ़ कर मृतक के बन्धन काटे और उसे नीचे गिराया। फिर स्वयं भी नीचे उतरा तब तक तो वह शव पुनः पूर्ववत् ही उस वृक्ष की शाखा में लग गया। यह देख कर राजा उस शव को लेने की इच्छा से पुनः वृक्ष पर चढ़ा इस प्रकार राजा का कष्ट देख कर अग्निवैताल उस शव के शरीर में प्रवेश करके राजा से बोला कि 'हे राजन्! बुद्धिमानों का समय काव्य, गीत और शास्त्र के श्रवण तथा विनोद में बीतता है और मूर्खों का समय व्यसन,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निद्रा तथा कलह में ही बीता करता है। अतः मैं तुम को एक पुरातन कथा सुनाता हूँ, वह सावधान चित्त से सुनो। धीरे धीरे उस मृतक ने सारी रात्रि में राजा को पच्चीस कथाऐं सुनाई। यही कहानियाँ 'वैताल पचीसी'' के नाम से प्रसिद्ध हैं। राजा का अनिष्ट होता देख कर अग्निवैताल ने इन पच्चीस कथाओं में अधिकांश रात्रि बिता दी और राजा से कहा कि 'यह योगी छल से तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुष की बलि देकर शीघ्र ही सुवर्ण पुरुष बनाना चाहता है।' इसलिये तुम इस योगी का विश्वास मत करना। यह दुरात्मा छली है और पापियों का शिरोमणि है। वक्र व्यक्ति माया से अपने स्वरूप को गुप्त रखते हैं। दूध देने पर भी दुष्ट सर्परूपी दुर्जन तो लोगों को काटता ही है। मैं मन्त्र का जप करने वाले उस दुरात्मा योगी के समीप नहीं जा सकता इसलिये तुम ही उस योगी के पास जाओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस मृतक की यह बात सुनकर राजा अपने मनमें आश्चर्य चकित होकर सोचने लगे कि दुष्ट बुद्धि दुर्जन लोग व्यर्थ ही अपने— जन्म को नष्ट कर देते हैं। एक जन्म के सुख के लिये मूर्ख लोग प्रतिदिन छल कपट करते हैं और उसके कारण लाखों जन्मों का व्यर्थ ही नाश कर देते हैं। सुन्दर कर्मों में सतत मग्न रहने वाले सज्जन पुरुष शान्ति से ही वश में आते हैं। पर दुर्जन लोग बलात्कार करने से ही मानते हैं। सर्प बराबर दूध ही पिये तो भी मुँह से विष वमन ही करेगा। पर महौषधि के प्रयोग करने से वही सर्प कमल की रज के समान शीतल हो जाता है। यह योगी मेरा क्या कर सकता है? यदि वह कुछ बुरा करना भी चाहेगा तो मैं समयोचित कार्य करूँगा।

क्योंकि—

बुद्धिमान् व्यक्ति बीते हुए समय की चिन्ता नहीं करते तथा जो होने वाला है उसकी भी चिन्ता नहीं करते, केवल वर्तमान काल के अनुसार ही व्यवहार करते हैं।×

यह सोच कर राजा ने उस शव को अपनी पीठ पर लेकर धूर्त योगीराज के समीप उपस्थित हुआ। मृतक को लाया हुआ देख कर योगीराज–अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फिर उसने राजा से कहा कि 'मैं तुम्हारा शिखाबन्धन करता हूँ, जिससे होम करने में कोई विघ्न आकर खड़ा न होगा। फिर राक्षस, व्यन्तर, प्रेत–भूत और

×गतीतं नैव शोचन्ति, भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः ॥५७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दैत्य आदि कोई भी विघ्न नहीं कर सकेंगे विद्या के साधक लोग पहले अंग रक्षा करना ही श्रेष्ठ समझते हैं। पहले अंग रक्षा करने से निश्चय पूर्वक उनके सब काम सिद्ध हो जाते हैं।' राजा से यह कह-कर वह योगीराज शिखाबन्धन करने के लिये तैयार हुआ। फिर राजा के मस्तक पर शिखाबन्ध करके वह दुष्ट योगीराज अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा विक्रमादित्य ने सोचा यह दुष्ट योगी बहुत बड़ा पाखण्डी है। इसलिये मुझको ऐसा काम करना चाहिये जिससे मेरा संरक्षण होवें।

सुवर्ण पुरुष की प्राप्ति

इधर वह दुष्ट बुद्धि योगी राजा को अग्निकुण्ड में देने का विचार करने लगा, उधर राजा अग्निवैताल के वचन स्मरण करने लगा और सोचने लगा कि यह दुरात्मा योगी अपनी उदरपूर्ती के लीये कितना बड़ा पाप प्रपञ्च कर रहा है। अग्निकुण्ड की प्रदक्षिणा देते हुए योगी राजा की आहुति देने को तैयार हुआ तो राजा विक्रमादित्य ने चालाकीसे उस दुरात्मा योगी को ही अग्निकुण्ड में डाल दिया, जिससे वहाँ तुरत ही सुवर्णमय पुरुष उत्पन्न हुआ। उस सुवर्ण पुरुष का अधिष्ठायक देव तत्काल वहाँ प्रकट हुआ तथा राजा को उसका प्रभाव बतला कर अन्त-र्ध्यान हो गया। अहिंसा, संयम और तप यह सब उत्कृष्ट मंगल है। जिसका मन सतत धर्म कार्य में लगा रहता है, उसे देवता भी प्रणाम करते हैं। यद्यपि काल अत्यन्त विषम है, राजा लोग भी बहुत विषम होते हैं तथापि जो सतत धर्मपरायण रहता है उसके सब कार्य सिद्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं।

उधर नगरमें प्रभात हो जाने के बाद जब महाराजा अपने आवास में नहीं दिखाई दिये तो राज्य में बहुत शोर हुआ और महाराजा की खोज होने लगी। मंत्री गण तथा अन्य सामंत आदि राजा को खोजते हुए नगर से बाहर आये तथा ढूंढते हुए राजा के समीप गये। राजा को वहाँ देख कर मंत्री लोग बोले ' स्वामिन्! किस प्रयोजन से आप इस घोर वन में आये हैं अथवा कोई आपको यहाँ लाये है? यह स्वर्ण पुरुष आपको कैसे प्राप्त हुआ? इत्यादि वृत्तान्त हमें कहिये।'

जैसी करणी वैसी पार उतरणी,
आज करेगा सो कल पावेगा,
धोका-दगा किसी का सगा नहि,
आप ही आप धोका पावेगा

तब राजा विक्रमादित्य ने उन मंत्रियों तथा दूसरे लोगों के आगे योगी का आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। कुण्ड में से सुवर्ण पुरुष लेकर राजा ने नगर में प्रवेश किया। जो कोई प्राणी पर-द्रोह करता है, उसका फल अनिष्ट होता ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिये अपना कुशल चाहने वाले पुरुष दूसरे के अहित की चिन्ता न करे। जैसे वृद्धा सास-सासू के लिये किये हुए द्रोह का फल वधू को ही भोगना पड़ा।

वीरमती की कथा

इसकी कथा इस प्रकार है:—चन्दनपुर नाम के नगर में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक वीर नाम का श्रेष्ठी था। उसकी स्त्री का नाम वीरमती था। वीर श्रेष्ठी की विधवा माता का नाम जया था। उस वृद्धा की सेवा न पुत्र करता था और न उसकी स्त्री करती थी। इसलिये वह वृद्धा मन ही मन दुःखी रहा करती थी। जब स्त्री के सन्तान हो जाती हैं, तब वह पति से ही द्वेष करने लगती है। पुरुष जब विवाह कर लेता है, तब वह माता से द्वेष करता है। सेवक का जब प्रयोजन या स्वार्थ सिद्ध हो जाता है तब वह स्वामी से द्वेष करने लगता है। रोग मीट जाने पर लोग वैद्य से भी द्वेप करने लगते हैं। स्वेच्छा भ्रमण करने के लिये प्रतिदिन कुटिल चित्त वाली वह पापात्मा पुत्रवधु वीरमती एकान्त में वृद्ध सासू को मारने की इच्छा करती थी।

एक दिन किसी पर्व के अवसर पर उस वृद्धा सासू ने पुत्र–वधू से कहा कि बाजार में जाकर काष्ठ, गोधूम आदि ले आओ। प्रातःकाल पर्व है, इसलिये पक्वान्न आदि बनायेंगें। वह वधू बाजार में जाकर हृदय से दुःखी होती हुई गद्‌गद स्वर से अपने पति वीर श्रेष्ठी से बोली कि–'तुम्हारी माता वृद्धावस्था तथा रोग से अत्यन्त पीड़ित होने के कारण काष्ट भक्षण करना चाहती है।'

यह बात सुन कर वीर श्रेष्ठी चिन्ता से आहत होकर तुरत ही घर पर आया और अपनी माता से बोला कि ' हे माता! तुम काष्ठ भक्षण क्यों करना चाहती हो? मैं तुम्हारे बिना इस समय किस प्रकार रह सकूँगा?।'

उस वृद्धा ने अपने मन में विचार किया कि पुत्रवधू ने कपट कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के इससे ऐसी काष्ठ भक्षण आदि की बात कही है, अन्यथा इस समय मेरे आगे मेरा पुत्र इस प्रकार न बोलता। यह वधू सतत किसी प्रकार छल से मुझको मारना चाहती है। यह किसी भी युक्ति से मेरा प्राण ले लेगी। अतः यही अच्छा है कि अब मैं काष्ठ भक्षण (चिता में प्रवेश) कर मर जाऊँ यह सब सोच कर उस वृद्धा ने कहाः—"हे पुत्र! इस समय मुझको काष्ठ भक्षण करा दो। तब पुत्र और वधू दोनों ने मिलकर नगर से दूर नदी के तट पर काष्ठ भक्षण के लिये रात्रि में काष्ठ लाकर चिता बनाई। वह वृद्धा सासू भी काष्ठ भक्षण करने के लिये उपयुक्त सब क्रिया समाप्त कर के रात्रि में उस नदी तट पर उपस्थित हुई। इस वृद्धा ने चिता की प्रदक्षिणा करके उस में प्रवेश किया वीर के हाथ में रही हुई अग्नि बुझ जाने से वीर अपनी स्त्री से कह कर अग्नि लाने के लिये पुनः गाँव में चला गया।

वीरमती से ऐसा कह कर जब वह वीर चला गया तो वीरमती भय के कारण कुछ दूर चली गई। तब वृद्धा अपने मन में सोचने लगी कि व्यर्थ ही कौन ऐसा होगा जो अपने शरीर को इस प्रकार नष्ट करेगा एसा विचार के वह वृद्धा धीरे से चिता में से निकल कर नीचे उतर आई तथा चिता के पास में ही एक वृक्ष था उस पर चढ़ गई। जब वीर अग्नि लेकर आया तो उसने शीघ्र ही चिता प्रज्वलित की और वहाँ से पति-पत्नी दोनों अपने घर चले आये और निश्चिन्त सो रहे।

तत्पश्चात् उसी रात्रि में कुछ चोर श्रीपुर नाम नगर में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गये और वहाँ श्राद्ध श्रेष्ठी के घर में घुस कर चुपचाप उन्होंने बहुत से भूषण आदि की चोरी की। और चलते हुए उसी वृक्षके नीचे आ पहुँचे जिस पर वह वृद्धा बैठ हुई थी, उन्होंने वहां बैठकर अग्नि जलाई और आपस में धन का बटवारा-विभाग कीया। जब चोरों ने अच्छे अच्छे रेशमी वस्त्र तथा आभूषणों को बाँटना प्रारंभ किया, तब प्रत्युत्पन्न मति वृद्धा अत्यन्त हर्षित होकर " खाऊँ, खाऊँ " चिल्लाती हुई वृक्ष से नीचे उतरी। उसका स्वरूप देख कर यह कोई पिशाचिनी अथवा राक्षसी है, ऐसा समझ कर वे चोर अत्यन्त भयभीत होकर सब वस्तुयें वहीं छोड़ कर दशों दिशाओं में भाग गये। तब वह वृद्धा अत्यन्त प्रसन्न हृदय से सब वस्त्र तथा आभूषण धारण करके सुबह अपने घर की ओर गई।

अपनी माता को आती हुई देख कर वीर अपनी स्त्री के साथ अत्यन्त आश्चर्य चकित होता हुआ आकर माता से मिला और पूछा कि 'तुमने इस प्रकार की इतनी सम्पत्ति किस प्रकार प्राप्त की?'

उस वृद्धा ने उत्तर दिया कि मैं अपने आत्मबल से स्वर्ग में गई तथा मेरा साहस देख कर इन्द्रदेव मेरे पर अतीव प्रसन्न हुए और मुझको ये सब सम्पत्ति देकर मेरा सत्कार किया तथा शीघ्र ही मुझे पृथ्वी पर पुनः भेज दि।

सास की बात सुन कर पुत्रवधू ने पूछा कि 'यदि युवती काष्ठ-भक्षण करे तो इन्द्र किस प्रकार का सम्मान करेगा?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृद्धा ने उत्तर दिया कि यदि युवती स्त्री काष्ठ भक्षण करे तो इन्द्र अति प्रसन्न हो कर इस से भी आठ गुनी अधिक सम्पत्ति देकर उसका सम्मान करेगा ।

वृद्धा की बात सुन कर वह वधू बोली कि 'यदि ऐसी बात है तो मैं भी काष्ठ भक्षण करूँगी !' वह वधू इस प्रकार विचार कर काष्ठ भक्षण करने के लिये तैयार हुई । वृद्धा ने रात्रि में नदी तट पर ही स्वयं उसके साथ जाकर अग्नि तथा काष्ठ ला दिये और वह पुत्रवधू चिता में प्रवेश करके भस्म हो गई ।

दूसरे दिन प्रातःकाल अपनी स्त्री को आती हुई न देख वीर श्रेष्ठी ने अपनी माता से पूछा कि 'वह अब तक क्यों नहीं आई ?' तब उस वृद्धा ने उत्तर दिया कि 'हे पुत्र ! जो मर जाता है, वह फिर कभी भी लौट कर नहीं आता ।'

तब माता ने अपनी सब सत्य हकीकत कही और पुत्र के प्रति बोली कि 'तुम शोक मत करो । मृत व्यक्ति फिर नहीं आती । ऋतु बीत जाने पर फिर आती है, चन्द्रमा क्षय को प्राप्त होकर पुनः वृद्धिशाली होता है, परन्तु नदी का बहता हुआ जल पुनः लौटकर नहीं आता । ठीक उसी प्रकार जब मनुष्य का प्राण एक बार शरीर से निकल जाता है, तो पुनः लौट कर नहीं आता ।' इस प्रकार अपने पुत्र को समझा कर वृद्धा जो धन लाई थी, उससे पुत्र की दूसरी शादी करा कर सदा के लिये सुखी हो गई । अतः कहा है कि जो दूसरे का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हित या अहित का चिन्तन करता है वह स्वयं हित या अहित को प्राप्त करता है। अतः दूसरे का अनिष्ट चिन्तन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार की कथा सुनकर विक्रमादित्य अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तथा कुछ दिन के बाद किस के मत से किसका काव्य अच्छा है यह विचार कर विद्वानों का काव्य सुनने लगा। जिसका जैसा काव्य राजा सुनता था उसको उस प्रकार से दान देकर सम्मानित करता था।

बाईसवाँ प्रकरण

सिद्धसेनसूरि

विक्रम की सिद्धसेनसूरि से भेंट

श्री सिद्धसेनसूरीश्वर जी महाराज जैन शासन की प्रभावना करने की इच्छा से वृद्धवादि गुरु के शिष्य "सर्वज्ञ सूनु" –सर्वज्ञ के पुत्र, का बिरुद उपाधि–धारण करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमादित्यकी आज्ञासे मंत्रीने सिद्धसेन दिवाकरजीके पवित्र चरणोंमें कोटि द्रव्य अर्पण किया

[मु. नि. वि. सं. पृ. २६३ विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने लगे। श्री सिद्धसेनसूरीश्वर जी महाराज ने विहार करते हुए कई भव्य जनों को जिन कथित धर्म का ज्ञान कराया। और भव्य प्राणियों के मिथ्यात्व रूप विष को सर्वज्ञ कथित आगम रूपी अमृत रस से नष्ट किया। श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज विहार करते हुए अवन्तीपुर के बाहर उद्यान में आकर ठहरे। कीडा करने के लिये जाते हुए राजा विक्रमादित्य ने उन्हें वहाँ देख कर परीक्षा करने के लिये हाथी के उपर बैठे बैठे ही मन ही मन सूरीजी को भाव नमस्कार किया। तब श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज ने हाथ उठा कर उस को धर्म लाभ रूप आशीर्वाद दिया।

राजा विक्रमादित्य ने कहा कि 'आपने मुझे धर्म लाभ क्यों दिया? मैं ने तो आप को वन्दना की नहीं है ?। क्या समर्थ–शक्तिशालि व्यक्ति ऐसे ही धर्म लभ प्राप्त कर सकता है।

राजा की बात सुन कर श्री सिद्धसेनसूरीश्वर जी ने उत्तर दिया कि जो वन्दना करता है, उसी को धर्मलाभ दिया जाता है। तुमने काया से वन्दना नहीं की है, परन्तु मन से तो भाव वन्दना की हैं।

दान व जीर्णोद्धार

श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी की बात सुन कर राजा विक्रमादित्य चकित होकर हाथी से नीचे उतरा तथा प्रसन्न हो कर श्री सूरीश्वरजी को वन्दना की और कोटि सुवर्ण सूरीजी को देने के लिये मन्त्री को फरमान किया, तुरंत ही मन्त्री ने कोटी सुवर्ण द्रव्य सूरिजी के पवित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरणों में धर दिया। आचार्य श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी तो निर्लोभी थे, इसलिये उन्होंने राजा के दिये हुए धन को नहीं लिया। राजा उस धन का दान कर चुका था, इसलिये उस ने भी वह धन वापस नहीं लिया। तब आचार्य श्री के उपदेश से उस धन को जीर्णोध्धार में व्यय किया। राजा के कोषाध्यक्ष ने अपनी बही में लिखा कि दूर से हाथ उठा कर धर्म लाभ कहने पर श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी को राजा विक्रमादित्य ने कोटि सुवर्ण समर्पित किया।

ओंकार नगर में

एकदा श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी ग्राम नगर में विचरते विचरते ओंकारनगर पधारे वहाँ जिन कथित धर्म का श्रवण कर श्रावक लोगों ने कहा कि " हे महाराज ! श्रावक गण की समृद्धि के अनुसार यहाँ एक जिन मन्दिर की पूर्ण आवश्यकता है; किन्तु ब्राह्मणादि लोग हमें यहाँ महादेव के मन्दिर से ऊँचा जिनमन्दिर बनाने नहीं देते हैं। आप इस के लिए कुछ प्रयत्न करिये जिस से हमारी भावना पूर्ण हो ! " श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी ने कहा–कि 'आप लोगों की इच्छानुसार राजा की आज्ञा से एक बड़ा जिनमन्दिर बनवाने की आज्ञा मैं दिला दूँगा।'

आचार्य श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज ओंकारपुर से ग्रामानुग्राम विचरते हुए अनेक गाँवों में उपदेश देते हुए भव्य आत्माओं को सद्मार्ग में लगाते हुए क्रम से अवन्तीपुर पधारे। वहाँ राजा विक्रमादित्य से मिलने के लिये गये, द्वार पर पहुचने पर द्वारपाल को एक लिखित श्लोक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सर्वज्ञपुत्र जैनाचार्यश्री सिद्धसेन दिवाकरसूरीश्वरजी महाराज राजद्वारस्थित द्वारपालको श्लोक देकर राजसभामें भेज रहे है।

[मु. नि. वि. सं. पृ. २६५ विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देकर कहा कि– 'यह श्लोक राजा को दे आओ।' उन के कहने के अनुसार द्वारपाल ने राजा विक्रमादित्य को ले जाकर वह श्लोक दे दिया।

चार श्लोक का कथा

हाथ में चार श्लोक लेकर आप से मिलने के लिये एक भिक्षुक आया है, और द्वार पर खड़ा है, अतः क्या वह आवे या जावे? +

राजा से श्री सूरिजी मिलने के लिये आये हैं। उनके हाथ में चार श्लोक हैं, वे राजा को सुनाना चाहते हैं। उन्होंने द्वार पर ही खड़े रह कर उपर्युक्त श्लोक द्वारपाल द्वारा राजा विक्रमादित्य के पास भेजा। राजा ने श्लोक को पढ़ा और उसका अपूर्व रहस्यभाव जाना, साधु को अपूर्व विद्वान् समझ कर उसके उत्तर में महाराजाने एक श्लोक लिख कर द्वारपाल द्वारा भेजा। जिसका भाव है—"इस विद्वान् को दसलाख रुपये तथा चौदह नगर का शासन दो, इसके बाद यदि वह चाहे तो राज सभामें हम से आकर के मिले और जाने की इच्छा हो तो जावे"।*

ऐसा उत्तर प्राप्त करके सूरीश्वर द्रव्य ग्रहण किये बिना ही राज सभामें आये और राजा के समक्ष आ कर एक अद्वितीय श्लोक पढ़े—

+ भिक्षुर्दिदृक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारि वारितः।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः किं वाऽऽगच्छतु गच्छतु? ॥ १३७ ॥

* दीयन्तां दश लक्षाणि शासनानि चतुर्दिशः।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोको यद्वाऽऽगच्छतु गच्छतु ॥ १३९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आपने एक विलक्षण धनुर्विद्या सीखी है। इससे छुटा हुआ बाण तो आप समीप आता है और गुण डोरी दिगन्त में जाती है। तात्पर्य यह कि मार्गण अर्थात् याचक समूह तो आपके पास में रहता है और गुण यानी आपकी प्रसिद्धि दिगन्त दूर दूर दिशाओं के अन्त तक व्याप्त है। आप इतना दान करते हैं कि दान ग्रहण करने के लिये याचक लोग आप के पास दूर दूर से ही आया करते हैं। और दान करने के कारण उत्पन्न हुई कीर्ति दिगन्त में व्याप्त होती है धनुष की तो डोरी नजदीक रहती है और बाण दूर जाता है, परन्तु आपकी यह धनुर्विद्या बडी बिलक्षण है, इसमें तो मार्गण रूपी बाण समीप में रहता है और गुण दूर चला जाता है।

सारे राज्य का दान

अपूर्व भाववाले श्लोक को सुनकर राजा दक्षिण दिशा की ओर अपना मुख करके बैठ गये। तात्पर्य यह कि ऐसा विलक्षण भाव वाला श्लोक सुन कर राजा ने सन्तुष्ट होकर पूर्व दिशा का राज्य उक्त कवि सूरिजी महाराज को देने का भाव बताया।

फिर सूरीश्वरजी ने राजा के संमुख आकर पुनः दूसरा श्लोक कहा:—

आप सब को सभी चीजें दे देते हैं ऐसा जो आपका वर्णन बड़े बड़े कवि लोग करते हैं, वह बिल्कुल झूठ है। आप का शत्रु आपका पृष्ठ

× अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता पुनः।
मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥ १४१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाग-पीठ नहीं प्राप्त कर सकता है अर्थात् आप कभी किसी से पराजित नहीं हुए। पराजित राजा की ही पीठ दुश्मन देखते हैं। तथा पर स्त्री आप का वक्षस्थल–छाती का भाग नहीं प्राप्त कर सकती है, अर्थात् आपने कभी भी पर स्त्री से संपर्क नहीं किया। अतः आप सभी वस्तु ओं के दाता कहे जाते हैं यह कैसे होसकता है ?+

इस अपूर्व श्लोक को सुन कर राजाने पुनः संतुष्ट होकर दक्षिण दिशा का राज्य कवि को समर्पण करने का भाव दिखाते हुए अपना मुँह पश्चिम की तरफ फिरा दिया पुनः सूरीश्वरजी ने राजा के सामने आकर निम्न श्लोक पढ़ेः—

हे राजन्! आप की कीर्ति चारों समुद्र में मज्जन स्नान करने से ठंडी होगई थी इसलिये अभी वह कीर्ति धूप की इच्छा से सूर्यमंडल में गई है। अर्थात् चारों दिशाओं में तो आपकी कीर्ति फैली हुई ही थी, परन्तु अब वह स्वर्ग तक पहुँच गई। पुनः राजा के उत्तर दिशा की ओर घूम जाने से सूरिजीने उनके सन्मुख जाकर चौथा श्लोक पढ़ाः—×

हे राजन्! संग्राम में आप की गर्जना से शत्रु का हृदय रूपी धट फूटा जाता है पानी उसकी पत्नी की आखों से गिरने लगा, यह परम आश्चर्य है। अर्थात् चारों लड़ाई में जब आप से आप का

\+ सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः।
नाऽरयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः॥ १४२॥

× त्वत्कीर्तिर्जाति जाड्येव चतुराम्भोधिमज्जनात्।
आतपाय महीनाथ! गता मार्त्तण्डमण्डलम्॥ १४३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शत्रु मारा गया तब उस की पत्नियाँ रोने लगीं और उनकी आंखों से इस प्रकार आँसू बहने लगे कि जैसे फूटे हुए घड़े से पानी बहता हो।*

इसके बाद श्री सूरिजी पाँचवाँ श्लोक बोले कि—

हे राजन् ! सरस्वती तो आप के मुख में है और लक्ष्मी हाथ में है, तो क्या कारण है कि आप की कीर्ति कुद्ध होकर देशान्तर में चली गई ? अर्थात् सरस्वती और लक्ष्मी तो आप को कभी भी नहीं छोड़ती है और आपकी कीर्ति दिग् दिगन्त में व्याप्त है ।+

इस प्रकार श्लोकों का द्विअर्थी भाव समझ कर राजा अत्यन्त चमत्कृत हुआ तथा आसन से शीघ्र ही उतर कर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके बोला कि–'हाथी– घोड़े रत्न आदि से संयुक्त यह समृद्धिवान् राज्य मेरे– पर कृपा करके, आप इसी समय स्वीकार कीजिये ।'

तब श्री सूरिजी बोले कि 'मैंने अपने माता–पिता के सब धन का पहले से ही त्याग किया है। इस कारण मेरा मन सर्वदा मिट्टी और सुवर्ण में तुल्य ही है। हमारे जैसे साधुओं का मन शत्रु, मित्र, तृण, स्त्रियों का समूह, सुवर्ण, प्रस्तर, मणि, मृत्तिका, मोक्ष और संसार में समान ही रहता है। मैं सर्वदा भिक्षा से प्राप्त किये हुअे अन्न का ही

---

* आहते तव निःस्वाने स्फुटितं रिपुहृद्घटैः ।
गलिते तत्प्रियानेत्रे राजन् ! चित्रमिदं महत् ॥ १४४॥

+सरस्वती स्थिता वक्त्रे, लक्ष्मीः करसरोरुहे ।
कीर्तिः किं कुपिता राजन् ! येन देशान्तरं गता ॥ १४५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्षण करता हूँ, सादे वस्त्र धारण करता हूँ और पृथ्वी पर शयन करता हूँ। ऐसी अवस्था में यह ऐश्वर्य पूर्ण राज्य लेकर मैं क्या करूँगा ?'

ओंकार नगर में दान

राजा ने श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी को निर्लोभ और सर्वज्ञ समझ कर उनकी प्रशंसा की। तब श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी महाराज ने ओंकारपूर में श्रावकों की इच्छानुसार राजा विक्रमादित्य द्वारा एक बड़ा भारी जिन मन्दिर बनवाया।

सूरि की सूत्रों को संस्कृत में रचने की इच्छा

एकदा प्रातःकाल श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी उस जिन मन्दिर में अत्यन्त प्रसन्न हृदय से इष्ट देव को वंदन करने के लिये गये। उस दिन देवालय में श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी को वंदन करने के लिये बहुत से सांसारिक व्यक्ति एकत्रित हो गये। श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी ने हर्षपूर्वक कई प्रकार की स्तुति से श्रीऋषभदेव का गुणगान किया तथा चैत्य—वन्दन किया और " नमुत्थु णं " इत्यादि अच्छी स्तुतियों से श्री वर्द्ध-मान जिनेश्वर को नमस्कार किया नमुत्थु णं इत्यादि प्राकृत स्तोत्र से नमस्कार करते हुए श्रीसूरीजी को देखकर संसारी जन बहुत हँसे और बोले कि—'इतने दिनों से इतने शास्त्रों का अभ्यास किया, तो भी इस प्रकार के प्राकृत—स्तोत्रों से ही अर्हत प्रार्थना क्यों करते हैं ?' उन लोगों का वचन सुन कर श्रीसिद्धसेनसूरीश्वरजी कुछ लज्जित हो गये। उस नगर से विहार करके प्रतिष्ठानपुर में उपस्थित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए। वहाँ अपने गुरु श्रीवृद्धवादि सूरीश्वरजी को नमस्कार करके श्रीसिद्धसेनसूरीजी ने विनय से अञ्जलिबद्ध होकर पूछा कि—'हे गुरु! प्राकृत में बने हुअे जो वन्दनादिक सूत्र हैं, वे विद्वानों के सामने शोभा नहीं देते; अतः यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उन सूत्रों को संस्कृत में बना दूँ।'

गुरु श्रीवृद्धवादिसूरीश्वरजी ने कहा कि "हे महाभाग! गौतमादि गणधर भगवंतादि जो चौदपर्व आदि सब शास्त्रों के पारंगत थे, क्या वे संस्कृत में वन्दनादिक सूत्र बनाना नहीं जानते थे? उन्होंने सबकी भलाई के लिए ये सूत्र प्राकृत में बनाये हैं। इसलिये तुमने इस प्रकार का वचन—बोलकर उनकी आशातना करके महान पाप—अशुभ कर्म उपार्जन किया है। उस पाप से तुम निश्चय ही दुर्गति में गिरोगे। तुम ने इस समय सिद्धान्त की आशातना की है। इसलिये तुम को संसार में बहुत भ्रमण करना पड़ेगा।"

पूज्य गुरुदेव की बात सुन कर श्रीसिद्धसेनसूरीजी ने कहा कि मैंने मूर्खता वश व्यर्थ ही अनेक प्रकार के दुःख को देने वाला ऐसा वाक्य कहा इस पाप के कारण मुझको नरक में गिरना होगा। इसलिये आप कृपा करके मुझे इसका उचित प्रायश्चित्त बता दीजिये।

गुरु द्वारा प्रायश्चित्त

श्री वृद्धवादिजी गुरु ने कहा कि 'बालक स्त्री, मूर्ख, सब के उपकार के लिये ही श्रीगौतमादि गणधरों ने प्राकृत में रचना की है, इसलिये तुम्हारे जैसे व्यक्ति को इसका बहुत बड़ा प्रायश्चित्त करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होगा।' बारह वर्ष पर्यन्त अवधूत के वेष में गुप्त रह कर खूब तप करो अंत में किसी राजा को जैनधर्म का उपदेश करो। तब तुम्हारा पाप से छुटकारा होगा अन्यथा नहीं।'

अवधूत वेष में

श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी अपने गुरुदेव के दिये हुए प्रायश्चित्त को हृदय से ग्रहण कर वहाँ से चल दिये। अवधूत के वेष में निरन्तर स्थान स्थान पर भ्रमण करने लगे।

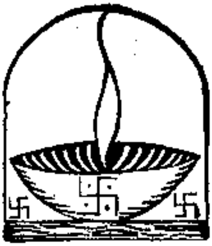

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेईसवाँ प्रकरण

कन्या की शोध

एकदा राजा विक्रमादित्य अपनी सभा में बैठे हुए थे। वह हस्ती, घोड़े, और सैन्य युक्त अपने अत्यन्त समृद्ध राज्य को देखकर जैसे समुद्र पूर्ण चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होता है उसी प्रकार खुश होते थे। उस दिन प्रातःकाल सभा में बैठे हुये राजा भट्टमात्र आदि से कहने लगे "हे मंत्रीश्वर! जैसे बिना सूर्य के आकाश शोभा नहीं पाता है उसी प्रकार मेरा अन्तःपुर भी योग्य पुत्र वधू बिना शोभा नहीं पाता। इसलिये मैं इस पुत्र के विवाह होने तक प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके विवाह पश्चात् ही दो बार से अधिक भोजन करूँगा, अयन्था नहीं।

पुत्रवधु की खोज

तब राजा की आज्ञा के अनुसार चारों दिशाओं में अनेक राजसेवकों को कन्या देखने के लिये भेजा। वे सब स्थान स्थान खूब भ्रमण करके पुनः लौटे और राजा के पास आकर बोले कि 'विक्रमचरित्र योग्य हमें कहीं भी कोई कन्या नहीं मिली। किसी भी राजा की कन्या इस के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योग्य नहीं है।'

उन लोगों की बात सुन कर राजा विक्रमादित्य स्वयं कन्या को खोजने के लिये उद्यत हुए। भट्टमात्र ने देखा कि राजा को स्वयं ही कन्या देखने के लिये जाने की इच्छा है तो वह राजा से बोले कि 'राजाओं का यह आचार नहीं है कि साधारण लोगों के समान स्वयं पुत्र के लिये कन्या को देखने जायँ। इसलिये आप यहाँ रहें। मुझे आदेश दीजिये। मैं दूर दूर तक जाकर कन्या की खोज कर के आऊँगा।'

राजा का आदेश प्राप्त कर के भट्टमात्र ने चतुरङ्गिणी सेना से युक्त होकर बाहर जाने के लिये प्रस्थान किया। राजा ने सेना से कहा कि 'हे सुभट लोग! आप लोग मेरे मंत्री भट्टमात्र की आज्ञा सतत आदर पूर्वक पालन करें।'

उन सेवकों ने उत्तर दिया कि—'हे राजन्! आपका यह वचन प्रमाण है। क्योंकि राजा के आदेश की आराधना अत्यन्त सुख देने वाली होती है।'

अवन्ती से कुछ दूर जब भट्टमात्र की सेनाका पड़ाव पड़ा हुआ था, तब वहाँ एक 'भट्ट' आया। उसने सेना को देख कर लोगों से पूछा कि 'यह इतनी बड़ी विशाल सेना किस की है?' तब किसी ने उत्तर दिया कि 'यह तो राजा विक्रमादित्य के मंत्री श्री भट्टमात्र की सेना है।' यह सुन कर भट्ट ने पुनः पूछा कि 'जब मंत्री की सेना ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतनी बड़ी है, तब राजा की सेना कितनी बड़ी होगी?' उसे उत्तर मिला 'कि राजा की सेना तो असंख्य है।'

फिर उस भट्ट ने पूछा कि 'यह सेना क्यों एकत्रित हुई है?'

तब उसे उत्तर मिला कि 'राजा विक्रमादित्य का पुत्र विवाह के योग्य हो गया है। इसलिये उसके मंत्रीने उसके योग्य कन्या को देखने के लिये राजा के आदेश से प्रस्थान किया है।'

पुनः भट्ट ने पूछा 'राजा का पुत्र रूप गुणादि में कैसा है?'

तब उसे उत्तर मिला कि 'हम लोग उस के रूप का वर्णन अपने मुख से नहीं कर सकते। अपने रूप से उसने कन्दर्प के रूप की शोभा को भी जीत लिया है। वह अत्यन्त पराक्रम से युक्त है और विक्रमचरित्र उसका नाम है। उसने पूर्व में राजा, कोटवाल, भट्टमात्र, वेश्या, द्यूतकार, कौटिक तथा अग्निवैताल को भी बल और चालाकी से जीत लिया था। राजा विक्रमादित्य के पुत्र श्री विक्रमचरित्र का रूप और पराक्रम संसार में सब से बढ़कर है, विशेष क्या कहें।'

फिर वह भट्ट—ब्राह्मण मंत्री भट्टमात्र के समीप उपस्थित हुआ और बोला—'कि आप किस लिये इतनी बड़ी विशाल सेना से युक्त होकर प्रस्थान कर रहे हैं?' तब मंत्री भट्टमात्र ने अपने आने का कारण बताया यह बात सुनकर उस ने कहा कि 'उनके योग्य अत्यन्त दिव्य रूपवाली मेरे ध्यान में एक कन्या है।' भट्टमात्र ने पूछा कि 'वह किस की कन्या है?,' भट्ट ने उत्तर दिया कि 'सौराष्ट्र—देश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में ' वल्लभीपुर ' नाम का एक बड़ा सुन्दर नगर है। वहाँ पराक्रमी 'महा-बल' नामक राजा है। उनकी स्त्री का नाम 'वीरमती' है। उसी की दिव्य रूप तथा शोभा वाली 'शुभमती' नाम की कन्या है। वह सकल विद्याओं में पारंगत है तथा युवावस्था को प्राप्त हुई है। वह युवकों के मन को मोहने वाली है और वह कन्या सब कलाओं में कुशल और अत्यन्त धर्मशीला है।'---

आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सब पशु-तथा मनुष्यों में समान हैं। केवल धर्म ही मनुष्य में विशेष है। जिस मनुष्य में धर्म नहीं है वह पशु के समान है। विद्या मनुष्यों का सर्वश्रेष्ठ रूप है। विद्या अत्यन्त गुप्त-धन है। विद्या ही अत्यन्त श्रेष्ठ धन और साथ ही साथ भोग देने वाली है। यशः और सुख को देने वाली विद्या ही है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विदेश गमन करने पर विद्या बन्धु के समान सहायता करती है। विद्या ही उत्कृष्ट देवता है। राजा विद्या के ही प्रभाव से पूजित होता है। धन के प्रभाव से पूज्य नहीं हो सकता। अतः जो विद्या से रहित है वह मनुष्य मानों पशु के ही समान है।+

शुभमती में धर्म और विद्या दोनों समान रूप से विद्यमान हैं। उस शुभमती के योग्य वर अनेक देशों में और चारों दिशाओं में

+ आहार-निद्रा-भय-मैथुनंच,
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो,
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥ २०२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ढूँढने पर भी अभी तक महाबल महाराजा को नहीं मिला है।'

इसी वार्तालाप के अवसर पर राजा विक्रमादित्य का पुत्र विक्रम चरित्र वहाँ उपस्थित होगया। तब राजा के पुत्र को देख कर वह भट्ट बोला कि 'इसी के योग्य वर वह कन्या है।'

तब भट्टमात्र अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा के समीप उपस्थित हुआ तथा उस भट्ट का कहा हुआ सब वृत्तान्त राजा को कह सुनाया। सब बातें सुनकर राजा ने कहा 'हे भट्टमात्र! अत्यन्त शीघ्रता से अखण्ड गमन से वहाँ जाओ तथा विवाह की सब बातें तय कर के जल्दी ही लौट आओ।'

भट्टमात्र का वल्लभीपुर गमन

राजा की आज्ञा सुनकर भट्टमात्र को प्रस्थान करते हुए देखकर विक्रमचरित्र ने अपना खास सेवक मंत्री के साथ भेजा और उसे कहा कि तुम लोग कन्या की परीक्षा करने जाते हो इसलिये यदि मेरे योग्य वह कन्या हो तो ही विवाह का निश्चय करना अन्यथा नहीं। अनन्तर उस विशाल सेना के साथ वह भट्टमात्र क्रमशः चलता हुआ वल्लभीपुर के समीप जा पहुँचा।

वल्लभीपुर का राजा इतनी बड़ी विशाल सेना देख कर आश्चर्य चकित हो गया और अपने दूत को सामने भेजा। दूतादि द्वारा विवाह तय करने के लिये इस सेना के साथ राजा विक्रमादित्य का मंत्री भट्टमात्र आया है, ऐसा जान कर नगर के बहार के भाग में उस सेना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के रहने के लिये स्थान दिया। राजा महाबल ने प्रसन्न होकर पूछा कि 'हे भट्टमात्र! वह वर कैसा है?'

इस प्रकार राजा के प्रश्न करने पर भट्टमात्र वर के विषय में राजा महाबल को विस्तार पूर्वक सब परिचय देने लगा। भट्टमात्र कहने लगा कि 'वह राजा विक्रमादित्य का सुपुत्र है और सालवाहन राजा की कन्या सुकोमला के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। वह अपने रूप की शोभा से कामदेव के रूप की शोभा को जीत लेता है। उसके अनेक प्रकार के निर्मल चरित्रों का वर्णन कोई नहीं कर सकता। उस वर को आपके भट्टने भी देखा है। उस को आप यहाँ बुलवा कर स्वयं ही पूछ लें।'

राजा महाबल ने उस भट्ट को बुलवाया और उस को वर के विषय में सब हाल पूछे।

भट्टने कहा 'उस वर के रूप की शोभा का वर्णन कोई नहीं कर सकता। शास्त्रो में जो जो गुण वर में देखने के लिये कहे गये हैं, वे सब गुण मैंने विक्रमचरित्र में पूर्णतः देखे हैं। कुल, शील, सहायक, विद्या, धन, शरीर तथा अवस्था ये सात गुण वर में देखने चाहिये। फिर तो कन्या अपने भाग्य के अधीन ही रहती है। मूर्ख, दरिद्र, दूरदेश में रहने वाले, मोक्षाभिलाषी और कन्या की अवस्था से त्रिगुण से भी अधिक अवस्था वाले को कन्या नहीं देनीं चाहिये।'

फिर भट्टमात्र ने राजकन्या कैसी है? यह जानने की इच्छा बतलाई। तब राजा महाबल ने कहा कि 'महल में चल कर कन्या देख लीजिये।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा के ऐसा कहने पर भट्टमात्र राजमहल में राजाजी के साथ गया और कन्या को देखा। भट्टमात्र ने कन्या को अच्छी तरह देखी और बोला कि 'विवाह का निश्चय करके अविलम्ब ही लग्न स्थिर कीजये।

तब राजा ने ज्योतिषशास्त्र के अच्छे अच्छे विद्वानों को बुलाया तथा विवाह करने के लिए शुभ दिन का शोधन कराया। राजा महाबल जब भट्टमात्र से पाणिग्रहण के लिये शुभ दिन का निश्चय करने लगे, इतने में महाबल का मंत्री जो वर को खोजने के लिये देशान्तर में गया था, वह आगया। कन्या के विवाह के लिये वर के अन्वेषण के लिये पूर्व में गये हुए मंत्री को आया देख उसी समय राजा कुछ रूक गये। राजा को रूका हुआ देख कर भट्टमात्रने कहा कि 'समय बीत रहा है, इसलिये आप शीघ्रता कीजिये।'

राजा महाबल ने कहा कि 'हे भट्टमात्र! इस समय कुछ काल विलम्ब करो, क्यों कि बहुत समय से मेरा मंत्री आया है, अतः उस से पूछ लेते हैं।' फिर राजा महाबल अपने मंत्री से बातचीत करने लगे।

तब मंत्री ने कहा कि 'सपादलक्ष' देश में पृथ्वी का भूषण रूप 'श्रीपुर' नामक नगर है। वहाँ के राजा 'गजवाहन' के 'धर्मध्वज' नामक पुत्र है। वह बहुत सुन्दर है। उसी के साथ आपकी कन्या के शुभ मुहूर्त में विवाह का निश्चय करके आगामी दशमी तिथि का लग्न मैं ने तय किया है। वह शीघ्र ही जान लेके शादी के लिये अवश्य आवेगा।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मंत्री की बात सुनकर राजा व्याकुल होकर अपने हृदय में सोचने लगा कि अपने घर का शोषण करने वाली तथा दूसरे के घर को सुशोभित करने वाली कन्या को जिसने जन्म नहीं दिया, वही इस लोकमें वास्तविक सुखी है। क्योंकिः—

कन्या के जन्म लेते ही एक महान् चिन्ता उपस्थित हो जाती है कि यह कन्या किसको दें और देने पर सुख प्राप्त करेगी या नहीं। अतः कन्या का पिता होना ही कष्ट है।+

कन्या के जन्म लेते ही बड़ा शोक होने लगता है। जैसे जैसे कन्या बढती है वैसे वैसे चिन्ता भी बढती ही रहती है। उसके विवाह करने में भी बहुत बडा दण्ड देना-खर्चा करना पडता है। अतः कन्या का पिता होना महान् कष्टप्रद ही है। इस प्रकार राजा महाबल अनेक तर्क वितर्क करके भट्टमात्र के प्रति सम्मानपूर्वक इस प्रकार बोला कि 'हे भट्टमात्र! मेरा मंत्री विवाह का निश्चय करके आया है तथा वर पक्ष के लोग विवाह करने के लिये यहाँ आयेंगे। लोगोंमें यही व्यवहार है कि जिस वरके लिये पहले कन्या दे दी उसी वर के साथ कन्या का लग्न करते हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। क्यों कि आप स्वयं विचारवान् हैं। मैं इस विषय में आपसे अधिक

+ जातेति चिन्ता महतीति शोकः,
कस्य प्रदेयेति महान् विकल्पः।
दत्ता सुखं स्थास्यति वा न वेति,
कन्यापितृत्वं किल हन्त! कष्टम् ॥२३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्या कहूँ। जो उत्तम प्रकृति के लोग हैं, वे सदा सर्वकार्य विचार करके ही करते हैं। क्यों कि—

अत्यन्त शीघ्रतासे बिना विचार किये ही कोई काम नहीं करना चाहिये, क्यों कि अविवेक से बहुत बडी विपत्ति को लोग प्राप्त हो जाते हैं। जो लोग विचार पूर्वक कार्य करते हैं उनके यहाँ गुण के लोभ से लक्ष्मी स्वयं आकर निवास करती है। *

यह अपना है अथवा यह दूसरे का है, इस प्रकार का विचार तो क्षुद्रबुद्धि के लोग ही किया करते हैं। उदार चित्त वालों के लिये तो समस्त पृथ्वी ही कुटुम्ब रूप है।

भट्टमात्र इस प्रकार भक्ति से ओत प्रोत राजा का बचन सुन कर उसी समय बोला कि 'हे राजन्! जिस के साथ विवाह करने का निश्चय हो गया है, उसी को आप अपनी कन्या दीजिये।'

भट्टमात्र की बात सुन कर राजा महाबल अपने मन में विचार करने लगा कि राजा विक्रमादित्य का यह मंत्री अत्यन्त बुद्धिवान् महान् व्यक्ति है। जैसे अञ्जलि में स्थित पुष्प दोनों हाथों को सुवासित करते हैं, उसी प्रकार उदार विचार वाले व्यक्ति अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों में समान व्यवहार रखते हैं। उपकार करने का, सच्चा स्नेह करनेका सज्जन लोगों का स्वभाव ही होता है। चन्द्रमा को किसीने शीतल

* सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते ही विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥२४०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं किया है, वह स्वभाव से ही शीतल है।

भट्टमात्र जब राजा महाबल से विचार विमर्श करके लौटा तो श्री विक्रमचरित्र द्वारा मंत्री के साथ भेजे हुए सेवक सुभट कहने लगे कि इस प्रकार की दिव्यरूप वाली कन्या से श्री विक्रमचरित्र के सिवाय दूसरा कौन राजकुमार विवाह कर सकता है? हम लोग ऐसा कभी नहीं होने देंगे।

उन लोगों की बात सुनकर भट्टमात्र ने कहा के राजा महाबल की कन्या का जब मंत्री ने दूसरे राजकुमार को दे दिया है, तो इस कन्या से हम लोगों को कोई प्रयोजन नहीं है।

श्री विक्रमचरित्र के अनुचर सेवक लोग कहने लगे कि इस कन्या को लेकर अपने नगर में राजा के पुत्र श्री विक्रमचरित्र के साथ विवाह करायेंगे। श्री विक्रमचरित्र को छोड़कर यह कन्या यदि दूसरे राजा के लड़के को देदी गई तो हम लोग जीकर क्या करेंगे? तब तो हम लोग मृत तुल्य ही हो गये। जो व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार अपने स्वामी का कार्य नहीं कर सकता, उसके जीवन धारण करने से क्या लाभ? प्रत्युत उसमें लघुता ही है।

इन लोगों की ऐसी बात सुनकर भट्टमात्र ने कहा कि इस कन्या से हम लोगों को क्या प्रयोजन है? श्री विक्रमचरित्र के लिये बहुतसी दूसरी सुंदर सुंदर कन्यायें मील सकती हैं। यदि यहाँ राजा महाबल के साथ इस कन्या के लिये युद्ध करेंगे, तो बहुत मनुष्यों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संहार होगा। पुष्प से भी युद्ध नहीं करना चाहिये यह नीति वचन है, तो फिर तीक्ष्ण अस्त्र–शस्त्रों से युद्ध करने की बात ही क्या? क्यों कि युद्ध में विजय का तो संदेह ही रहता है तथा उत्तम पुरुषों का नाश होता है। इस प्रकार का न्याय युक्त भट्टमात्र का वचन सुन कर के सब सुभट मानगये। अतः भट्टमात्र अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

फिर भट्टमात्र अपने नगर में आया तथा राजा विक्रमादित्य को आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। यह सब वृत्तान्त सुन कर राजा ने कन्या को देखने के लिये दूसरे देश में मंत्री भट्टमात्र को भेजा।

श्री विक्रमचरित्र द्वारा मंत्री के साथ भेजे गये दूत श्री विक्रमचरित्र को आकर मिले। उसको दूतों ने वहाँ के सब समाचार कह सुनाया और बोले कि राजा महाबल की दिव्य रूपवती कन्या के समान संसार में दूसरी कोई भी उसप्रकार की मनोहर कन्या नहीं मिलेगी। अपने अनुचरों की ऐसी बात सुनकर उस कन्या में श्री विक्रमचरित्र को भी अनुराग हो गया। अपने मन की बात को गुप्त ही रख कर हँसते हुए वह बोले कि अंग, बंग तथा कलिंग आदि देशों में बहुतसी अत्यन्त दिव्यरूप वाली कन्यायें हैं। जो कन्या दूसरे को देदी गई है, उस कन्या से मुझे कोई प्रयोजन नहीं। मैं किसी दूसरे राजा की दिव्य रूप वाली कन्या से विवाह करूँगा।

अन्यत्र खोज

विक्रमचरित्र की बात सुनकर वे अनुचर लोग अपने अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान पर चले गये। विक्रमचरित्र भी संध्या समय में राज्य की अश्वशाला में गया। वहाँ जाकर अश्वशाला के अध्यक्ष से विक्रमचरित्र ने पूछा कि 'हे अश्वपाल! कौन कौन से घोड़े किस प्रकार के हैं? वह मुझको वर्णन कर बतलाओ।

अश्वपाल कहने लगा–'ये घोड़े सिन्धु देश के हैं, ये कम्बोज देश के हैं, इतने घोडे पंच भद्र नाम के हैं। कोङ्काह, खुङ्गाह, कियाह, नीलक, बोल्लाह, साङ्गाह, सुरुहक, हलीहक, हालक, पाटल इत्यादि विविध देशों के तथा अनेक जाति के उत्तम घोडों से राज्य की अश्वशाला अत्यन्त शोभायमान है। इन घोडों से भी ये घोडे अधिक वेगवान् हैं। साथ ही साथ मनोहर भी हैं। इनसे ये सब घोड़े और भी उत्कृष्ट हैं।'

अश्वपाल की बात सुनकर विक्रमचरित्र ने पुनः पूछा कि 'और भी कुछ अन्य घोड़े हैं क्या?'

अश्वपाल ने कहा कि यहाँ दो घोड़े हैं, इनका नाम वायुवेग तथा मनोवेग है। ये सब से अच्छे लक्षण वाले हैं। उन दोनों घोडों को देखकर अपने चित्त में चमत्कृत होता हुआ विक्रमचरित्र विचारने लगा कि 'मुझ को पाँच ही दिन में शीघ्रता से सौ योजन जाना है, इसलिये मनोवेग घोडे के बिना कार्य सिद्ध नहीं होगा।' इस प्रकार विचार कर सब अश्वों को देख कर विक्रमचरित्र लौट कर अपने स्थान पर आगया। रात्रि में अदृश्य शरीर से चुपचाप अश्वशाला में प्रवेश किया और मनोवेग अश्व पर चढ़ कर सब आभूषणों से भूषित होकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा हाथ में खड्ग लेकर विक्रमचरित्र अवन्ती नगर से बाहर निकला तथा मनों वेग अश्व से कहा कि तुम ज्ञानवान् हो एवं कुशल हो, सब अच्छे लक्षणों से भी युक्त हो, तुम्हारी गति में अत्यन्त वेग है; इसलिये हे मनोवेग अश्व ! वल्लभीपुर जहाँ है वहाँ तुम मुझे शीघ्र पहुँचाओ। विक्रम चरित्र की बात सुनकर मनोवेग अश्वने शीघ्र ही वल्लभीपुर की ओर प्रस्थान किया।

विक्रमचरित्र का वल्लभीपुर के प्रति गमन

वह अश्व अत्यन्त वेग से नगर, ग्राम, नदी तथा पर्वतों को पार करता हुआ श्री विक्रमचरित्र को वल्लभीपुर ले आया। विक्रमचरित्र नगर के बाहर ठहर कर विचार करने लगा कि किसी भी पुरुष का कार्य उस स्थान के किसी व्यक्ति को सहायक बनाये बिना सिद्ध नहीं होता, यह विचार कर विक्रमचरित्र स्थान स्थान पर नगर की अपूर्व शोभा को देखता हुआ नगर में घूमने लगा। और मन ही मन नगर कि शोभा देखकर उसकी सुन्दरता से खुश हो रहा था। इस प्रकार नगर में घूमते हुए 'श्रीदत्तनाम' के श्रेष्ठी के घर के पास आ पहुँचा। वहाँ उसकी पुत्रीने गवाक्ष से अश्वारुढ विक्रमचरित्र को देखा, विक्रमचरित्र को देखकर उस के रूप से मोहित होकर वह अपनी सखी से कहने लगी कि अत्यन्त सुन्दर इस पुरुष को तुम शीघ्र बुलाकर यहाँ लाओ।

श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी के कहने पर उसकी सखी विक्रमचरित्र को मधुर शब्दों द्वारा बुला कर ले आई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

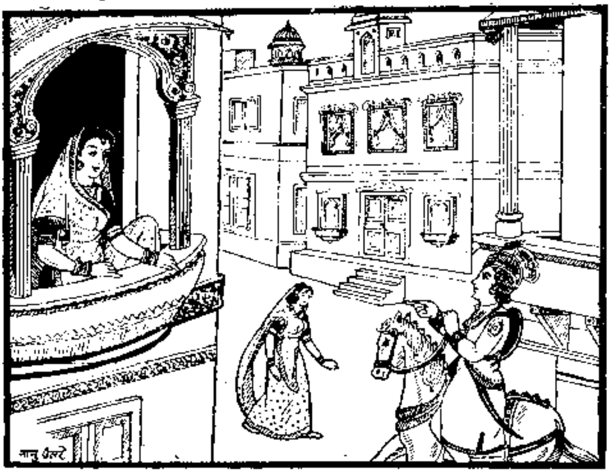

उस कुमारी को देख कर विक्रमचरित्र ने कहा कि 'हे भगिनि ! तुम्हे नमस्कार है। तुमने मुझे यहाँ क्यों बुलाया है ?'

विक्रमचरित्र की यह बात सुन कर लक्ष्मी मूर्छित हो गई। सखीने शीतलोपचार कर के उसको सचेतन किया। सचेत होकर वह लक्ष्मी पृथ्वी पर शून्यचित्त होकर तथा उदासीन मुख लेकर बैठी रही। सखी द्वारा बहुत पूछने पर भी वह कुछ नहीं बोली तब दासियों ने कहा कि तुम अपने दुःख का कारण हमें बतलाओ। विक्रमचरित्र अपने मन में विचार कर ने लगा कि मेरे यहाँ आते ही इस को ऐसा कष्ट हुआ, इसलिये मुझको बार बार धिक्कार है। जब दासियो ने बार बार प्रश्न किया तब लक्ष्मी कहने लगी कि 'मैंने इस पुरुष को अपना पति बनाने की मनमें इच्छा की थी, परन्तु इस ने तो मुझे भगीनी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कह कर संबोधित किया, यह मेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। इसलिये मेरे मन में अत्यन्त दुःख हुआ और मूर्छा आई।'

तब सखी कहने लगी कि 'इसका तुम अपने हृदय में तनिक भी खेद मत करो। ऐसा स्वरूपवान पुरुष तुम्हारा भ्राता–भाई तो हुआ। देव, दानव, गन्धर्व, राजा, दरिद्र या धनिक कोई भी अपने पूर्व जन्म में किये हुए पापों से मुक्ति नहीं पाता है। जिसके जिस प्रकार के कर्म होते है उसे उसी प्रकार का फल मिलता ही है। इस में कीसी भी व्यक्तिसे अन्यथा नहीं हो सकता।

अपनी सखी एवं दासियों के समझाने पर लक्ष्मी ने शोक का परित्याग किया। उसने विक्रमचरित्र को अपना भ्राता समझ कर उसके लिये भोजनादि की व्यवस्था की तथा उसका सन्मानकर अपने घर में रखा। विक्रमचरित्रने भोजनकर के आराम किया। कुछ देर बाद सड़क पर वाजित्र का नाद सुन कर विक्रमचरित्र जाग गया और लक्ष्मी से पूछने लगा कि 'नगर में इस समय क्या हो रहा है और वह वाजिंत्र नाद किस कारण से है?'

लक्ष्मी ने कहा कि 'आज रात्रि में राजा की कन्या का धर्म-ध्वज नामक राजपुत्र से शुभ मुहूर्त में विवाह होगा। इसलिये नगर में चारों और स्थान २ पर ध्वजा, तोरण आदि बान्धे गये हैं और स्थान २ पर अच्छे अच्छे नर्तक लोक नाना प्रकार के नृत्य आदि कर रहे हैं।'

यह बात सुनकर विक्रमचरित्र ने पुनः लक्ष्मी से कहा कि 'हे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगिनि! तुम इस राजकन्या से आज ही मेरी मुलाकात करा दो। अन्यथा अपने प्राण मैं अभी त्याग देता हूँ।'

विक्रमचरित्र की बात सुनकर लक्ष्मी कहने लगी कि 'वह राजा की कन्या है। मैं तुम्हें कैसे मिला सकती हूँ? क्यों कि राजा महाबल ने राजपुत्र धर्मध्वज को कन्या दे दी है।'

"जब जल वह कर चला जाय तब पुल बाँधने से क्या लाभ? जब मनुष्य मर जाय बादमें औषध देने से क्या लाभ? इसी प्रकार जब मुंडित होकर संन्यासी हो गये बादमें मुहूर्त पूछना व्यर्थ ही है। जो वस्तु हाथ से चली गई उसके लिये शोक करना निरर्थक ही है।"×

'बराती भी आ पहुँचे हैं और आज ही पाणिग्रहण का दिन है, अतः इस समय यह आप की अभिलाषा पूर्ण होना असम्भव है।'

लक्ष्मी की इसप्रकार की बात सुनकर विक्रमचरित्र ने शीघ्र ही हाथ में तलवार ली और अपने वक्षःस्थल में मारने को तैयार हुआ, इतने में लक्ष्मी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली कि 'मैं तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करने का प्रयत्न करूँगी। तुम स्थिर चित्त बनो, उद्-विग्न मत बनो। इस प्रकार विक्रमचरित्र को आश्वासन देकर लक्ष्मी

× गते जले कः खलु सेतुबन्धः
किं वा मृते चौषधदानकृत्यैः।
मुहूर्तपृच्छा किमु मुण्डिते का
हस्ताद् गते वस्तुनि किं हि शोकः ॥३००॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजकन्या की माता के पास गई । वहाँ जाकर बोली कि आपकी कन्या का सब श्रेष्ठियों के घर पर विनोल्क (भोजनादि सत्कार) हुआ है, अतः आज मेरे घर पर भी होना चाहिये । इस प्रकार अनेक युक्ति-युक्त बातें कहकर महारानी को खुस किया तथा राजा की कन्या को अपने घर का गौरव बढाने के लिये अपने साथ ले आई ।

राजपुत्री से मिलन

जब वह राजकन्या लक्ष्मी के घर पहुँची, तो विक्रमचरित्र तथा राजाकी पुत्री दोनों परस्पर एक दूसरेका रूप देख कर तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़े, इन दोनों को इस प्रकार मूर्छित देख कर लक्ष्मी बार बार अपने मन में विचारने लगी कि महारानी को मैं क्या उत्तर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूँगी। लक्ष्मी ने तुरंत ही शीतोपचार आदि करके उन दोनों को सचेत किया।

फिर वे दोनों ही लक्ष्मी से कहने लगे कि 'हमारा विवाह करा दो, अन्यथा हमारी मृत्यु हो जायगी।'

इन दोनों की यह बात सुन कर श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी चिन्ता से व्याकुल होकर सोच कर ने लगी कि 'अब क्या किया जाय? जैसे एक तरफ व्याघ्र हो और दूसरी ओर नदी हो, तो प्राण संकट में पड़ जाते हैं। क्यों कि मनुष्य व्याघ्र से बचने जाता है तो नदी में गीर जाता है और नदी से बचने पर उसे व्याघ्र भक्षण कर लेता है। ठीक इसी प्रकार इस समय मेरे लिये धर्मसंकट उपस्थित हो गया है।'

"जो अर्थ (धन) के लिये आतुर है उस का न कोई मित्र होता है और न कोई बन्धु ही होता है। क्षुधातुर व्यक्ति के शरीर में बिलकुल ही तेज नहीं रहता, चिन्ता से आतुर व्यक्ति को सुख तथा निद्रा नहीं होती और कामातुर मनुष्य को भय और लज्जा नहीं होती।" ÷

अंतमें इस समस्या का अपने मन में उपाय ढुँढकर लक्ष्मी ने कहा कि 'हे राजपुत्री! इस समय तो मैं तुम को उत्सव

÷ **अर्थातुराणां न सुहृदन्न बन्धुः,**
क्षुधातुराणां न वपुर्न तेजः।
कामातुराणां न भयं न लज्जा,
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा॥३१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहित राजमहल में पहुँचा देती हूँ, जब धर्मध्वज तुम से विवाह करने के लिये चोरीमंडप में आ जावे, तब तुम राजमहल के पीछले द्वार पर आभूषण वस्त्र आदि लेकर शीघ्रता से निश्चय ही आ जाना। यह राजपुत्र अश्व पर आरूढ होकर उसी समय वहाँ उपस्थित होगा और तुमको लेकर अपने स्थान पर जायेगा और वहीं विवाह कर लेना। इस प्रकार निश्चय कर के श्रेष्ठी कन्या लक्ष्मी ने राजपुत्री को भोजनादि कराकर सन्ध्या समय में उत्सव सहित राजा के महल में पहुँचा दिया। राजकन्या महारानी को सुप्रत कर लक्ष्मी अपने घर आई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चोइसवाँ प्रकरण

शुभमती

यथासमय धर्मध्वज अश्वारूढ होकर शुभमती से विवाह करने के लिये बड़े ठाठमाठ से रवाना हुआ।

विक्रमचरित्र भी अश्वपर आरूढ होकर तथा लक्ष्मी से प्रेमपूर्वक मिलकर पूर्व निश्चित संकेत स्थान पर उपस्थित हुआ। उधर राजपुत्री शुभमती बाहर जाने का अवसर ढूँढने लगी, उसे कोई उपाय नजर नहीं आ रहा था, अतः वह विचार करने लगी कि इस समय मेरा पूर्व-जन्म का दुष्कर्म उपस्थित हो गया है। निश्चय ही वह राजपुत्र संकेत स्थान पर आगया होगा। इसलिये अब कोई छल-कपट कर के यहाँ से चुपचाप निकल जाऊँ। फिर वह राजपुत्री अपनी सखी से बोली कि 'मुझ को इस समय शौच जाने की शंका हुई है। अतः मैं जाती हूँ।'

उसकी सखी कहने लगी कि 'तुम्हारा पति धर्मध्वज द्वार पर आ गया है और तुम को इसी समय देहचिन्ता हो गई। अब ऐसी अवस्था में क्या होगा ?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजकुमारी का महल से निकलना

राजपुत्री शुभमती ने उत्तर दिया कि 'देहचिन्ता होने पर कोई भी मनुष्य विलम्ब सहन नहीं कर सकता।' इस प्रकार युक्ति से अपनी सखी को समझा कर राजपुत्री शुभमती शीघ्र महल से बाहर निकली।

उधर विक्रमचरित्र राजपुत्री के आने में बहुत देरी होने से अत्यन्त व्याकुल चित्त से इधर उधर देखने लगा। इतने में कोई एक किसान वहाँ आया। उसे देख कर विक्रमचरित्र बोला कि 'मैं वरराजा धर्मध्वज को देख कर वापस आता हूँ, तब तक तुम ये सब अश्व-वस्त्र आदि लेकर यहाँ खडे रहो।'

जब उस पुरुष ने स्वीकार कर लिया तब विक्रमचरित्र ने अपना वेष बदल कर कन्या को खोजने के लिये शीघ्र ही राजा के महल में प्रवेश किया। कहा है कि 'उलूक पक्षी दिन में नहीं देखता, काक रात्रि में नहीं देखता, परन्तु कामान्ध तो एक अपूर्व अन्ध है, जो दिन तथा रात्रि किसी भी समय नहीं देख सकता। कामान्ध व्यक्ति धतूरा खाये हुए मनुष्य के समान कर्त्तव्य या अकर्त्तव्य, हित या अहित कुछ भी नहीं समझता है।'

जब राजकुमारी शुभमती वहां आई, तो उस पुरुष को राजकुमार समझ कर कहने लगी कि 'अब तुम मुझ से विवाह करने के लिये अपने स्थान पर ले चलो।' उस समय संध्या हो चूकी थी, पृथ्वी पर चारों बाजु अन्धेरा छा गया था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृषक सिंह के साथ गमन

राजकुमारी की बात सुनकर उस किसान ने विचार किया कि 'उस पुरुष ने यहाँ यह कन्या से संकेत कर रखा होगा, इस में कोई संदेह नहीं। अतः मौन धारण कर के उसी समय उस राजकन्या को लेकर वह सिंह नाम का किसान अपने गाँव के ओर जाने लगा।'

बहुत दूर जाने के बाद मार्ग में राजपुत्री अत्यन्त प्रसन्न होकर बोली कि 'अब आगे कितना मार्ग बाकी रहा है, वह कहो। पूर्व में अपनी कोई कथा कहकर इस समय राह चलते हुए मेरे कानों को पवित्र करो।' इस प्रकार पुनः पुनः कहने पर भी जब वह किसान नहीं बोला, तो वह राजकुमारी अपने मन में सोचने लगी कि लज्जा के कारण यह मुझ से अभी नहीं बोलते हैं। क्योंकि उत्तम प्रकृति के मनुष्य होते हैं वे निरर्थक बोला नहीं करते। जब कोई काम होता है तो भी अल्प ही बोलते हैं। क्यों कि—

"युवावस्था में जो अत्यन्त शान्त चित्त रहते हैं, जो याचना करने पर भी प्रसन्न होते हैं और प्रशंसा करने पर जो लज्जित हो जाते हैं, वे महान् व्यक्ति इस संसार में सब से श्रेष्ठ माने जाते हैं।×

शरद् ऋतु में मेघ गर्जना तो करते हैं परन्तु वर्षा नहीं करते। वेही मेघ वर्षा ऋतु में गरजे बिना ही वर्षा करते हैं। इसी प्रकार नीच व्यक्ति बोलते हैं बहुत परन्तु करते कुछ भी नहीं। सज्जन पुरुष बोलते

× यौवनेऽपि प्रशान्ता ये ये च हृष्यन्ति याचिताः।
वर्णिता ये च लज्जन्ते ते नरा जगदुत्तमाः ॥३४२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम हैं किन्तु कार्य बहुत करते हैं। इसी प्रकार वह राजकन्या अपने मन में अनेक प्रकार की बातें विचारती हुई जा रही थी। जब सूर्योदय हुआ तब उस कृषक (किसान) का मुख देखकर वह राजपुत्री शुभमती एकाएक मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई। सिंह किसान के द्वारा शीतोपचार करने से स्वस्थ होने पर वह राजकुमारी अपने मन में विचार करने लगी 'कि वह दिव्यरूप धारी राजकुमार कहाँ चला गया और यह अत्यन्त कुत्सित रूप वाला मनुष्य कहाँ से आ गया? अथवा इस समय इसको मेरे दुर्भाग्य ने ही लाया है।'

थोडे समय बाद वह कृषक सिंह अपना मौन छोड़कर बोला कि 'हे भामिनि! तुम हर्ष के स्थान पर इस प्रकार शोक क्यों करती हो। मैं बहुत से किसानों से युक्त विद्यापुर नामक गाँव में रहता हूँ, जहाँ पर लोग अपनी इच्छा से द्यूतक्रीडा आदि करते हैं। वहाँ मैं भी द्यूतक्रीडा में तत्पर रहता हूँ। मेरा नाम सिंह है। मैं सात प्रकार के व्यसन करने वाले लोगों के साथ प्रसन्नता से रहता हूँ। मैंने इस समय पाँच खेतों में बीज बोये हैं। मेरे घर में चार बड़े बड़े वृषभ हैं। एक बहुत अच्छा रथ है। दो गायें हैं, एक गर्दभी है, जो घर में जल लाती है। छिद्र से रहित अत्यन्त निर्वात तृण काष्ठ का मेरा घर हैं। पहिले की एक गृहिणी है। अब दूसरी गृहिणी तुम हुई। तुम्हारी जैसी नवोढा पत्नी को रख कर मैं पुरानी स्त्री को घर से निकाल दूँगा और तुम्हें गृह की स्वामिनी बना कर सुख से रहूँगा क्यों कि इस प्रकार का संयोग भाग्य से ही मनुष्य पाता है। कहा है कि—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"एक-स्त्री, तीन बालक, दो हल, दश गायें, नगर के समीप रहे हुए गाँव में निवास यह सब स्वर्ग से भी बढ़कर होता है।*

नवीन सर्षप का शाक, नवीन तण्डुल का भात, पिच्छल मन्थन किया हुआ दही इत्यादि चीजों से ग्रामीण मनुष्य थोड़े ही खर्च से बहुत मिष्ट वस्तु खाते हैं।

उस किसान की इस प्रकार की बातें सुनकर वह राजकुमारी अपने मन में विचार करने लगी कि 'मैं बहुत बड़े संकट में पड़ गई हूँ, इसलिये बुद्धि बल बिना इस संकट से किसी भी प्रकार नहीं निकल सकती। जिसके पास बुद्धि है उस के पास बल भी है ही। बुद्धि रहित व्यक्ति को बल होने पर भी कोई कार्य उससे सिद्ध नहीं हो सकता। बुद्धि से ही जंगल में 'खरगोश' ने 'सिंह' को मार डाला था। इस प्रकार अपने मन में विचार कर वह राजकुमारी बोली कि 'तुम बहुत अच्छा बोलते हो परन्तु एक बहुत बड़ा विघ्न तुम को दुःख देने वाला है। यदि तुम मुझ से विवाह किये बिना मुझ को अपने घर ले जाओगे तो वहाँ का राजा मेरे रूप की शोभा से मोहित होकर शीघ्र ही तुम को मार डालेगा और मुझको अपने घर ले जायेगा। इसलिये तुम मुझ को अपने खेत में ही रख कर अपने घर जाओ और शीघ्र ही विवाह की सामग्री लाकर खेत में ही मुझ से विवाह कर के फिर बाद में अपने घर ले जाना। ऐसा करने

* एका भार्या त्रयः पुत्राः, द्वे हले दश धेनवः।
ग्रामे वासः पुरासन्ने स्वर्गादपि विशिष्यते ॥३५४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से तुम्हारा अभिलषित–इच्छा पूर्ण होगी ।'

राजकुमारी की बात सुन कर वह किसान अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसे अपने खेत में ले गया। कुमारी को अपना वह खेत बतलाते हुए कहने लगा कि 'यह युगन्धरी खेत है। यह संसार को जीवन देने वाला है। यह वनक खेत है, जिससे सब प्रकार के वस्त्र बनते हैं। यह दूसरा चणक का क्षेत्र है, जो मनुष्यों को सतत सन्तोष देनेवाला है।'

सिंह का अकेले घर जाना और राजकुमारी का गिरनार की ओर प्रयाण

इस प्रकार कह कर दिव्य मनोवेग घोडा और राजकुमार के वस्त्रों के सहित राजकुमारी को खेत में ही छोड़कर स्वयं फटे हुए वस्त्र धारण करके अपने घर को चल दिया। घर पर जाकर वह किसान अपनी स्त्रीसे कहने लगा कि तुम ने अमुक कार्य मेरी इच्छानुसार नहीं किया यह अच्छा नहीं किया। तुम ने मेरे घर को इस समय सब प्रकार से विनष्ट कर दिया। इत्यादि बातें कहता हुआ बोला कि मैं विवाह करने के लिये एक अद्भुत रूपवती और लावण्यवती कन्या को ले आया हूँ।' इस प्रकार कर्कश वाणी द्वारा अनेक प्रकार से तिरस्कार करके उसे घर से निकाल दिया। तब वह स्त्री अपने पिता के घर चली गई। उसने एक ब्राह्मण को बुलाया तथा उसे विवाह की सब सामग्री से युक्त करके अपने खेत में उस नवीन कन्या से विवाह करने के लिये घर से निकला।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर राजकुमारी शुभमती—अपने धर्म की रक्षा करने के लिये घोड़े पर चढ़ कर गिरनार पर्वत की ओर चलदी। राजकुमारी अपने मन में विचार करने लगी कि यदि मैं लौटकर पुनः अपने पिता के घर जाऊँगी, तो वहाँ जाकर क्या उत्तर दूँगी। मैं दैव योग से पहले ही दो स्वामियों को खो चुकी हूँ और अब बड़ी आपत्ति में फँस गई हूँ। अब क्या करूँ? इस प्रकार चिन्तामग्न राजकुमारी एक वृक्ष के नीचे पहुँची। जो व्यक्ति चिन्तातुर है अथवा बिगडी हुई स्थिति में है या विपत्ति में पड़ा हुआ है, या रोगग्रस्त है, उसको किसी प्रकार भी निद्रा नही आती। अशान्त चित्त होने से शुभमती को वृक्ष के नीचे रहने पर भी नींद नहीं आई।

भारण्ड पक्षी और उस के पुत्र

उस वृक्ष पर एक वृद्ध भारण्ड पक्षी बैठा हुआ था। उस पक्षी के लड़के चारों दिशाओं से आकर वहाँ एकत्रित हुए। वह बूढा पक्षी बोला कि 'किसने कहाँ पर क्या क्या आश्चर्य देखा अथवा सुना है, सो कहो।'

तब उन में से एक ने कहा 'हे तात! मैं वल्लभीपुर के बाहर के वन में गया था। वहाँ नगर के मध्य में कोलाहल सुन कर देखने के लिये गया तब लोग परस्पर इस प्रकार बोल रहे थे कि जबतक धर्मध्वज नामक वर राजकन्या शुभमती से विवाह करने के लिये बड़े उत्सव के साथ राजमहल पर आया, तब तक कोई मनुष्य राजा की कन्या को चुराकर ले गया। राजा ने सर्वत्र उसकी खोज कराई, परन्तु वह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहीं भी नहीं मिली। तब उस कन्या के माता-पिता अत्यन्त दुःखित हो गये। वह वर भी लज्जित होकर अपना प्राण त्याग करने के लिये तैयार हुआ। तब मंत्रियों ने सान्त्वन देकर उसको शान्त किया। तब राजा बोलने लगे कि यदि एक मास के भीतर कहीं भी शुभमती नहीं मिली तो हम लोग गिरनार (रैवताचल) पर अनशन करके अपना प्राण त्याग कर देंगे। इसके बाद सेवक लोग दशों दिशाओं में कन्या की शोध करने के लिये गये। परन्तु अभी तक कन्या का कहीं पता नहीं चला। अब सब रैवताचल की तरफ जायँगे।'

यह सुन कर वह बूढा भारण्ड बोला कि 'हे पुत्र! तुम ने निश्चय ही एक बड़ा आश्चर्य देखा है।'

इसके बाद उस भारण्ड का दूसरा पुत्र उस के आगे इस प्रकार कहने लगा "मैं 'वामनस्थली' गया था। वहाँ के राजा कुम्भ की रूपश्री नामक एक कन्या है। वह भाग्य योग से अन्धी हो गई है। उस राजकन्या ने राजा से काष्ठ भक्षण-चिता में प्रवेशकर जलने की याचना की है। राजा ने उसे आठ दिन तक ठहरने का कहा तथा उसके नेत्र की चिकित्सा करने के लिये कितने ही कुशल वैद्यों को बुलाया। परन्तु उसके नेत्र को अभी तक कुछ भी गुण नहीं हुआ है। अतः अब वह राजा रोज पटह बजवाता है कि जो कोई मनुष्य इस कन्या के नेत्र अच्छे कर देगा उसको राजा मुँह माँगी वस्तु देंगे।" उसकी बात सुन कर वह बूढा भारण्ड बोला कि 'वह राजा की कन्या अच्छे औषध के प्रयोग से नेत्र से देखने वाली हो सकती है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसका पुत्र बोला—“ हे तात ! वह कौनसा औषध है जिससे वह राजकन्या इस समय दिव्य दृष्टिवाली हो जायगी । वह मुझे बतलाओ ।”

तब भारण्ड ने कहा ‘अपनी हगार (विष्टा को गजेन्द्र कुण्ड के जल से अमावस्या के दिन घिस कर यदि उस राजकन्या के नेत्रों में अञ्जन किया जाय तो वह दिन में भी तारे देखने लग जायगी। यदि अपने मल (हगार) का चूर्ण अमृतवल्ली (गडूची) के रस से मिश्रित करके नेत्र में लगावे तो रूपकी परावृत्ति होती है और यदि इस चूर्ण को चन्द्रवल्ली (माधवी लता) के रस से मिश्रित करके नेत्रों में लगावे तो पुनः पूर्व रूप आ जाता है । कहा भी है कि—

“बिना मंत्र का कोई भी अक्षर नहीं है। एक भी ऐसा वनस्पति का मूल नहीं है जो औषध नहीं हो। पृथिवी अनाथ नहीं है। केवल विशेष विधि आम्नाय कहने वाले ही दुर्लभ हैं।”×

तदनन्तर उस भारण्ड का तीसरा पुत्र कहने लगा—‘विद्यापुर’ नामक गाँव में ‘ सिंह ’ नामक एक किसान अपने क्षेत्र में एक कन्या को लाया । उस कन्या को क्षेत्र में ही छोड़कर उससे विवाह करने के लिये वह शीघ्रता से विवाह सामग्री लाने के लिये अपने घर गया। अपने घर जाकर उस किसान ने अपनी स्त्री से कहा कि तुम ने यह काम क्यों नहीं किया ? तुमने मेरे सब घर का नाश कर दिया । इसलिये मैं इस समय एक अद्भुत रूपवाली नवीन कन्या विवाह करने

×अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम् ।
अनाथा पृथिवी नास्ति आम्नायाः खलु दुर्लभाः ॥३९६॥

के लिये लाया हूँ। इस प्रकार कठोर वाणीद्वारा अनेक प्रकार से उसका तिरस्कार कर के उसे घर से निकाल दिया। उसकी वह स्त्री रूष्ट होकर अपने पिता के घर चली गई।

इधर किसान एक ब्राह्मण को बुला कर विवाह सामग्री लेकर उस कन्या से विवाह करने के लिये घर से निकला। जब वह क्षेत्र में पहुँचा तब वहाँ उस कन्या को न देख कर शून्य चित्त होकर चारों तरफ घूमने लगा। जब कहीं भी उस कन्या का पता न चला तो वह पागल सा हो गया तथा इस प्रकार बोलने लगा कि 'हे विप्र! मैं विवाह करने के लिये इस समय एक कन्या को लाया हूँ। तुम उस के साथ मेरा पाणिग्रहण करा दो। मैं अपने घर को खुला ही छोड़ कर यहाँ आया हूँ, अतः जल्दी घर जाता हूँ क्यों कि शून्य घर में लोग प्रवेश कर के सब धन चुरा लेंगे। इस प्रकार बोलता हुआ वह किसान क्षेत्र में उस ब्राह्मण को सब जगह घूमाने लगा।

कहा भी है कि—

"वास्तविक अन्ध पुरुष इस संसार में अपने आगे रखी हुई स्थूल वस्तु को भी नहीं देख सकता है। परन्तु कामी पुरुष अपने आगे रही हुई वस्तु को तो नहीं देखता पर काल्पनिक अनुपस्थित वस्तु को देखता है। कामी पुरुष निस्सार तथा अपवित्र अपनी प्रियतमा के नेत्र में कमल का आरोप करता है, हास्य में कुन्द पुष्प का आरोप करता है, मुख में पूर्ण चन्द्र का आरोप करता है, स्तन में कलश का आरोप करता है, हाथ में लता का आरोप करता है तथा ओष्ठ में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोमल पल्लवों का आरोप करता है और अत्यन्त आनन्दित होता है।"*

उस किसान को ठीक इसी प्रकार उन्मत्त समझ कर वह ब्राह्मण अपने घर चला गया। वह किसान भी क्षेत्र में भ्रमण करके अपनी पूर्व स्त्री के समीप पहुँचा। वहाँ जाकर अपनी स्त्री से कहा कि 'हे प्रिये! तुम अब अपने घर चलो।'

उसकी बात सुन कर वह स्त्री कहने लगी—'तुम जिस नवीन स्त्री को लाये हो, वही तुम्हारे घर का सब काम सुन्दरता से करेगी। मुझ से अब तुम को क्या काम?' इस प्रकार अपनी स्त्री से तिरस्कार पाने पर वह किसान अत्यन्त दुःखी हो गया। क्यों कि 'धन, स्त्री, धान्य आदि वस्तुओं के अपहरण होने पर निश्चय ही मनुष्य अपने हृदय में तत्काल अत्यन्त दुःखी होजाता है।'

इस के बाद उस बूढे भारण्ड का चौथा पुत्र बोला—'हे तात! मैं सुन्दर वन में भ्रमण करता हुआ एक वृक्ष पर बैठा। दो पथिक कहीं से आकर उस वृक्ष के नीचे बैठे थे। उन में से एक कहने लगा कि 'क्या तुमने पृथ्वी में कहीं कोई आश्चर्य देखा या सुना है? इस समय तुम्हारा मुख श्याम उदास हुए क्यों है? अथवा कोई तुम्हारे धन या स्त्री का अपहरण कर गया है? यह सब मुझे कहो।'

---

* दृश्यं वस्तु परं न पश्यति जगत्यन्धः पुरोऽवस्थितम्।
रागान्धस्तु यदस्ति तत् परिहरन् यन्नास्ति तत् पश्यति॥
कुन्देन्दीवरपूर्णचन्द्रकलशश्रीमल्लतापल्लवा-
नारोप्याशुचिराशिषु प्रियतमागात्रेषु यन्मोदते ॥४०८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजपुत्री का सब का वत्तान्त सुनना

तब दूसरा पथिक कहने लगा मैं तुम्हारे आगे अपना दुःख नहीं कह सकता। लोक में कोई किसी के दुःख को मिटा नहीं सकता। क्यों कि लोग अपने पूर्व कृत कर्मों का ही फल भोगा करते हैं। कहा भी है--

"किसी भी प्राणी के सुख अथवा दुःख का करने वाला या हरने वाला कोई अन्य नहीं है। यही सद्बुद्धि से विचारना चाहिये। पूर्व जन्म में किये हुए अपने अच्छे या बुरे कर्मों के प्रभाव से ही लोगों को सम्पत्ति या विपत्ति प्राप्त होती है। इसके लिये दूसरे पर क्रोध करने अथवा प्रसन्न होने से क्या लाभ ?"+

उसकी यह बात सुन कर दूसरे पुरुष ने कहा कि 'यह तो सत्य है तथापि तुम अपने दुःख का मेरे आगे प्रकाशित करो। क्यों कि दूसरे के आगे अपने दुःख का वर्णन करने से भी मनुष्य कुछ शान्ति को प्राप्त कर सकता है।

तब वह पहला पुरुष बोला 'मैं अवन्तीपुर के महाराजा का पुत्र हूँ।' उस भारण्ड पक्षीने विक्रमचरित्र का कहा हुआ वल्लभीपुर में जाने तक का और कन्या एवं घोड़े के अपहरण तक का सब वृत्तान्त कह सुनाया। (जिसे पाठक जानते हैं) तब दूसरा पुरुष उसे कहने

+ सुखदुखानां कर्ता हर्ता च न कोऽपि कस्यचिज्जन्तोः।
इति चिन्तय सद्बुद्ध्या पुरा कृतं भुज्यते कर्म ॥४१७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगा 'तुम अपने हृदय में दुःख क्यों करते हो ? देव, दानव, या गन्धर्व कोई भी अपने कर्म के फल से छूट नहीं सकते। क्यों कि चन्द्रमा तथा सूर्य भी ग्रह से पीडा पाते हैं, हाथी, सर्प और पक्षी बन्धन पाते हैं। ज्यादा क्या कहूँ बुद्धिमान् व्यक्ति भी दरिद्र होते हैं। ये सब देख कर हमारी धारणा ऐसी है कि भाग्य ही सब से बढ़कर बलवान् है। जो कुछ कर्म किया है, उसका ही परिणाम सब मनुष्य पाते हैं।' इस बात को समझ कर धीर व्यक्ति विपत्ति आने पर भी दुःखी नहीं होते। जो कर्म पहले किया है, उसका क्षय भोगे बिना नहीं होता। अपने किये हुए कर्मका शुभ या अशुभ फल अवश्य ही भोगना पडता है।

वह उसे समझाने लगा कि 'राजा विक्रमादित्य अपने पुत्र के इस प्रकार चले जाने से अपने हृदय में अत्यन्त दुःखी होते होंगे। अतः तुम्हें अब वहाँ जाना चाहिये।' उस की यह बात सुन कर वह राजकुमार विक्रमचरित्र बोला—'हम को राजा के समीप जाने से अब क्या लाभ ? जो व्यक्ति कृतकार्य नहीं हैं वे कहीं भी शोभा नहीं पाते। मैं ने मनोवेग जैसे उत्तम घोडे को भी गुमा दिया। इसलिये मैं अब 'रैवताचल' (गिरनार) पर्वत पर जाकर अपने प्राण त्याग कर दूँगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।'

भारण्ड पुत्रके इतना कहने पर वह बूढा भारण्ड पक्षी बोला कि 'हे पुत्र ! तुमने अपूर्व आश्चर्य देखा है।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुभमती का रूपपरिवर्तन तथा वामनस्थली जाना

भारण्ड पक्षियों की इस प्रकार की बातें सुनकर वह राजकुमारी शुभमती अत्यन्त प्रसन्न हुई। सुबह होने पर उसने वृक्ष के आजु बाजु गिरा हुआ भारण्ड का मल ले लिया और पुरुष वेष धारण करके घोडे पर सवार होकर उस वृक्ष के नीचे से चल दी। उस राजकन्या ने अपना नाम 'आनन्द' रख लिया। क्रमसे वामनस्थली में एक माली के घर पर पहुँचकर तुम मेरी मामी हो, ऐसा कह कर प्रणाम पूर्वक एक बहुत सुन्दर बहु मूल्य रत्न उस माली की स्त्री को दिया। माली की स्त्री ने एक अत्यन्त सुन्दर कुमार को अपने यहाँ आया देख कर उसे भोजन तथा स्थान आदि देकर उसका बहुत आदर सत्कार किया।

जब पटह बजता हुआ वहाँ आया तो उसे आते देख कर आनन्द कुमारने मालीन से पूछा कि 'यह पटह क्यों बजाया जा रहा है?' उस माली ने पटह बजाने का हेतु कह सुनाया। आनन्द कुमारने कहा कि 'हे मालिन! तुम वहाँ जा कर पटह का स्पर्श करो।'

मालिन ने पूछा कि 'क्या तुम में ऐसा सामर्थ्य है?'

आनन्द कुमार ने कहा कि 'तुम अभी जाकर पटह का स्पर्श करो। जो होना है सो होगा।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पचीसवाँ प्रकरण

शुभ मिलन

आनन्दकुमार का पटह स्पर्श

आनन्दकुमार के इस प्रकार आग्रह करने पर उस मालिन ने पटह का स्पर्श कर लिया स्पर्श करके लौटने पर आनन्दकुमार के समीप आकर बोली कि मैंने पटह का स्पर्श कर लिया है।' इसके बाद राजा के सेवकों ने मालिन का पटह स्पर्श करने का समाचार राजा से कहा।

राजा यह समाचार सुन कर अपने मन में अत्यन्त प्रसन्न हुआ। राजा की आज्ञा से उसके सेवकों ने मालिन के घर पर आकर कहा कि 'हे मालिन! अब शीघ्र ही राजा की कन्या को निरोग करो।' उन सेवकों की बात सुनकर मालिन घर के अन्दर आकर बोली कि 'कन्या को नीरोग करने के लिए जाओ।'

उस की बात सुनकर आनन्द बोला कि 'कुछ देर ठहरो। अभी मुझे आराम करने दो।' मालिन ने कहा 'राजा के सेवक मेरे घर आ गये हैं। वे बोलते हैं कि शीघ्रता से राजा के घर जाकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा की कन्या को नीरोग करो।'

इस प्रकार जब बार बार मालिन ने कहा तब आनन्दकुमार राजा के सेवकों के साथ राजमहल में गया। राजा उसे देखकर प्रसन्न हुआ और बोला कि 'हे कुमार! मेरी कन्या को नीरोग करो। इसके बदले में मैं तुमको अपनी मुंह माँगी वस्तु प्रदान करूँगा।'

राजा की यह बात सुनकर आनन्दकुमार ने कहा कि 'हे राजन्! तुम्हारी कन्या को, जिसे मैं दूँगा, उसका स्वीकार मेरी आज्ञा से तुम्हारी कन्या करे, अच्छे कुल में उत्पन्न एक कन्या आठ गाँवों के साथ जिसको मैं दिलाऊँ, उसको यदि दो और सात योजन पर्यन्त पृथिवी एक मास के लिये मुझको दो तो मैं आप की इस कन्या की आँखों को निरोग कर दूँगा। इस पृथ्वी में गिरनार की वह भूमि भी आती थी, जिस पर लोग अन्न दान के लिए आते थे।

आनन्दकुमार की बात सुन कर राजा अपनी पुत्री के पास गया तथा बोला कि 'आनन्द कुमार ने पटह का स्पर्श किया है। वह मेरे समक्ष हाजिर है तथा कहता है कि 'जिस कुमार को मैं कन्या दिलाऊँ उसको मेरी आज्ञा से यदि वह स्वीकार करे, तो मैं उस कन्या को नीरोग कर दूँ।'

राजा की बात सुनकर उस कन्या ने कहा 'हे पिताजी! आपकी आज्ञा से ऐसा ही हो। क्योंकि पिता द्वारा दिये हुए वर को कन्या हर्षपूर्वक अङ्गीकार करती है, यह उत्तम आदर्श कन्याओं के लिये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सदा ही आदरणीय होना चाहिये। कहा भी है कि —

"माता और पिता से अच्छे उत्सव के साथ जिस पुरुष के लिये कन्या दी जाती है, वह पुरुष सुन्दर हो या कुरूप हो कन्या उस वर को ही हर्ष पूर्वक स्वीकार करती है।"×

अपनी कन्या की बात सुन कर राजा पुनः अपने स्थान पर आया और आनन्द कुमार से बोला कि 'तुम कन्या को शीघ्र ही निरोग करो। तुमने जो माँग की है, वह सब मैं अवश्य पूरी कर दूँगा।'

राजपुत्री को नेत्र प्राप्ति

राजा के इस प्रकार कहने पर आनन्दकुमार गजेन्द्र कुण्ड से जल आदि लाकर शुभ दिन में मन्त्र–तन्त्र आदि की साधना का आडं-बर करने लगा और उस औषधि को घिस कर उस कन्या के दोनों नेत्रों में लगा दी। इस से राजकन्या की आंखें ठीक हो गईं। मानो दिन में ही तारा दिखाई देते हों!।

पुत्री की आँखें ठीक हो जाने से राजा ने प्रसन्न होकर नगर में तोरण–पताका आदि लगवा कर स्थान स्थान पर नृत्य–महोत्सव कर-वाया। कन्या, पुत्र, मित्र आदि का सुन्दर सुख देख कर माता–पिता आदि अपने मन में हर्ष का अनुभव करते हैं। उत्सव खतम होने के बाद राजा ने आनन्दकुमार से पूछा कि 'तुम किसे यह कन्या

×कन्या विश्राणिता पित्रा यस्मै पुंसे वरोत्सवम्।
तमेव कन्यका चारुमचारुं वृणुते वरम् ॥४५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिलवाना चाहते हो। आनन्दकुमार ने कुछ समय तक प्रतीक्षा करने को कहा तथा आनन्दकुमार अपनी मांगी हुई जमीन में रह कर आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा।

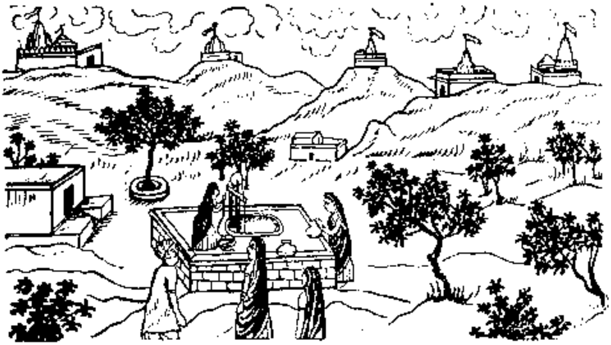

धर्मध्वज का प्राण त्याग करने आना

कुछ ही दिन बाद अत्यन्त दुःखित चित्तवाला 'धर्मध्वज' प्राणत्याग करने के लिये वहाँ रैवताचल आया। आनन्दकुमार ने अपने सेवकों द्वारा उसे कहलाया कि 'एक मास तक मैं किसी को भी यहाँ मरने नहीं दूँगा यह भूमि मेरी है।' धर्मध्वज एक मास तक का समय बिताने के लिये सन्तोष करके वहाँ ही रह गया।

इसी प्रकार धीरे धीरे वल्लभीपुर का राजा 'महाबल' अपनी स्त्री के साथ, राजा विक्रमादित्य का पुत्र 'विक्रमचरित्र' और सिंह नामक किसान ये सब प्राणत्याग करने के लिये वहाँ आये। परन्तु आनन्द-कुमार उस समय किसी भी मनुष्य को वहाँ प्राणत्याग नहीं करने देता था और न किसी को गिरनार पर्वत पर चढ़ने ही देता था। इसलिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनशन करने के लिए जो भी लोग आते थे उन सबको आनन्दकुमार रोक लेता था।

जब धर्मध्वज उस पर्वत पर प्राणत्याग करने के लिए आया तो आनन्दकुमार के सेवकों ने उसे आनन्दकुमार के सामने लाकर हाजिर किया। तब आनन्दकुमार ने उसे पूछा कि 'हे पुरुष श्रेष्ठ! तुम यहाँ प्राणत्याग करने के लिये क्यों आये हो?'

तब धर्मध्वज कहने लगा कि 'सपाद लक्ष देश का भूषण स्वरूप श्रीपुर नामका नगर है। मैं उसके राजा गजवाहन का पुत्र धर्मध्वज हूँ। जब मैं महाबल राजा की पुत्री शुभमती से विवाह सादी करने के लिये वल्लभीपुर पहूँचा तब वह कन्या मानो किसी देव या दानव ने हर ली और अभी तक उसका पता नहीं लगा। इसीलिये मैं यहाँ प्राणत्याग करने आया हूँ। यदि मैं कन्या के बिना अपने नगर में जाऊँगा, तो सज्जन अथवा दुर्जन सभी मुझ पर हसेंगें।'

धर्मध्वज के ऐसा कहने पर आनन्दकुमार बोला कि 'कौन ऐसा मूर्ख है जो किसी स्त्री के लिये प्राणत्याग करता हैं! स्त्रीयाँ तो अनेक हो सकती है, परन्तु प्राण एक बार जाने से फिर कभी भी नहीं मिल सकता। मरने पर भी वह कन्या कहाँ से अब प्राप्त हो सकती है। पति के मर जाने पर स्त्री कहीं कहीं काष्ठ भक्षण करती है, परन्तु स्त्री के लिये स्वामी मनुष्य तो कहीं भी प्राण त्याग नहीं करता। हे नर श्रेष्ठ धर्मध्वज! स्त्रियाँ प्रायः कुटिलचित्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाली होती हैं। इसलिये आप अपने मन में कुछ भी वृथा खेद न करें।

अमर ब्राह्मण की वार्ता

अमर नामक एक ब्राह्मण था। उसकी स्त्री अत्यन्त कलह करने वाली थी। कितना ही प्रयत्न करके वह हार गया। परन्तु उसकी स्त्री के स्वभाव में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। तब एक दिन वह अमर उसके कलह के भय से घर छोड़कर कहीं अन्यत्र चला गया और भिक्षा-वृत्ति करके अपना जीवन निर्वाह करने लगा। इधर उसकी स्त्री के कलह से उद्विग्न होकर गाँव के लोगोंने उस को अपने गाँव से निकाल भगाया। एक दिन अमर किसी के द्वार पर भिक्षा का पात्र लिये हुए खड़ा था। इतने में कहीं से उसकी स्त्री वहाँ आ गई। देखते ही कलह के भय से वह अपना भिक्षापात्र वहीं छोड़कर भाग गया। ऐसी दुष्ट स्त्री के लिये जीवन का परित्याग कर देना बुद्धिशालि के लिये अच्छा नहीं।

मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। उस में भी उत्तम जाति तो और भी दुर्लभ है। फिर उत्तम कुल दुष्प्राप्य है और सद्धर्म से युक्त जीवन तो इतना दुर्लभ है कि इसके विषय में तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। स्त्री के मरजाने पर जड मनुष्य ही प्राणत्याग कर सकता है। परन्तु उत्तम प्रकृति के लोग ऐसा समझते हैं कि मेरा एक कण्टक निकल गया। क्यों कि स्त्रियाँ मनुष्य के हृदय में प्रवेश करके उसको सम्मोहित करती हैं, मत्त बना देती हैं और विषाद युक्त भी कर देती हैं। स्त्रियें उसे रमण कराती हैं, तिरस्कृत करती हैं तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भर्त्सना भी करती हैं। इस प्रकार क्या क्या नहीं करती? असत्य, साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लोभ करना, स्नेह रहित होना तथा निर्दयता ये सब दोष स्त्रियों में स्वभाव से ही होते हैं।

आनन्दकुमार की इस प्रकार की बातें सुनकर पुनः धर्मध्वज ने कहा कि 'मानभंग होने से मैं लज्जित हूँ। इसलिये हे नरोत्तम! मैं अपने नगर को किसी भी प्रकार नहीं जा सकता।' तब आनन्द-कुमारने पुनः कहा—

'हे धर्मध्वज! मैं तुम को अत्यन्त सुन्दर कन्या देकर तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण करूँगा। इसलिये यहाँ तुम अब अपने मन में खेद मत करो और यहीं रहो।' इसप्रकार अनेक युक्तियों से उसको समझा करके आनन्दकुमार अपने स्थान पर चला आया।

सिंह का आगमन

दूसरे दिन सिंह नामक किसान को पर्वत पर प्राणत्याग करते हुए देख कर आनन्दकुमार के सेवक उसे आनन्दकुमार के पास ले गये। अपने पास आये हुए उस किसान को आनन्दकुमार ने पूछा कि 'हे किसान! तुम यहाँ प्राणत्याग करने के लिये क्यों आये हो?'

तब सिंहनामक किसान कहने लगा 'मैंने एक दिन वल्लभीपुर से एक श्रेष्ठ कन्या को दियापुर के अपने क्षेत्र में लाकर रखी थी। जब तक मैं गाँव में जाकर लौटा तब तक उस कन्या को किसी देव या दानव ने चुरालिया। मेरी पहली स्त्री भी रुष्ट होकर अपने पिता के घर चली गई। दोनों स्त्रियों से अलग होने से मैं अत्यन्त दुःखित होकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस पर्वत पर प्राणत्याग करने के लिये आया हूँ। तुम मुझ को इस समय मरने दो यह ही मेरी इच्छा है।'

आनन्दकुमार ने कहा कि 'मूर्ख भी स्त्री के लिये प्राणत्याग नहीं करता। स्त्रियाँ कई बार मिलती हैं, परन्तु प्राण पुनः नहीं मिलते। मनुष्य-जन्म ही अत्यन्त दुर्लभ है। उस में भी उत्तम जाति में, उच्च कुल में जन्म होना तो दुष्प्राप्य ही है। इस संसार में गये हुए प्राणों की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। स्त्री का मरजाना ही अच्छा है। उसके लिये प्राणत्याग तो मूर्ख लोग करते हैं। बुद्धिमान् जंजाल हट जाने से प्रसन्न ही होते हैं। स्त्रियाँ पुरुष के हृदय को वशीभूत करके उस का सब प्रकार से तिरस्कार और भर्त्सना करती है, अपार समुद्र का कोई पार पासकता है परन्तु दुश्चरित्र स्वभाव की कुटिल स्त्रियों का कोई पार नहीं पासकता। अत एव तुम अपने मन में तनिक भी खेद मत करो। तुम को मैं शीघ्र ही एक अच्छी स्त्री दिलाऊँगा।

इस प्रकार सान्त्वना पाकर वह सिंह नामक किसान अपने स्थान को गया। वह आनन्दकुमार भी अपने स्थान पर चला गया। दूसरे दिन वलभीपुर के राजा 'महाबल' को पर्वत पर प्राणत्याग करते हुए देखकर सेवकों ने उसको भी आनन्दकुमार के पास उपस्थित किया। राजा के पास में आजाने पर उसे आनन्दकुमार ने पूछा कि 'आप किस लिये अपना प्राणत्याग करते हैं? तब महाबल ने अपनी स्त्री के हरण होने का सब वृत्तान्त कह सुनाया।' यह सब सुन कर आनन्दकुमार ने कहा कि 'आप मन में खेद न करें। यहाँ रहते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए ही शीघ्र आप को अपनी कन्या मिल जायगी।'

पाठकगण ! आप को ख्याल ही होगा कि यह आनन्दकुमार ही राजा महाबल की पुत्री है। परन्तु महाबल ने पुरुष-वेष धारण करके बोलती हुई अपनी पुत्री को बदला हुआ रूप होने के कारण जरा भी नहीं पहचाना।

फिर दूसरे दिन महाराजा विक्रमादित्य के पुत्र विक्रमचरित्र को रैवताचल पर्वत पर प्राणत्याग करते हुए देख कर आनन्दकुमार के सेवक लोग उस आनन्दकुमार के समीप ले गये।

विक्रमचरित्र के अपने पास आजाने पर आनन्दकुमार ने पूछा कि 'आप क्यों व्यर्थ ही अपने प्राणों का त्याग कर रहे हैं।'

तब विक्रमचरित्र ने अपने प्राणों को छोड़ने के लिये पर्वत तक आनेका आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहने लगा कि ' मैं लज्जा के कारण अपने नगर में नहीं जासकता। क्यों कि मानभंग होने से मुझको देख कर सब लोग हसेंगें।'

तब आनन्दकुमार ने धर्मध्वज के समान ही उसको भी अनेक युक्तियों द्वारा समझा दिया। अन्त में कहा कि 'आप मन में खेद न करें। आप को यहीं पर शीघ्र ही अपनी प्रिया मिल जायगी। '

धर्मध्वज और सिंह का लग्न

इस प्रकार सब को युक्ति से समझा बुझा कर आनन्दकुमार प्रसन्न चित्त से अपने स्थान पर चला गया। दूसरे दिन इन सब को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकचित्त करके आनन्दकुमार तत्काल राजा के समीप जाकर मधुर स्वर से बोला कि 'हे राजन्! अब अपना वचन पूर्ण करो जो धर्म संयुक्त वाणी बोलते हैं वे पहले ही निश्चयपूर्वक बोलते हैं गर्व रहित तुच्छता रहित, किसी भी कार्य का विरोध नहीं करने वाला मित अक्षर युक्त कुशलता से परिपूर्ण तथा मधुर बोलते हैं।' राजाने खुशीसे आनन्दकुमार के कहने से धर्मध्वज को अपनी पुत्री देदी और अच्छे कुल में उत्पन्न एक कन्याको आठ गाँवों सहित सिंह नामक किसान को दीला दी।'

राजा ने हर्षपूर्वक अपना वचन पूर्ण किया। क्यों कि उत्तम प्रकृति के मनुष्यों का यही व्रत होता है कि राज्य चला जाय, लक्ष्मी चली जाय, ये विनश्वर प्राण चले जायँ, परन्तु अपने कथित वचन नहीं जा सकते। सज्जन व्यक्ति जिस अक्षर को अपने मुख से निकाल देते हैं वह अक्षर पत्थर की रेखा के समान कभी नहीं मिटते।

आनन्दकुमार की यह असाधारण बात देख कर नगर लोग कहने लगे कि इस मनुष्य में कितनी निष्कपट परोपकारिता है? सज्जन व्यक्ति अपने कार्य को छोड़कर परोपकार में ही लगे रहते हैं। चन्द्रमा पृथ्वी को प्रकाशित करता है, परन्तु अपने कलंक को नहीं देखता विरल व्यक्ति ही गुण के जानने वाले होते हैं। कोई कोई

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही अपने दोषों को देखते हैं। विरल व्यक्ति ही परोपकार करनेवाले होते हैं। इसीप्रकार दूसरों के दुःख से दुःखी भी व्यक्ति विरल संसार में ही होते हैं। आनन्दकुमार ने स्वयं ही राजकन्या को दिन में तारा देखने वाली बनायी, परोपकार करने के उद्देश्य से उसे दूसरे को दिलवाई।

फिर आनन्दकुमार अपने दिये हुए वचनों का पालन करके राजा महाबल के समीप उपस्थित हुआ।

राजा महाबल ने कहा कि हे कुलोत्तम! तुम मुझको इस समय रैवताचल पर्वत पर क्यों नहीं अनशन करने देते हो। तुमने प्रथम धर्मध्वज का मनोरथ पूर्ण किया। अनन्तर श्रेष्ठ कन्या देकर सिंह नामक किसान का भी मनोरथ पूर्ण किया। परन्तु मेरे मनोरथ को अभीतक पूर्ण नहीं किया है और मुझे अनशन भी करने नहीं देते हो। अब मुझे क्या करना चाहिये ?।

महाबल की अपनी पुत्री से भेट

राजा महाबल के बार बार कहने पर आनन्दकुमार चुपचाप एकान्त में घर के अन्दर चला गया और औषध प्रयोग द्वारा अपना पूर्व शरीर धारण करके स्रीके रूपमें पुनः शुभमती बनकर राजा महाबल के समक्ष हाजिर हुआ, तब अपनी कन्या को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा महाबल ने पूछा कि 'तुम उस समय किसके द्वारा हरण की गई थी, यह मुझे सविस्तर बताओ।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब शुभमतीने अपना सब हाल मातापिता के आगे कहा और कहाकि मैंने अपने शील की रक्षा के लिये अपने स्वरूप का बिलकुल परिवर्तन करलिया था। राजकन्या, सिंह और धर्मध्वज का कार्य मैंने इसी आनन्दकुमारके वेष में किया।

राजा महाबल ने पूछा कि 'तुम किस वर को वरण करोगी ?' तब शुभमती ने कहा कि ' मैं विक्रमादित्य के पुत्र विक्रमचरित्र को ही अङ्गीकार करूँगी।'

पुनः महाबल ने पूछा कि 'हे पुत्री ! वह यहाँ इस समय कैसे आयेगा ?'

शुभमती ने उत्तर दिया कि विक्रमादित्य का पुत्र विक्रमचरित्र इसी नगर में है। मैंने धर्मध्वज से पहले ही उस विक्रमचरित्र को वरण करलिया है। इसलिये मेरे चित्त में अब वही अच्छा जान पड़ता है।'

राजा विक्रमचरित्र व शुभमती का शुभ मिलन तथा लग्न

तब महाबल ने पूछा कि 'विक्रमचरित्र कहाँ है ? तब शुभमती ने अपने पिता को विक्रमचरित्र के रहने का स्थल बतलाया। राजा महाबलने अत्यन्त प्रसन्न मन से विक्रमचरित्र को अनेक प्रकारसे उत्सव करके अपनी पुत्री शुभमती का पाणिग्रहण करादिया।

इसकेबाद शुभमती ने अपना हरण किसप्रकार और कैसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयोग में हुआ यह सब विक्रमचरित्र को सुनाया और उसके साथ रहे हुए मनोवेग नामक घोड़े को भी ले आई, जो मालाकार के यहाँ रक्खा हुआ था। शुभमती ने अपने स्वामी से सवालक्ष मूल्य के अच्छे अच्छे मणिरत्नादिक सब मालिन को दिलवाये। ठीक ही कहा है कि जिस प्राणी को पूर्व जन्म में उपार्जित पुण्यरूप द्रविण-धन पुष्कल हैं, उसको निश्चय ही सब सम्पतियाँ स्वयंमेव प्राप्त होजाती हैं।

इसके बाद राजा विक्रमादित्य के पुत्र आदि सब रैवताचल पर्वत पर श्रीअर्हन्तोंके दर्शन करने के लिये गये। पवित्र अन्तःकरण वाले वे लोग पुष्पों से श्री नेमिनाथजी की अर्चना करके तथा अच्छे अच्छे स्तोत्रों द्वारा प्रार्थना करके रैवताचल पर्वत के शिखर से नीचे उतरे इसके बाद राजा, कृषीवल आदि हर्ष से परस्पर मिलकर क्रमशः अपने अपने स्थान की ओर प्रस्थान कर गये।

विक्रमादित्य का पुत्र विक्रमचरित्र भी अपनी प्रिया शुभमती के साथ बहुतसे घोडे और हाथियों से युक्त होकर उस नगरसे अवन्तीपुरी की ओर प्रस्थान कीया। मार्ग में जाते हुए विक्रमचरित्र को अवन्तीनगरी से आता हुआ एक पथिक मिला, जिसे उसने अवन्तीनगरी के नवीन समाचार पूछे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूपवती की काष्ट भक्षण की तैयारी

वह पथिक कहने लगा कि 'भट्टमात्र भीम नामक राजा की अत्यन्त सुन्दरी रूपवती नाम की कन्या के स्वयं ही विक्रमचरित्र के विवाह के लिये अवन्तीपुर में लाये, तब तक विक्रमचरित्र कहीं चला गया। इसके बाद महाराजा विक्रमादित्य ने अनेक देशों में अपने सेवकों को भेजकर उसकी खोज करवाई, परन्तु आजतक उसका कोई भी समाचार प्राप्त नहीं कर सका। बहुत समय जाने पर रूपवतीने राजा से काष्टभक्षण की याचना की उसने कहा कि मैं अब किसी दूसरे वर को अङ्गीकार नहीं करूंगी। तब राजा और अमात्योंने उस कन्या को कहा कि यदि एक मास के भीतर विक्रमचरित्र नहीं आयेगा तो तुम हर्षसे काष्ठभक्षण करना। इस प्रकार उन लोगों ने बड़े कष्ट से उसको समझा कर रक्खा। कल प्रातःकाल महीना पूरा होजाने से वह कन्या काष्ठभक्षण करेगी। महाराजा विक्रमादित्य और उनकी पत्नी सुकोमला वे दोनों पुत्र वियोग से अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। सुकोमला तो रात या दिन में न शय्या पर सोती है और न कभी दो बार भोजन ही करती हैं। अन्य मन्त्री आदिभी सब लोग अत्यन्त चिन्तासे दुःखी होकर दशों दिशाओं में विक्रमचरित्र के आने की राह देख रहे हैं।

विक्रमचरित्र का ठीक वक्त पर पहुंचना

उस पथिक के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर विक्रमचरित्र अत्यन्त शीघ्रगति से मनोवेग अश्व के उपर आरुढ होकर आगे बढ़ता हुआ दूसरे दिन प्रातःकाल अवन्तीपुर के समीप उपस्थित हुआ, तब तक इधर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह राजकन्या रूपमती काष्ठभक्षण करने के लिये राजा विक्रमादित्य आदि परिवार सहित नगर के बाहर आ गई। वह चिता की प्रदक्षिणा करके उसमें प्रवेश करने ही वाली थी कि विक्रमादित्य का पुत्र विक्रम-चरित्र वहाँ पहुँच गया।

माता पिता से शुभ मिलन और रूपमती से लग्न

कुमार का आगमन सुनकर राजा आदि सब लोग प्रमुदित हुए। विक्रमचरित्रने आकर अत्यन्त भक्ति से अपने मातापिता के चरणकमलोंमें प्रणाम किया, फिर राजा विक्रमादित्यने बड़े धूमधाम से रूपमती और शुभमती का नगर प्रवेश करवाया और शुभ लग्न में अत्यन्त उत्सव सहित रूपमती से अपने पुत्र का विवाह करा दिया। फिर दोनों पुत्र वधूओं को रहने के लिए दो सप्त मंजिले महल दिये। अनन्तर विक्रमचरित्र ने अपने माता-पिता को आदि से अन्त तकका अपना सब वृत्तांत कह सुनाया, दीपक अपने तेज से प्रत्यक्ष वस्तु को ही प्रकाशित करता है। परन्तु निष्कलंक पुत्र अपने पूर्वजों को भी अपने गुणोंसे प्रकाशित कर सकता है।

पाठक गण! विक्रमचरित्र का रोमाञ्च पूर्ण परिचय इस पंचम सर्ग में आप पढ़ चुके। मनमें सोचिये कि विक्रमचरित्र कितना पुण्य-शाल है। पूर्वकृत पुण्य से ही सभी प्राणियों को लक्ष्मी एवं भोज्य वस्तुएें प्राप्त होती हैं। जहाँ भी विक्रमचरित्र जा पचहूँता है वहीं सभी को प्रिय हो जाता हैं और इस संसार में सुख देने वाले पदार्थों की उसे प्राप्ति हो जाती हैं। इसका तात्पर्य यही है कि सदैव परोपकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कार्य एवं धर्म भावना से युक्त दानादि शुभ कृत्य में प्रवृत्त रह कर प्रभु भजन पूजन आदि में यथा शक्ति प्रयत्न शील रहना चाहिये, जिससे अपना पुण्य बल सदा बढता रहे। पुण्य बढने से सब तरह का अनुकूल वातावरण उत्पन्न होता है, जैसे महाराजा विक्रमादित्य और विक्रमचरित्र को तरह तरहकी सम्पत्तियाँ स्वयं आकर मिलती रहती हैं। वैसे ही पुण्य करके सुखके भोगने वाले सब बनो यह ही अभिलाषा।

तपागच्छीय-नानाग्रन्थरचयिता-कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक-परमपूज्य-आचार्यश्री-मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य-गणिवर्य-श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
पञ्चमः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट्-
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य-कविरत्न-शास्त्रवि-
शारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य-श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष-
मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानु-
वादः, तस्य च पञ्चमः सर्गः समाप्तः

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

षष्ठ सर्ग

छवीसवाँ प्रकरण

विक्रमादित्य का गर्व

विक्रम का गर्व

एक दिन राजा विक्रमादित्य ने अपनी माता से जाकर कहा "हे माता! क्या यह संसार में मेरे से अधिक पराक्रमवाला कोई व्यक्ति होगा?"

माता ने उत्तर दिया "हे पुत्र! तुम ऐसा मत बोलो। क्यों कि संसार में सब प्राणियों में न्यूनाधिक भाव हैं। यह पृथिवी बहुरत्ना है। इस में पद पद पर द्रव्यों की खान और योजन योजन पर रसकुंपिका है। परन्तु पुण्य हीन व्यक्ति उसको नहीं देख सकते। संसार में सेर पर सवा सेर जरुर हैं।

नगर छोड कर जाना

माता की इस प्रकार की बात सुन कर राजा विक्रमादित्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकदा रात्रि में तल्वार हाथ में लेकर बल का तारतम्य देखने के लिये घर से निकल पड़ा। अनेक प्रकार के आश्चर्य देखता हुआ वह किसी एक गाँव के समीप जा पहुँचा। वहाँ एक कमलनामका किसान

भयंकर बड़े बड़े शेर और चित्ते को बैलों के स्थान पर तथा उन को सर्प से बाँध कर एक सर्पिणी की रस्सी बनाकर हलसे खेत जोत रहा था। यह देख कर राजा अपने हृदय में अत्यन्त आश्चर्य करने लगा। बहुत समय तक खेत में हल चला कर उस किसान ने जब हल चलाना बन्द कर दिया, तब राजा ने उसे पूछा, "क्या तुम से भी अधिक बलवान् और दूसरा कोई व्यक्ति संसार में होगा?"

एक आश्चर्य

उस हली किसान ने उत्तर दिया कि 'रात्रि में एक दुष्ट बुद्धि मनुष्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरी प्रिया के समीप आकर उस के साथ क्रीड़ा करता है। वह मुझ से भी अधिक बलवान् है अतः मैं उसे नहीं रोक सकता।'

उस किसान की बात सुन कर विक्रमादित्य ने कहा कि 'मैं भी तुम्हारे घर पर चलता हूँ तथा रात्रि में हम दोनों मिलकर उस के बल का गुप्त रूप से पता लगायेंगे।'

इस प्रकार विचार कर के राजा विक्रमादित्य उस के साथ उस किसान के घर पर आये और जार के स्वरूप को जानने के लिये दोनों कौतुक वश एकान्त में चुप चाप बैठ गये। रात्रि में जब वह जार आकर उस किसान की पत्नी के साथ वार्ता करने लगा तब किसान तथा राजा विक्रम दोनों उसे अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से मारने लगे। बाण लगने पर वह जार कहने लगा कि 'मेरे शरीर में आज कुछ मच्छर काट रहे हैं ?'

उस जार की यह बात सुन कर विक्रमादित्य अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गया और सोचने लगा कि बाणों के घात को भी जब यह मच्छरों के दंश के समान मानता है तो फिर यह कितना बलवान् व्यक्ति होगा। कुछ डरता हुआ विक्रमादित्य और हली घर से बहार निकले, उसके पीछे पीछे जार पुरुष और हली की स्त्री वे दोनों भी चले। राजा विक्रमादित्य ने कुछ खाते हुए हली को अकस्मात् रोका, उससे क्रोधायमान होकर हलीने विक्रमादित्य और अपनी स्त्री उन दोनोंको अपने गाल के अन्दर रखे, बाद पूर्ववत् खाने लगा, जारपुरुष अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामने आता हुआ देख कर जैसे सिंह मृग को देखकर पकड़ने के लिये दौडता है, उसी प्रकार जारको मारने को दौड़ा, हलीने अपने बाहु-बल से उस जार को मार डाला और मुखमें से उन दोनोंको बहार निकाला।

गर्व खंडन व प्रतिबोध

राजा विक्रमादित्य अपने मन में सोचने लगा कि इसकी बलिष्ठता वास्तव में आश्चर्यजनक है। इसप्रकार का बल तो मैंने इस पृथिवी में किसी में भी नही देखा। विक्रमादित्य उस व्यक्ति के महान् पराक्रम का विचार कर रहा था उतने में एक प्रकाशमान शरीर की कान्तिवाला देव सन्मुख आकर कहने लगा "हे विक्रमादित्य! मैं स्वर्ण-प्रभ नामक देव हूँ। मैंने तुम्हारे गर्व का खंडन करने के लिये यह किसान आदि की आश्चर्यकारक घटना तुझको दिखाई हैं। सज्जन मनुष्य बल, लक्ष्मी, शास्त्र, कुल आदि बातोंका गर्व नहीं करते। क्यों कि हे राजन्! इस सबका न्यूनाधिक भाव पृथिवी में सर्वत्र रहता है।" इस प्रकार कहकर देव अदृश्य हो गया। विक्रमादित्य पुनः अवंती आया और अपनी माता के चरणों में प्रेम पूर्वक प्रणाम करके बोला "हे मातः! तुमने जो कहा था, वह सब सत्य है।"

अश्वारूढ होना व जंगल में जाना

एकदा राजा विक्रमादित्य को कीसी ने सुंदर लक्षणवंत दो घोडे भेट किये। अश्व के वेग की परीक्षा करने के लिये राजा अमात्य, मन्त्री आदि सहित उद्यान में गया। राजा ने एक घोडे पर चढ कर उसे एड लगाई। वह अश्व विपरीत शिक्षित था, अतः राजा को सिंह, व्याघ्र,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि वाले भयंकर जंगल में ले गया। एक वृक्ष के नीचे आकर घोडा रुका और विक्रमादित्य जब उस पर से नीचे उतरा, कि तुरंत ही वह सुकुमार घोडा अत्यन्त थकावट के मारे वहीं मर गया।

राजा विक्रमादित्य अश्व को एकाएक मरा हुआ देख कर तथा धूप और पिपासा से अत्यन्त पीडित होकर मूर्छित हो गया और सुके वृक्ष की तरह शीघ्र ही पृथ्वी पर गिर गये। राजा के पूर्वकृत पुण्य प्रभाव से, कोई एक वनवासी भील घोड़े के पद चिह्नों को देखते देखते वहाँ आ पहुँचा। सब प्राणीयों का पुण्य से ही रक्षण होता है। उस वनवासी ने राजा विक्रमादित्य को बेहोश गिरा हुआ देखा और यह कोई महान् व्यक्ति है ऐसा सोच कर सरोवर से जल लाकर सिञ्चन करके उस राजा को होश में लाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब राजा सचेत हुआ, तो बिना कारण ही उपकार करने वाले उस व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उसके प्रति कहने लगा, " विरल मनुष्य ही गुण के जानने वाले होते हैं। अपने दोषों को ठीक तरह से देखने वाले भी विरल ही होते हैं। दूसरों के कार्य को सिद्ध करने वाले भी थोड़े ही होते हैं। इसी प्रकार दूसरों के दुःख से दुःखी होने वाले भी थोड़े ही होते हैं। दो प्रकार के पुरुषों से ही यह पृथ्वी धारण की हुई है, जिन की बुद्धि परोपकार में निरत है तथा जो उपकार को कदापि नहीं भूलते हैं।" कहा भी है कि—

"सज्जन व्यक्ति अपने कार्य को छोड़ कर भी दूसरों के कार्य में लगे रहते हैं। जैसे चन्द्रमा अपने कलंक को मिटाना छोड़कर पृथ्वी को उजाला देता है।" +

वनवासी भील का अतिथि

वह वनवासी राजा के शब्द सुन कर खुश हुआ और उसे सम्मान पूर्वक अपने साथ पर्वत की गुफा में ले गया और वनवासी पति-पत्नी दोनों ने अत्यन्त प्रेम से राजा की भक्ति की। आदर पूर्वक भोजन आदि देकर उसकी भूख को शान्त करके स्वस्थ किया। कहा भी है :—

"जल में शान्त करने वाला रस होता है, दूसरे के अन्न में जो

+ हुंति परकज्जनिरया निअकज्जपरंमुहा फुडं सुअणा।
चन्दो धवलेइ महीं न कलंकं अत्तणो फुसइ ॥५२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदर है वही रस है, स्त्रियों में जो अनुकूलता है, वही रस है, मित्रों का जो प्रिय वचन है वही रस है।"*

इस कलियुग में तुच्छ व्यक्ति नष्ट होते हैं। उदार आशय उन्नति को प्राप्त करते हैं। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सरोवर सूख जाते हैं, परन्तु समुद्र यथेष्ट वृद्धि को ही प्राप्त करता है।

भील भीलडी की मृत्यु

इसके बाद उस वनवासी ने राजा को अपनी गुफा में सुख पूर्वक सुला दिया और बावन हाथ ऊँचाई की एक शिला लाकर द्वारपर लगादी। अपने घर पर आये हुए अतिथि—मेहमान की रक्षा के लिये स्वयं वह वनवासी द्वार के बाहर सो गया। रात में एक भयंकर शेर ने आकर भील को मार डाला। उस की गर्जना व भील की चीखों से उस की पत्नी जग गई और राजा के पास आकर उसे जगाया तथा कहा कि 'शेरने मेरे पति को मार डाला लगता है, तुरंत बाहर चलो।' राजा और भीलडी गुफा—द्वार पर आये तो वहाँ बड़ी शिला से द्वार बंद था। तब वह बोली, "इस शिला को तो मेरा पति ही दूर कर सकता है। अब हम किस प्रकार बाहर निकल सकेंगे ?।"

उसका रोना पीटना सुनकर अपने बाँये पेर से शिला हटा कर राजा विक्रमादित्य बाहर आया और देखा कि व्याघ्रने उस वनवासी

* पानीयस्य रसः शान्तं पराग्रस्यादरो रसः।
आनुकूल्यं रसः स्त्रीणां मित्राणां वचनं रसः॥ ३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भील को मार दिया है।

राजा उसके मृत्युपर विचार करने लगा, ठीक ही कहा है कि 'वेश्या, राजा, चोर, जल, मार्जार, दांतवाले हिंसक प्राणी, अग्नि, मांस खाने वाले ये सब कहीं भी विश्वास के योग्य नहीं होते।'

अपने स्वामी को मरा हुआ देखकर वह स्त्री भी मूर्छित होकर गिर गई और उसके प्राण पखेरु भी उड गये। अत्यन्त मोह के कारण सदा संसारी जीवों की यही दशा होती है।

भील और भीलडी की मृत्यु देखकर राजा अत्यन्त दुःखी हुआ। वह सोचने लगा कि 'इस भयंकर वन में मेरे पर निष्कारण परोपकार करने वाला यह युगल अकस्मात् ही मृत्युवश हो गया। अरे! यह मेरे परम उपकारी थे। इन दोनों ने मुझको जीवनदान दिया, उनकी यह दशा!! शुभ कार्य करनेवाले की विधाता ने ऐसी बुरी दशा करदी। विधि की गति विचित्र ही होती है।'

राजा ने दान बंद कीया

राजा को ढूँढते हुए उसकी एक टुकडी वहाँ आ पहुँचीं। राजा उसके साथ अपने नगर में लोट गया। उपरोक्त विचार के कारण राजाने दुःखी होकर हमेशा दिया जाने वाला दान भी बन्द कर दिया। दान बन्द होने से दूर दूरके याचक गण दान पाये बिना निराश होने लगे। सदा परोपकारी दानधर्म में अनुरक्त ऐसे महाराजा विक्रमादित्य के दान बंद कर देने से याचक जनों में हाहाकार मच गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भील का श्रीपति सेठ के पुत्र रूपमें उत्पन्न होना

कितनेक मास बीत जाने के बाद अवन्ती नगर में रहने वाले श्रीपति नामक धनी शेठ के यहाँ शुभ दिन में एक पुत्रका जन्म हुआ। यह तुरंत का जन्मा हुआ बालक अपने पिता को बुलाकर स्पष्ट भाषा में कहने लगा कि 'हे पिताजी ! आप महाराजा विक्रमादित्य को मेरे पास शीघ्र बुलाईये। क्यों कि उन पर भविष्य में कुछ विघ्न आनेवाला है।' बालक की यह आश्चर्यकारक बात सुनकर वह श्रीपति शेठ शीघ्र ही राजा को अपने घर बुला लाया।

राजासे बातचीत

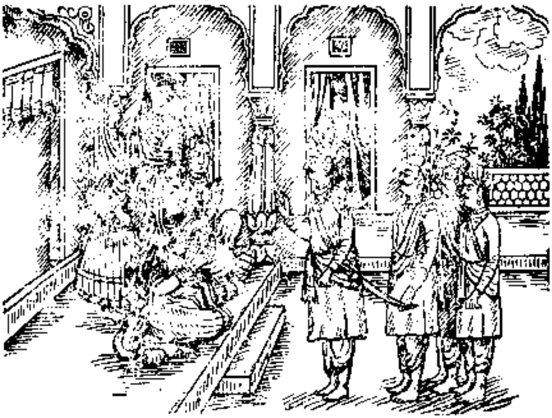

राजा के आने पर उस बालक ने राजा को स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'आप जो कल्याणप्रद दान देते आये हैं उसे क्यों बंद करते हो?' तब राजा ने उत्तर दिया कि 'मैं पूर्व में दान का फल देख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चुका हूँ।'

राजा के कहने पर पुनः बालक ने कहा कि 'हे राजन्! दान का महात्म्य सुनो। मैंने अन्नपान के दान से इस नगर में जन्म पाया है। पूर्व जन्म में मैंने बन में आप को आदर पूर्वक अन्नपान दिया था, उसी दान का फल है कि मैं आज बत्तीस कोटि सुवर्ण के स्वामी शेठ श्रीपति का पुत्र हुआ हूँ।'

राजा उस बालक की यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तथा पूछा कि 'तुम अपनी स्त्री का हाल कहो।'

तब उस बालक ने कहा कि 'वह इसी नगर में दान्ताक सेठ के घर में उस की पुत्री होकर जन्म ले चुकी है। आगे वह मेरी ही स्त्री होगी।' राजा ने पुनः प्रश्न किया कि 'तुम अभी उत्पन्न हुए हो फिर तुम को इस प्रकार का ज्ञान कैसे हो गया?' तब उस बालक ने उत्तर दिया कि 'देवी पद्मावती मेरे द्वारा बोल रही है।'

पुनः दान शुरु करना

राजाने इस बात को जान कर संतोष व आनंद प्राप्त किया और पुनः दान उपकार आदि पहले की तरह उल्लास भावसे ही करने लगा। राजाने खुश होकर उस बालक को पाँच सौ गाँव इनाम दिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्ताइसवाँ प्रकरण

जंगल में एकाकी

विक्रमचरित्र की सोमदन्त से मित्रता

किसी समय राजाने मुख्य खजानची को कहा कि 'मेरा पुत्र जो जो द्रव्य माँगे वह उसे देना' जिस से खजानची राजा के पुत्र को इच्छानुसार धन देने लगा।

राजकुमार विक्रमचरित्र का धीरे धीरे दान्ताक श्रेष्ठी के दूसरे पुत्र सोमदन्त के साथ प्रेम हो गया। विक्रमचरित्र अपने मित्र सोमदन्त के साथ अच्छे अच्छे वृक्षों से युक्त बाहर के उद्यान में क्रीड़ा करने के उद्देश से गया। वहाँ एक वृक्ष के नीचे धर्मध्यान में लीन धर्मघोष नामक सूरीश्वर बैठे हुए थे। विक्रमचरित्र वहाँ जाकर धर्मोपदेश सुनने के लिये विनय पूर्वक उन के आगे बैठ गया।

धर्मघोषसूरि से धर्म श्रवण

तब धर्मघोषसूरिने विक्रमचरित्र को मोक्ष और सुख देने वाला धर्मोपदेश सुनाया। दूसरी बातों के साथ साथ उन्होंने कहा:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"धन से दान, वाणी से सत्य, आयु से कीर्ति और धर्म और शरीर से परोपकार कर के असार वस्तुओं से सार ग्रहण करना चाहिये। यही मनुष्य जन्म का सार है।"×

धर्मघोषसूरि से इस प्रकार धर्मोपदेश सुन कर विक्रमचरित्र सतत दान, शील, तप और भावना के चारों प्रकार से धर्माचरण करने लगा। व्यक्ति जब मोक्ष के नजदीक आता है तथा सकल कल्याण प्राप्ति योग्य होता है तब वह जिनेन्द्र के कहे हुए धर्म को भावनापूर्वक अंगीकार करता है।

धर्म कार्य में बेहद व्यय

विक्रमचरित्र धर्म कार्यों में जो द्रव्य व्यय करता था, वह बहुत ज्यादा था। जब इतना अधिक द्रव्य खजाने से खर्च होने लगा तब कोषाध्यक्ष ने आश्चर्य चकित हो कर महाराज विक्रमादित्य से कहा कि 'हे राजन्! आप का पुत्र सतत बेहद द्रव्य व्यय कर रहा है। अतः में क्या करना चाहिये?।' तब महाराज विक्रमादित्य ने कोषाध्यक्ष को कहा कि 'इस को द्रव्य देने में जरा भी संकोच मत करना। मैं उसे किसी समय अवसर देखकर हित शिक्षा दूँगा। जो काम शान्ति पूर्वक होजाय उसके लिये कठोरता का व्यवहार करना उचित नहीं।'

राजा की हित-शिक्षा

इसके बाद एक दिन राजा विक्रमादित्य भाव और द्रव्य से

× दानं वित्ताद् ऋतं वाचः कीर्तिधर्मौ तथाऽऽयुषः।
परोपकरणं कायादसारात् सारमुद्धरेत् ॥ ६९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनेश्वर देव की पूजा करके आया और भोजन करने के लिये बैठा उस समय उसका पुत्र विक्रमचरित्र भी बहारसे वहाँ आया। तब राजा कहने लगा कि 'आज तुम मेरे साथ ही भोजन करने के लिये बैठ जाओ।' इस प्रकार पिता के कहने पर विक्रमचरित्र उनके साथ ही भोजन करने के लिये बैठ गया। भोजन करते करते राजाने अन्य बातों के साथ साथ कहा कि 'हे पुत्र! जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम मेरी आज्ञा से धर्म कार्य में तथा शरीर सुखाकारी आदि में प्रति दिन पाँच सौ दीनार का अपनी इच्छानुसार व्यय करो।'

राजा की यह बात सुन कर विक्रमचरित्र अपने मनमें सोचने लगा कि पिता के वचनों से मालूम पड़ रहा है कि मैं जो खर्च कर रहा हूँ वह इनको पसन्द नहीं। क्यों कि सोलह वर्ष का जो पुत्र अपने पिता की लक्ष्मी का उपयोग करता है वह पूर्वजन्म की लेनदारी से ही प्राप्त हुआ है, ऐसे समझना चाहिये।' कहा भी है:—

"उत्तम पुरुष अपने गुणों से प्रसिद्ध होते हैं। पिता के गुणों से प्रसिद्ध होने वाले मध्यम होते हैं। मामा के सहारे प्रसिद्धि पानेवाले व्यक्ति अधम गिने जाते है और श्वसुर के नामसे प्रसिद्धि पानेवाले व्यक्ति अत्यन्त ही अधम गिने जाते हैं।"×

राजकुमार की विदेश गमन की इच्छा

इतना सुनते ही उसे वह अन्न भी विष तुल्य हो

× **उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता मध्यमास्तु पितुर्गुणैः।**
अधमाः मातुलैः ख्याताः श्वसुरैश्चाधमाधमाः ॥ ८४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया, तुरन्त जैसे तैसे भोजन समाप्त करके विक्रमचरित्र उठा, वह अपने मित्र. सोमदन्त के घर पहुंचा। विक्रमचरित्रने अपने मित्र सोमदन्त को सब बातें कही। साथ ही कहा कि 'अब मेरी इच्छा विदेश गमन की है, मैं देखता हूँ कि मेरे भाग्य का फल दूर चला गया है। लक्ष्मी किसी को कुलक्रम से नहीं मिलती। खड्ग के बल से ही लक्ष्मी का भोग करना चाहिये। वीरभोग्या वसुन्धरा अर्थात् यह सारी पृथ्वी वीर भोग्या है। जो सज्जन और दुर्जन की विशेषताओं को जानता है, आपत्ति को सहन कर सकता है, वही पृथ्वी के सुखोंका उपभोग करता है। जो मनुष्य घर से निकल कर अनेक आश्चर्य से भरी हुई इस पृथ्वी का अवलोकन नहीं करता, वह वास्तव में कूप मण्डूक ही है। अत्यन्त आलसी होने के कारण परदेश गमन न करके प्रमाद वश कौए, कापुरुष और मृग अपने देश में ही मरण को प्राप्त करते हैं। इस लिये मैं आज रात्रि में चुपचाप ही यहाँ से चल दूँगा। तुम यहाँ सुखपूर्वक रहना तथा सतत मेरा स्मरण करते रहना। चन्द्र ऊपर रहता है और कुसुम नीचे रहता है फिर भी दूरस्थ होते हुए भी पुष्प विकसित होता है। हजारों वर्ष बाद भी कदापि पुष्प तथा चन्द्र का मिलन नहीं होता है किन्तु इन दोनों में अटूट स्नेह रहता है। परस्पर अवलोकन रूप जल से सिक्त होने के कारण स्नेह का अंकुर नित्य वृद्धि को प्राप्त करता है। परन्तु वियोग जनित दुःख रूप सूर्य किरण के आघातों को प्राप्त कर वह नहीं सूखे-प्रीति न भूले ऐसा करना।' क्यों कि:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"सरोवर में कमलों का समूह कहाँ? अत्यन्त दूर आकाश में सूर्य कहाँ? कुमुदों का समूह कहाँ? और आकाश में चन्द्र कहाँ? फिर भी इन सब की मैत्री अखण्ड ही रहती है। इसी प्रकार अत्यन्त परिचय से बद्ध सज्जनों की मैत्री दूर रहने पर भी विचलित नहीं होती अर्थात् नित्य स्थिर ही रहती है।"*

विक्रमचरित्र की इस प्रकार की करुणा तथा स्नेह से परिपूर्ण बातें सुन कर सोमदन्त ने कहा "हे मित्र! तुम क्यों ऐसी बातें बोलते हो। मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता।" सोमदन्त विक्रमचरित्र से छल पूर्वक प्रेम करता था। परन्तु विक्रमचरित्र सोमदन्त से निष्कपट प्रेम करता था। क्योंकि धूर्त मनुष्यों की तीन प्रकार की प्रकृति होती है। यथा—मुख कमल दल के समान सुन्दर होता है। वाणी चन्दन के समान शीतल होती है। परन्तु हृदय कर्तरी के समान छेदन करने वाला होता है। सोमदन्त ने कहा "हे मित्र! जहाँ तुम जाओगे वहाँ मैं भी सुख, दुःख, वन, युद्ध सब जगह तुम्हारे साथ रहूँगा। जैसे दिन और सूर्य में अखण्ड स्नेह है, जिस से दिन के बिना सूर्य नहीं तथा सूर्य के बिना दिन नहीं होता। ठीक इसी प्रकार हमारी और तुम्हारी मत्री है।"

मित्र की बात सुन कर विक्रमचरित्र कहने लगा कि 'हे मित्र!

---

* क्व सरसि वनखण्डं पंकजानां क्व सूर्यः,
क्व च कुमुदवनं वा कौमुदीबन्धुरिन्दुः।
दृढपरिचयबद्धा प्रायशः सज्जनानां,
नहि विचलति मैत्री दूरतोऽपि स्थितानाम् ॥९४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तुम ऐसा मत बोलो। शीत, ताप, वर्षादि से विदेश गमन अत्यन्त दुष्कर है। इस लिये तुम यहाँ घर पर ही रहो।'

तब सोमदन्त पुनः कहने लगा कि 'जो सुख तथा दुःख में मित्र का त्याग नहीं करता वही सच्चा मित्र कहा जासकता है। जल और दूध की मैत्री देखिये। दूध अपने सब गुण पहले जल को दे देता है, तब जल दूध में गरमी देख कर पहले अपनी आत्मा को ही अग्नि से जलाता है। तब मित्र की आपत्ति देखकर दूध अग्नि में जाने के लिये उत्सुक हुआ। तब जल अग्नि को शान्त कर देता है। सज्जनों की मैत्री इसी प्रकार की होती है।

सन्मित्रों का लक्षण सज्जनों ने यही कहा है कि 'सन्मित्र पाप करने से रोकता है, अच्छे कर्म करने में लगाता है, गोपनीय बातों को गुप्त ही रखता है, गुणों को प्रकट करता है, दुःख प्राप्त होने पर भी त्याग नहीं करता, और समय पड़ने पर धन आदि की सहायता करता है।'

सोमदन्त सहित परदेश गमन

इस प्रकार का उसका दृढ़ आग्रह देख कर विक्रमचरित्र उसी रात्रि में चुपचाप सोमदन्त के साथ नगर से बाहर निकला। नगर, ग्राम, नदी, पर्वत, वन आदि को देखता हुआ वह विक्रमचरित्र अपने मित्र के साथ वन में एक सरोवर के समीप पहुँचा। तृषातुर होने के कारण उस सरोवर में जल पीकर विक्रमचरित्र अपने मित्र के साथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किनारे पर एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।

द्यूत खेलना

जब विक्रमचरित्र पानी पीने गया, तब सोमदन्त ने कुछ कंकर एकत्रित कर लिये और कुमार के आने पर बोला कि 'इस समय हम दोनों द्यूत खेलें।' कुमार कहने लगा कि 'मैं द्यूत नहीं खेलूंगा। द्यूत से नीरसता--प्रीति नष्ट होजाती है। पूर्व में युधिष्ठिर तथा दुर्योधन आदि में द्यूत के कारण ही परस्पर विरोध हुआ। कहा भी है कि:—

"द्यूत सकल आपत्तियों का स्थान है। दुर्बुद्धि लोग ही द्यूत को खेला करते हैं। द्यूत से कुल कलंकित हो जाता है। द्यूत खेलने की इच्छा–प्रशंसा अधम व्यक्ति ही करते हैं।"×

राजा नल को द्यूत के कारण ही सर्व भोगों से रहित होकर

× द्यूतं सर्वापदां धाम द्यूतं दीव्यन्ति दुर्धियः।
द्यूतेन कुलमालिन्यं द्यूताय श्लाघतेऽधमः॥ १०९॥

अपना राज्य छोडना पडा था। अपनी स्त्री से भी उसका वियोग हुआ। द्यूतसे ही पांच पाण्डवों को वनवास—आदि दुःख भोगना पडा था। द्यूत, माँस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी करना, और परस्त्री गमन--ये सात व्यसन लोगों को घोर नरकमें ले जाते हैं।'

विक्रमचरित्र का नेत्र हारना

पर सोमदन्त के अति आग्रह से विक्रमचरित्र द्यूत खेलने लगा तब सोमदन्त ने कहा कि 'हे मित्र! बिना बाजी लगाये द्यूत अच्छा नहीं लगता, जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि शोभित नहीं होती। इसलिये कुछ बाजी लगा कर के द्यूत खेलें। द्यूत में जो एक सौ कंकरो से हारे वह अपना एक नेत्र हार जायगा।' इस प्रकार दोनों ने मिलकर शर्ते कि और फिर दोनों खेलने लगे। खेलते खेलते विक्रमचरित्र एक नेत्र हार गया। खेल ही खेल में विक्रमचरित्र अपना दूसरा नेत्र भी हार गया। यों भी द्यूत खेलने वाले तथा स्त्री का ध्यान और दर्शन करने वाले पुरुषों के निश्चय पूर्वक नेत्र और हृदय दोनों अन्धे हो जाते हैं।

कपट वार्तालाप

जब सोमदन्त ने कुमार के दोनों नेत्र जीत लिये, तब वह इस प्रकार सोचने लगा कि 'अभी इससे दोनों नेत्र की याचना करने से क्या लाभ? जब ईसको राज्य मिलेगा तब ही याचना करना ठीक है। उस समय इसके नेत्रों के साथ साथ छल कर के घोडे आदि से सुशोभित इसका राज्य भी ले लूँगा'। कहा है कि 'खल का सत्कार किया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाय तो भी वह सज्जनों को कलह ही देता है। दूध से धोने पर भी काक कभी हंस हो सकता है? विशिष्ट कुल में उत्पन्न होकर भी जो दुर्जन है, वह दुर्जन ही रहेगा, कदापि सज्जन नहीं हो सकता। चन्दन से उत्पन्न होने पर भी अग्नि लोगों को जलाता ही है। दुर्जन व्यक्ति दूसरों के राई के समान सूक्ष्म छिद्र भी देखता है। परन्तु अपने बड़े बड़े छिद्रों को नहीं देखता है। गधा यदि घोडा हो जाय, काक यदि कोकील हो जाय, बक यदि हंस के समान हो, तो दुर्जन सज्जन हो सकता है।'

नेत्र निकालकर दे देना

विक्रमचरित्र मार्ग में चलते हुए यदि कोई नवीन खाद्य वस्तु मिलती, तो पहले मित्र को देता, फिर बाद में स्वयं खाता था। इस प्रकार की प्रीति रखते हुअे कुमार 'सुन्दर' नामक वन में कौतुकों को देखता हुआ क्रमशः आगे बढने लगा। वहां एक सरोवर में जल पीकर दोनों एक वृक्ष के नीचे आकर बैठ गये। तब वार्तालाप करते हुए सोमदन्त ने हास्य से कहा कि 'हे राजकुमार! तुम द्यूत में तुम्हारे दोनो नेत्र हार चुके हो।' उसकी यह बात सुन कर विक्रमचरित्र ने तुरन्त ही छुरी से दोनों नेत्र निकाल कर मित्र को दे दिये। जो अच्छे घोडे होते हैं वे कदापि कशाघात को सहन नहीं कर सकते। सिंह मेघ के शब्द को सहन नहीं कर सकता। वैसे ही मानी व्यक्ति दूसरे के अङ्गुलि निर्देश को सहन नहीं कर सकता। मैं कहीं भी किसी समय अपनी प्रतिज्ञा से विमुख नहीं होता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमचरित्र को अंधा हुआ देखकर सोमदन्त ने छल से कहा कि 'हे मित्र ! तुमने अकस्मात् यह क्या कर दिया ? मैंने तो हंसी ही की थी। अब हम दोनों यहाँ किस प्रकार रहेंगे ? अवन्तीपुर तो बहुत दूर रह गया। यह सर्प, व्याघ्रादि से व्याप्त भयंकर वन है। अब तुम्हारे नेत्रों के बिना हम दोनों मर जायेंगे। इस प्रकार अनेक कपट-युक्त वचन कहता हुआ सोमदन्त पृथिवी और आकाश को भरने वाला रूदन करने लगा। अहो मित्र कुमार ! हास्य करता हुआ मैं तुम्हारे नेत्रों के निकाल लेने से अपार दुःख समुद्र में गिर गया हूँ। तुमने बिना विचार किये ही आवेश में आकर इस प्रकार का कार्य कर लिया। अविचार पूर्वक किया हुआ कार्य मनुष्यों को दुःख देनेवाला होजाता है। सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये। क्यों कि अविवेक बहुत बडी आपत्ति का स्थान हैं। जो विचार कर के काम करते हैं उनके यहाँ लक्ष्मी भी गुण के लोभ से स्वयं आ जाती है।

अपने मित्र को इस प्रकार विलाप करते हुए देखकर कुमारने कहा कि 'हे मित्र ! इसमें किसी का दोष नहीं है। यह सब मेरे अपने कर्मों का ही दोष है। इसलिये तुम दुःख मत करो। कोई भी व्यक्ति अपने एकत्रित किये हुऐ कर्मों को भोगे बिना मुक्त नहीं होता। जैसे हजारों गायों में वत्स अपनी माता के पास चला जाता है, वैसे ही पूर्व-कृत कर्म करने वाले के पीछे पीछे दौड़ता है। प्रमादी व्यक्ति लीला-पूर्वक हँसते हुए जो कर्म करते हैं, वे कई जन्मों के बाद भी उसके फलका अनुभव करते हैं तथा शोक पाते हैं। इसलिये हे मित्र ! मेरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ रहने से यहाँ दोनों की मृत्यु हो जायगी, अतः अब तुम यहाँसे शीघ्र अपने घर चले जाओ।'

विक्रमचरित्र के ऐसा कहने पर सोमदन्त ने सोचा कि यह यहाँ रह कर निश्चय ही मर जायगा। मैं यहाँ इस वन में रह कर व्यर्थ ही क्यों प्राणत्याग करूँ ?। इस प्रकार अपने मन में विचार कर सोमदन्त ने कहा कि 'हे मित्र ! मेरा पैर तो जरा भी नहीं उठता। मन में कुछ, वाणी में कुछ और क्रिया में कुछ, इस प्रकार नीच व्यक्तियों का स्वभाव वेश्याओं के तुल्य ही होता है।

सोमदन्त का जाना.

तब सरल स्वभाव वाला राजकुमार ने पुनः कहा कि 'हे मित्र ! तुम मेरा कहा क्यों नहीं कर रहे हो ?। उत्तम प्राणियों का स्वभाव तो मन-वचन-शरीर और क्रिया सब में समान ही रहता है। नित्य अपकार करने वाले मनुष्य का भी उत्तम व्यक्ति निरन्तर हित ही करते हैं। यह आत्मीय है तथा यह अन्य है, इस प्रकार का विचार तो क्षुद्र-चित्त वालों को ही होता है। उदाराशय व्यक्तियों के लिये तो समस्त पृथिवी ही परिवार है। सज्जन व्यक्तियों का यह स्वभाव ही होता है कि वे सदा उपकार करते हैं, प्रिय बोलते हैं और स्वभाविक स्नेह करते है। क्या चन्द्रमा को किसीने शीतल बनाया है ?' वह दुराशय सोमदन्त विक्रमचरित्र के ऐसा कहने पर उसके चरणों में प्रणाम करके उस स्थान से चल दिया। कहा भी है कि:—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः, शुष्कं सरः सारसाः,
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपा, दग्धं वनान्तं मृगाः।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिकाः, भ्रष्टं नृपं सेवकाः,
सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते, कः कस्य को वल्लभः?॥१५१॥

फल रहित वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं, जल रहित सरोवर को सारस छोड़ देते हैं, वासी पुष्प को भ्रमर त्याग देते हैं, दग्ध वन को मृग छोड़ देते हैं, धन रहित पुरुष को वेश्या छोड़ देती है और राज्य-भ्रष्ट राजा को सेवक छोड़ देते हैं, सब प्राणी अपने अपने कार्यवश–स्वार्थवश ही प्यार करता है। अन्यथा यह संसार में कौन किसका प्रिय है?

जंगलमें एकाकी

सोमदन्त के चले जाने पर विक्रमचरित्र जंगल में एकाकी रह गया। वह सरोवर के तट पर से उठकर धीरे धीरे चला, भूख व प्याससे उसका शरीर शिथिल हो गया। उस भयंकर जंगल में वह निर्भय होकर चला।

चलते चलते वह एक पेड के नीचे आकर बैठ गया और सोचा कि कोई जंगली प्राणी आकर मुझे मार दे तो ठीक, उसने अपने पिता व पत्नी को याद किया और प्रभु का स्मरण कर वहीं लेट गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठाइसवाँ प्रकरण

भारण्ड पक्षी व गुटिका का प्रभाव

कनकपुर में

विक्रमचरित्र जिस वृक्ष के नीचे आकर बैठा व लेटा हुआ था उस वृक्षपर पूर्व समय से ही एक अशक्त वृद्ध भारण्ड पक्षी अपने अनेक पुत्रों के साथ रहता था। प्रातःकाल उसके सब पुत्र दशों दिशाओं में दूर दूर आहार लेनेके लिये चले जाते थे और सायंकाल में वापिस लौट कर अपने पिताको प्रणाम कर के एक एक फल उसे देते थे। उस दिन भी यथासमय सबने आकर उसे फल भेट किये। उसके बाद वह वृद्ध भारण्ड बोला कि 'इस समय यहाँ पर कोई अतिथि है ?'

वृद्ध भारण्ड का अतिथि

तब विक्रमचरित्रने कहा 'हे तात ! यहाँ पर मैं अतिथि हूँ।'

तब उसने पूछा "तुम कौन हो ?"

राजपुत्र बोला "दुखस्थ दीन तथा कृपापात्र मैं अपने कर्म से यहाँ लाया गया हूँ।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब भारण्ड ने अपने पुत्रों से कहा कि 'इस अतिथि को यहाँ वृक्ष पर ले आओ। पिता के कहने पर पुत्र उठा और शीघ्र ही अतिथि को पिता के समीप ले आया।

अतिथि के अपने पास आजाने पर भारण्ड पक्षीने उस को कुछ फल दिये। जिससे वह सन्तुष्ट होगया। इसके बाद उस राजकुमार को पक्षियों ने वृक्ष के नीचे रख दिया। इस प्रकार हमेशा फलों का आहार करते हुए वह राजकुमार सुख पूर्वक वहाँ रहने लगा।

कुछ दिनों के बाद एकदा अपने एक पुत्र को संध्या बित जाने पर देर से आया हुआ देख कर उसे पूछा कि 'तुम आज इतनी देर से क्यों आये?'

कनकसेन की अंधी पुत्री का समाचार

तब वह कहने लगा:—" हे तात ! मैं एक वन से दूसरे वन में क्रीडा करता हुआ 'कनकपुर' नामक एक सुन्दर नगर में गया था। वहाँ कनकसेन नामक राजा की रति नामकी स्त्री है। उसकी कन्या कनकश्री अपने कर्मदोष से अन्धी हो गई थी। वह क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुई। बहुत रूपवती होने पर भी अन्धी होने से वह कन्या आज काष्ठभक्षण करने जारही थी। आज तक राजाने कई तरह के इलाज कराये फिर भी उसका अंधापन नहीं मिटा। किसी तरह उस के पिताने उसे समझा—बुझाकर दस दिन के लिये घर में रखी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। उस कन्या को देखने के लिये नगर के अनेक लोग इकट्ठे हो गये। मैं भी उस को देखने के लिये वहाँ रूक गया। इसी लिये मुझे आज आने में देरी होगयी। हे तात! क्या वह राजकन्या पुनः दृष्टि प्राप्त कर सकती है?"

तब वृद्ध भारण्ड कहने लगा, "मैं मास के अंत में जो मलोत्सर्ग करता हूँ, उसको अमृतवल्ली के रस में मिला कर कोई मनुष्य उसके दोनों नेत्रों में एक बार लगा दे तो वह कन्या दिन में भी तारे देख सकती है।"

विक्रमचरित्र के नेत्र खुलना

रात्रि में उसकी यह बात सुन कर राजपुत्र ने प्रातःकाल में उस पक्षी का मल लेकर अमृतवल्ली का रस मिलाकर अपने नेत्रों में लगाया। धीरे धीरे वह उसके आंखों में फैला और उसकी दृष्टि खिलने लगी, कुछ समय में वह देखने लग गया। कहा है कि 'मन्त्र रहित कोई भी अक्षर नहीं है। हर एक वनस्पति औषध के उपयोग में आ सकती है। पृथिवी अनाथ नहीं है। परन्तु इन सब को पहचानने वाला तथा विधि जानने वाला ही दुर्लभ है। मन्त्र, तन्त्र, औषधि रत्न आदि सब इस पृथिवी में भरे पडे हैं।'

नेत्रों को वह औषध लगाने से दिन में भी तारा देखे एसी तेजस्वी आँखें हो गईं। फिर राजकुमार ने अपने वस्त्रों को अच्छी तरह से धो लिया, बाद में उस भारण्ड पक्षी का मल लेकर अमृत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वल्ली के रस के साथ मीला कर बहुत सी गुटिकायें बनाई और उन को अपने पास रख लिया।

फिर जब राजकुमार ने भारण्ड पक्षी के पास जाकर उसे प्रणाम किया तो उसे देखकर भारण्ड पक्षीने पूछा कि 'आज मैं तुम्हारा नवीन ही वेष देख रहा हूँ। यह तुम ने कैसे किया सो कहो।'

राजकुमार ने उत्तर दिया कि 'यह सब आपकी प्रसन्नता से ही हुआ है। आप के अनुग्रह से आज मैं अत्यन्त खुश हूँ। यदि आप की आज्ञा हो तो मैं कनकपुर नगर में जाकर राजा की कन्या को सुन्दर नेत्रवाली बनाऊँ।'

तब भारण्ड पक्षीने कहा कि 'यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा हो तो अच्छा जाओ, लेकिन आज यहाँ ठहर जाओ। मेरे लड़के प्रातःकाल सर्वत्र जाते हैं। मैं रात्रि में कहूँगा सो तुम मेरे एक पुत्र के पंख पर बैठकर कनकपुर चले जाना। विद्वान् व्यक्ति शास्त्र का बोध के लिये, धन को दान के लिये, प्राण को धर्म के लिये और शरीर को परोपकार के लिये ही धारण करते हैं। मरु देश के मार्ग में रहने वाला बबूल का वृक्ष भी अच्छा है, जो पथिकसमूह का उपकार करता है। उपकार करने में असमर्थ कनकाचल पर रहने वाले कल्पद्रुमों से क्या लाभ? जो किसी पथिक के काम नहीं आते। वास्तव में जो परोपकार करता है वह व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त करनेवाला होता है।

दूसरे दिन प्रातःकाल में राजकुमार उस भारण्ड से बिदा लेने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया। उस भारण्ड ने कहा कि 'हे वत्स! तुम यहाँ अबतक रहे हो अत एव मेरे अति प्रिय हो। तुम मेरा स्मरण करना ! सज्जन वही है जो अति दूर रहने वाले के स्नेह का भी निर्वाह करें।'

कुमार ने उत्तर दिया कि 'हे तात! मैं तुम्हारा स्मरण सतत करता रहूँगा। आपने तो मुझ निराधार को आश्रय दे कर मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है अर्थात् आप मेरे जीवनदाता है।'

भारण्ड के मल की गुटिका लेकर कनकपुर जाना

फिर वृद्ध भारण्ड के कहने से उसके एक पुत्रने राजकुमार को अपनी पंख पर बिठा कर कनकपुर पहुँचाया और स्वयं कुमार से स्नेह पूर्वक विदाय ले कर अपने आहार की खोजमें चला। विक्रमचरित्र भी वैद्य का वेष धारण कर के शहेर में घूमने गया। शहेर देखते देखते वह एक बड़े व्यापारी की दुकान पर जा पहुँचा। दुकान के मालिक 'श्रीद' नामक श्रेष्ठी का मुख उदास देख कर कुमारने पूछा कि 'हे श्रेष्ठिवर्य! आपका मुख इतना उदास क्यों दिखाई दे रहा है?।'

श्रेष्ठीने उत्तर दिया कि 'हे भाइ! मैं बड़े कष्ट में हूँ। मेरे एक मदन नामक पुत्र है। उसका शरीर बड़ा सुन्दर था परन्तु दैवयोग से वह इस समय रोगग्रस्त हो कर कुरूप हो गया है। उसका कइ उपचार किया परन्तु वह अभी तक निरोगी नहीं हुआ।'

तब कुमारने कहा—"हे श्रेष्ठिवर्य! आप अपने मन में कुछ भी दुःख न लायें। मैं आपके पुत्रको औषध प्रयोग द्वारा अत्यन्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निरोगी व दिव्य शरीर वाला बना दूँगा।"

श्रीद श्रेष्ठी के पुत्र को निरोगी बनाना

वह राजकुमार तथा श्रीद दोनों उस के घर गये। वहाँ जाकर उसने अनेक वस्तुएं मंगवाई और बड़ा आडम्बर करके उसके पुत्र को उन गुटिकाओं के विलेपन से बिल्कुल नीरोगी बना दिया। जब पुत्र नीरोगी हो गया तो श्रेष्ठीने कुमार का खूब आदर-सत्कार किया तथा भोजन आदि कराकर उसे प्रसन्न किया, फिर विक्रमचरित्र उसी श्रेष्ठी के यहाँ सुख पूर्वक रहा। कहा भी है कि—'विदेश में रहने पर भी भाग्यवानों का भाग्य जाग्रत ही रहता है। जैसे मेघद्वारा आच्छादित होने पर भी सूर्य की किरणें अन्धकार का नाश करती हैं।'

राजपुत्री की काष्ठभक्षण यात्रा व उसे रोकना

दस दिन पूरे होजाने पर कनकश्री अपने पिता से मिल कर काष्ठ-भक्षण करने के लिये अश्व पर आरूढ हो कर राजमार्ग द्वारा जाने लगी। वाद्यों का शब्द सुनकर उस राजपुत्री को देखने के लिये बहुत सी स्त्रियाँ अपना अपना कार्य छोड कर आने लगीं। विक्रम-चरित्र ने भी वाद्य के शब्द सुन कर श्रीद श्रेष्ठी से पूछा कि 'यहाँ पर इतने लोग क्यों एकत्रित हुए हैं?' श्रेष्ठी ने उस राजपुत्री के बारे में सब हाल आदि से अंत तक कह सुनाया। उसकी यह बात सुन कर विक्रमचरित्र अपने मस्तक को हिलाने लगा। श्रेष्ठीने पूछा कि 'आप सिर को क्यों हिला रहे हैं? इसका कारण कहो।' कुमारने उत्तर दिया कि 'यह कन्या व्यर्थ ही मर जायगी।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठी ने पुनः पूछा कि 'हे नरश्रेष्ठ ! क्या इसका कोइ उपाय है, जिससे यह कन्या दिव्यनेत्र वाली बन जाय, कुमारने कहा कि 'अवश्य ही यह कन्या दिव्य नेत्रवाली हो सकती है।' इस प्रकार कहने पर श्रीद तत्काल राजा के पास गया। राजा के पास जा कर उसे श्रेष्ठी ने कहा कि 'ईस समय अपनी पुत्रीको समझाइये कि वह काष्ठभक्षण न करे। एक सुन्दर और चरित्रवान् वैद्य मेरे घर पर आया है। वह आपकी कन्या को दिव्य नेत्रवाली बना देगा।'

राजपुत्री के नेत्र खुलना

यह बात सुन कर राजा ने शीघ्र ही अपनी कन्या से जाकर कहा कि 'एक परदेशी वैद्य आया है, जो तुम को औषधि द्वारा उपचार करके दिव्य नेत्रवाली कर देगा।' इस प्रकार बार बार कहने से बड़े कष्ट से राजा अपनी पुत्री को लौटा कर राजमहल में ले आया। फिर राजाने श्रेष्ठी से कहा कि 'अब मेरी पुत्री को ठीक करा दो।' तब श्रेष्ठी ने पूछा कि 'हे राजन् ! उस वैद्य को क्या दोगे ?' राजाने कहा कि 'मेरी पुत्री को ठीक कर ने पर में उस वैद्य को अपना आधा राज्य दे दूँगा।' तब उस श्रेष्ठी के बुलाने पर वैद्य 'विक्रमचरित्र' राजा के पास आया। वहाँ उस औषध को अनेक आडम्बर सहित राजपुत्री के नेत्रों में लगा कर उसे देखने वाली बना दिया। पुत्री के नेत्र प्राप्त करने से नगर में सर्वत्र नृत्य गीत आदि से उत्सव कराया।

वैद्य से लग्न करने का आग्रह

राजपुत्री ने अपने उपकारक उस वैद्य को दिव्य शरीर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला देखा तो कहा कि 'मैं इस वैद्य से ही विवाह करूँगी, अन्यथा अग्नि में प्रवेश करके प्राणत्याग कर दूँगी।' तब राजाने कहा कि 'हे पुत्री! इस वैद्य के कुल-गोत्र आदि का हमें कुछ भी पता नहीं है। अतः मैं तुम को इसे कैसे दे दूँ।' राजा की यह बात सुन कर उस की पुत्रीने पुनः कहा कि 'आप इस विषय में कुछ भी विचार न करें। मैं तो इसी वैद्य से ही विवाह करूँगी, अन्यथा अग्नि प्रवेश करूँगी।' इस प्रकार दृढता पूर्वक राजपुत्री के आग्रह करने पर राजा ने अपने मंत्री आदि से कहा कि 'यह कन्या मेरी बात नहीं मान रही है। इस लिये इसे मेरे से दूर ले जाकर कहीं वाटिका आदि में आप लोग इस कन्या का वैद्य से लग्न करा दे। तथा जिस देश में मेरे शत्रु और कष्टसाध्य राजा लोग हैं वह देश वैद्य को दे दें।'

विक्रमचरित्र का राजकन्या से लग्न व राज्यप्राप्ति

इसके बाद मंत्री लोगों ने राजा की आज्ञा पाकर विक्रमचरित्र से उस राजकन्या का लग्न करा दिया तथा राजा के कहे हुए देश उसे दे दिये। फिर वह वैद्य विक्रमचरित्र राजा के दिये हुए द्रव्य से चित्र-शाला आदि से शोभायमान एक बहुत बड़ा प्रासाद बनवा कर अपनी प्रिया के साथ उस में रहने लगा।

अमात्यों ने राजा को आकर लग्न हो जाने का कहा। राजा ने कहा कि 'मेरी यह कन्या दुःख भागिनी होगी। मैं ने इसको नेत्र दिलाकर इसका उपकार किया, परन्तु यह मेरी पूरी शत्रु हो गई। यह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरी बात ही नहीं मानती। माता, पिता, पुत्री, पुत्र, मित्र, सज्जन, सेवक ये सब स्वार्थ सिद्धि के लिये ही एकत्र होकर हर्ष पूर्वक मिलते रहते हैं।'

विक्रमचरित्र अपने को दिये हुए देशों का राजा बन चुकाथा। उसने सब राजा व सामन्तों को सूचित किया कि " आप लोग आकर तुरंत ही मेरी आज्ञा का पालन करो। मुझे राजा ने अपनी पुत्री के साथ आप लोगों का देश भी सुपुर्द किया है। वैद्य होकर भी मैं भाग्यसंयोग से आप लोगों का स्वामी बन चुका हूँ। अतः आप लोग यहाँ आकर आदर पूर्वक मेरी सेवा करें। अन्यथा मैं शीघ्र ही आप लोगों को निग्रह करूँगा।'

यह बात जान कर सब सामन्तों ने मिल कर यह विचार किया कि अब तक हम लोगों ने उत्तम कुल में उत्पन्न तथा अत्यन्त बलशाली राजा की भी थोडी सी सेवा नहीं की। वेही हमलोग अधम जाति में उत्पन्न तथा अज्ञात कुलशीलवाले इस वैद्य की किस प्रकार सेवा करेंगे। यह ठीक ही कहा है कि "दूसरे से प्रतिष्ठा प्राप्त कर के प्रायः नीच व्यक्ति भी अत्यन्त दुःसह हो जाता है। जैसे सूर्य जितना तप्त नहीं होता, वालुका–रेती का समूह उससे भी अधिक तप्त हो जाता है।"+

नीच व्यक्ति उच्चपद प्राप्त करके अपने मन में समाता ही नहीं

+ अन्यस्मादपि लब्धोष्मा नीचः प्रायेण दुस्सहो भवति।
ताद्दग् न दहति रविरिह दहति यथा वालुकानिकरः ॥२२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। जैसे वर्षा ऋतु में छोटी छोटी नदियाँ तट का भी उल्लंघन कर जाती हैं। "कोई भी व्यक्ति गुण से उत्तम होता है, ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं। प्रासाद के शिखर पर बैठने से क्या कौआ गरुड समान हो जाता है?"×

इस प्रकार विचार कर उन लोगोंने अपने सेवको द्वारा यह सूचित किया कि 'हम लोग आप का कोई आदेश नहीं मानेंगे। यदि तुम में कुछ शक्ति हो तो यहाँ हमारे सम्मुख आओ। राजा से इस राज्य का आधा दान मिलने के कारण तुम बड़े हुए हो। परन्तु हम लोग दुर्ग आदि के कारण देवताओं से भी दुर्जय हैं।'

सामन्तों को संदेश व उनका उत्तर

उन सामन्तों की यह बात सुन कर अतुल पराक्रमी राजा विक्रमचरित्र अदृशीकरणविद्या द्वारा सब से पहले प्रधान शत्रु तथा मुख्य सामन्त के महल में उपस्थित हुआ और साहसी विक्रमचरित्र अपने शत्रु को कण्ठसे पकड़ कर बोला कि 'हे सामान्त! अब तुम मेरी आज्ञा का पालन करना स्वीकारो, अन्यथा तीक्ष्ण धार वाली यह मेरी तलवार तुम्हारे कण्ठ को कमल के नाल के समान काट देगी। इस समय तुम्हारा जो कोई भी इष्ट देव हो उस का स्मरण कर लो। समस्त वैरी रूपी रोग को शान्त करने वाला मैं वही वैद्य हूँ।'

× **गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।**
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते? ॥२२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैं एकाकी हूँ, असहाय हूँ, अपने परिवार से रहित हूँ, इस प्रकार की चिंता सिंह को स्वप्न में भी नहीं होती। सिंह शकुन, चन्द्रबल, धन या ऋद्धि कुछ भी नहीं देखता है। वह एकाकी भी अपने भक्ष की सिद्धि के लिये डट जाता है। जहाँ साहस होता है वहाँ सिद्धि भी मिलती है।

यह सुन कर भय से थर थर काँपता हुआ वह शत्रु सामन्त बोला कि 'हे सात्त्विक मुझ को छोड दो। मैं तुम्हारे चरण कमलों की सेवा करूँगा।'

तब वह वैद्य बोला कि 'आज मैं तुम को दया भाव से छोड देता हूँ। मैं देव, दानव तथा मानव सभी को अपने वश में करता हूँ। प्रातःकाल शीघ्र ही कनकपुर के उद्यान में तुम भक्ति पूर्वक मेरी सेवा करने के लिये नहीं आओगे तो यह तलवार तुम्हारे कण्ठ को छेदन कर देगी।'

तब वह मुख्य शत्रु शीघ्र ही उसकी आज्ञा मानकर बोला कि 'हे स्वामिन्! मैं अब तुम्हारा पूर्ण सेवक हो गया और आप की आज्ञानुसार ही करूँगा।

सामन्तों को वश में करना

इसी प्रकार सभी सामन्तों को अपना पराक्रम दिखा कर विक्रमचरित्र रात्रि में उस बाह्योद्यान में उपस्थित होगया। उसने अपने सेवकों को बुलाकर कहा कि 'अच्छे अच्छे चित्रों से सभागृह को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्यन्त रमणीय बनादो। प्रातःकाल में ही सब शत्रु आदर पूर्वक मेरी सेवा करने के लिये यहाँ आने वाले हैं। उसने उन लोगों को देने के लिये अपने सेवकों को भेजकर पान तथा वस्त्र आदि शहर में से मंगवाये। फिर वह वैद्यराज विक्रमचरित्र चित्रशाला में जाकर सब सामन्तों की सेवा लेने के लिए अपने स्थान पर बैठा।

वैद्यराज के सब समाचार जानकर राजा कनकसेन के दूतों ने प्रातःकाल उसे यह सब वृत्तांत कहा। उन समाचारों को जानकर राजा ने अपने मंत्री आदि से कहा कि—
'इस वैद्य के पास न सेवक हैं, न घोडे हैं तथा न हाथी ही हैं, पर वह सब सामन्तो से सेवालेने की तैयारी कर रहा है, यह सब मूर्खो का लक्षण है।' राजाने अपनी पुत्री से पुछवाया कि 'उसका पति उन्मत्त तो नहीं हो गया है?' राजाकी पुत्री ने उत्तर भेजा कि 'मेरा पति जो कुछ करता है, वह सब सोच समझ कर करता है। आप चिंता न करें।'

उधर कनकसेन राजा के दूतों ने खबर दी कि 'सब शत्रु सामन्त अपनी अपनी सेना सहित आये हैं। एसा लगता था मानो वे आक्रमण करने वाले हैं। फिर वे सामन्त लोग उपहार ले ले कर उद्यान में वैद्यराजको प्रणाम करने गये। एकाएक सबने रत्न, सुवर्ण, तुरंग आदि का उपहार देकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक वैद्य विक्रमचरित्र को प्रणाम किया। कोई अञ्जलिबद्ध होकर वैद्यराज के आगे खड़े है, तो कोई हर्षपूर्वक पंखा चला रहे हैं, तो कोई दोनों चरणों को दबा रहे हैं, और कोई जय जय शब्द कर रहे हैं। विक्रमचरित्र ने भी सब को उनके योग्य वस्त्र,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभूषण, पान आदि देकर उनका सत्कार किया।

यह सब सुन कर राजा कनकसेन अपने मन में विचार करने लगा कि 'मेरा यह जामाता महान् है, एवं पराक्रमी भी है। फिर दूसरे क्षण सोचने लगा कि नहीं, यह इसका पराक्रम नहीं है, किन्तु मेरी कन्या के अच्छे पुण्यों का प्रभाव है। स्वभावतः नीच मनुष्य अच्छे पद को प्राप्त कर गर्व करता है। यह मेरा जामाता भी इसी प्रकार का आडम्बर कर रहा है। मेरी पुत्री के प्रभाव से ही लोगों ने इस को इतना महत्व दिया है। यद्यपि सब शत्रु सामन्त इसके चरणकमलों को प्रणाम करते हैं, तथापि इस वैद्य की नीचता कैसे जायगी। काक कभी हँस की चाल नहीं चल सकता। एवं नीच अपने स्वभाव को नहीं छोड सकता।'

विक्रमचरित्र ने सबको सम्मानित किया बाद वे लोग परस्पर कहने लगे कि 'आप श्रेष्ठ व्यक्ति है अतः हम सब आप की आज्ञा को शिरोधार्य करते है।' एसा कह करके पुनः सब अपने अपने स्थान को चले गये।

उस वैद्य का इतना पराक्रम देखकर कनकसेन राजा को संशय होने लगा कि मेरा जामाता अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ होना चाहिये। क्यों कि आचार से ही कुल जाना जाता है। जैसे शरीर से भोजन जाना जाता है, हर्ष से स्नेह जाना जाता है और भाषा से देश जाना जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उगनतिसवाँ प्रकरण

समुद्र में गिरना तथा घर पहुँचना

समुद्र तट पर एक व्यक्ति का तैरते हुए आना

वैद्यराज विक्रमचरित्र एकदा समुद्र तट पर क्रीडा कर रहे थे। उस समय अत्यन्त व्याकुल चित्त वाला तथा एक काष्ठ को पकड़े हुए और उसी के आधार से तैरते हुए किसी मनुष्य को सामनेसे समुद्र में आते हुए देखा। दया उत्पन्न होने से उसने अपने सेवकों द्वारा शीघ्र ही उस मनुष्य को समुद्र से बाहर निकलवाया तथा शरीर में तैल आदि के मर्दन रूप उपचार से शीघ्र ही उसको सचेतन किया।

यह आत्मीय है तथा यह अन्य है, ऐसा विचार तो क्षुद्र चित्त वालों को ही हुआ करता है परन्तु जो उदार चरित्र वाले हैं उनके लिये तो समस्त पृथ्वी ही परिवार तुल्य है। सज्जन व्यक्ति दूसरे को विपत्ति में देख कर अत्यन्त सौजन्य दिखाते हैं। लोगों को छाया देने के लिए ग्रीष्म ऋतु में वृक्ष सघन कोमल पल्लवों से आच्छादित हो जाते हैं। सज्जन व्यक्ति नारियल की तरह केवल बाहर से कठोर लेकिन भीतर से सरल, मीष्ट और मृदु होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भीम का हाल.

उसके स्वस्थ होने पर विक्रमचरित्र ने उसे पूछा कि 'किस स्थान से आया है तथा यह हाल किस तरह हुआ। उत्तर में उसने कहा कि 'मैं वीर नाम के श्रेष्ठी का पुत्र भीम हूँ। मैं अपने पिता की आज्ञा लेकर धन उपार्जन करने के लिये अवन्तीपुर से समुद्रमार्ग से निकला। रास्ते में वाहन के टूट जाने के कारण समुद्र में गिरा। भाग्य संयोग से एक काष्ठ मेरे हाथ में आ गया, जिसे पकड़ कर मैं बडे कष्ट से यहाँ तट तक आ पहुँचा।'

तब वैद्यराज विक्रमचरित्र ने उसे कहा कि 'हे महाभाग! तुम कुछ भी दुःख मत करो। यहाँ तुम मेरे पास ही मौज से रहो और अपना समय सुख पूर्वक बिताओ। मैं शीघ्र ही अवन्तीपुर की ओर जाने वाला हूँ। उस समय तुम मेरे साथ ही चलना। "कवियों ने सज्जनों के हृदय को नवनीत के समान मृदु कहा है, पर सज्जन व्यक्ति तो दूसरे के शरीर में ताप देखकर ही द्रवित हो जाते हैं।"+

फिर विक्रमचरित्र आदर पूर्वक प्रतिदिन अन्न, पान, वस्त्र आदि से उसका पोषण करने लगा। उपकार करना, प्रिय बोलना, सहज स्नेह, यह सब सज्जनों का स्वभाव ही होता है। चन्द्रमा को किसने शीतल बनाया है।

+ सज्जनस्य हृदयं नवनीतं गीतमत्र कविभिर्न तथा यत्।
अन्यदेहविलसत्परितापात् सज्जनो द्रवति नो नवनीतम्॥२७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवन्ती की स्थिति जानना

एकदा विक्रमचरित्र ने भीमसे अवन्तीपुर का हाल पूछा तो उसने उत्तर दिया कि 'वहाँ महाराजा विक्रमादित्य नीति से पृथ्वी का पालन करते हैं। वहां का राजपुत्र चुपचाप चला गया था तब से उसकी चिंता हो रही है एक दिन एक चोर राजा के आभूषण आदि ले गया था, वह अभी तक पकडा नहीं गया है। इस बीच में उस नगर से बहुत सी वस्तु लेकर समुद्र मार्ग से वाहन द्वारा धनोपार्जन के लिये निकल पडा है'। विक्रमचरित्र ने उसे कहा कि 'मैं ही राजा विक्रमादित्य का पुत्र हूँ। पृथ्वी में भ्रमण करता हुआ भाग्य संयोग से यहाँ आ गया हूँ। तथा यहाँ आकर राजा की कन्या से विवाह किया है।' फिर विक्रमचरित्र ने अपने नगर चलने की इच्छा से कई बहु मूल्य वस्तुओं से बड़े बड़े वाहन भर कर तैयार किये और अपनी स्त्री को राजा के पास प्रेम पूर्वक मिलने के लिये भेजी। उसने राजा के पास जाकर कहा कि 'हे तात! अवन्तीपुर के राजा विक्रमादित्य के पुत्र मेरे स्वामी अपने माता-पिता से मिलने की इच्छा से यहाँ से प्रस्थान करने वाले हैं, इसलिये मैं आप से मिलने के लिये आई हूँ।'

कनकसेन को विक्रमचरित्र के कुल आदि का पता लगना

अपने जामाता के पिता तथा कुल आदिका सम्बन्ध जानकर राजा अपने मन में विचार करने लगा कि मैंने अपनी मूर्ख बुद्धि के कारण उसका बहुत तिरस्कार किया है। मैंने शत्रुराज्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देकर उसकी अवज्ञा की है । परन्तु जामाता ने कुछ भी विकार अपने मन में नहीं दिखाया है । इस प्रकार के सुजन व्यक्ति का अपमान करने के कारण निश्चय ही मुझ को पश्चात्ताप करना चाहिये। इसकी सज्जनता अत्यन्त अद्भुत है ।

"सज्जन अच्छे का पक्ष ग्रहण करता है तो बाण का पंख अच्छा होता है, दोनों ही ऋजु होते हैं-एक सरल स्वभाव का, दूसरा सीधा। दोनों ही शुद्ध होते हैं--एक पवित्र हृदय, दूसरा चिकना। दोनों गुण सेवी होते हैं--एक दया, दाक्षिण्य आदि गुणों का सेवन करने वाला, दूसरा धनुष्य का गुण (डोरी) का सेवन करने वाला। इस प्रकार तुल्य गुण होने पर भी यह आश्चर्य है कि सज्जन सज्जन ही है और शरशर (बाण) ही है।"×

राजा का पश्चात्ताप

राजा ने अपनी पुत्री की बात सुन कर अपने जामाता को अपने यहाँ बुलवाया और कहा कि 'मैंने अज्ञान से आज तक आपका बहुत बड़ा अपराध किया है, इसके लिये दया करके आप मुझ को क्षमा करिये और मेरा यह सब राज्य स्वीकार करिये ।'

वैद्यराज विक्रमचरित्र ने कहा कि 'हे राजन् ! मुझ को अब आप के राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है । मुझे केवल अपने माता-पिता

× सत्पक्षा ऋजवः शुद्धाः सकला गुणसेविनः ।
तुल्यैरपि गुणैश्चित्रं सन्तः सन्तः शराः शराः ॥ २९४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से मिलने की ही प्रबल इच्छा है।'

"विद्वानों ने अपने कुल को पवित्र करने वाले तथा शोक से रक्षण करने वाले कों ही सच्चा पुत्र कहा है।"*

तीर्थों में स्नान, दान आदि करने से केवल पुण्य का ही लाभ होता है। परन्तु माता पिता की सेवा से प्रयत्न बिना ही धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति होजाती है। जननी का स्नेह रूपी वृक्ष प्राप्त करने से यह वृक्ष बिना मूलक होने पर भी सदा अनिर्वचनीय फल देता रहता है।

विक्रमचरित्र का पत्नी के साथ रवाना होना

राजा कनकसेन ने विक्रमचरित्र को मुक्ताफल, मणि, सुवर्ण तथा घोडे आदि देकर अपनी पुत्री तथा जामाता को बिदा किया। विक्रमचरित्र अपने श्वसुर आदि को प्रणाम कर के अपनी प्रिया के साथ हर्षपूर्वक समुद्र मार्ग से रवाना हुआ। रास्ते में भीम कनकश्री के शरीर की शोभा देखकर आश्चर्य चकित होगया और छल से उसको प्राप्त करने के लिये विचार करने लगा। विषय अधम पुरुष को अपने अधीन कर लेता हैं। सत्पुरुष को नहीं। चमडे की डोरी मशक को ही बाँध सकती है, हाथी को नहीं। एक दफा भीम वाहन के किनारे खडा होकर कपट पूर्वक कहने लगा कि 'हे वैद्यराज! इधर समुद्र में

* पुनाति त्रायते चैव कुलं स्वं योऽत्र शोकतः।
एतत्पुत्रस्य पुत्रत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥२९८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कौतुक देखे। देखो, यह अत्यन्त सुन्दर शरीर की कान्तिवाला चतुर्मुख मत्स्य आ रहा है तथा इधर लाल कान्तिवाला आठ मुख का मगर आ रहा है।

भीमका विक्रमचरित्र को समुद्र में गिराना

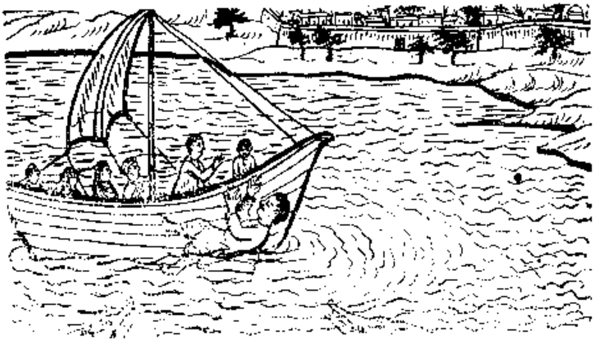

यह सुनकर जब विक्रमचरित्र शीघ्रता व आतुरता से देखने के लिये उद्यत हुआ तब दुष्टात्मा भीमने बलपूर्वक धक्का देकर उसे समुद्र में फेंक दिया। समुद्र में गिरते ही विक्रमचरित्र को एक मगर निगल गया।

मगर द्वारा निकलना

धीरे धीरे वह मगर समुद्र की तरंगों से प्रेरित होकर समुद्र तटपर चला गया। जहाँ धीवरों ने उसे पकड़कर समुद्र के बाहर निकाला। जब उस मगर के उदर को धीवरों ने चीरा तब उस में से एक अत्यन्त सुन्दर मनुष्य निकला। कहा भी है कि--

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"वन में, युद्ध में, शत्रु, जल तथा अग्नि के बीच में पर्वत के शिखर पर, सोये हुए को, अत्यन्त पागल बने हुए को अथवा दुःख में पडे हुए व्यक्ति को अपना पूर्व में किया हुआ पुण्य ही रक्षा करता है।" ÷

जब विक्रमचरित्र मगर के पेट से जीवित निकल गया और होशमें आया तो विचार ने लगा कि वास्तव में भाग्य बड़ा बल्वान् है। क्यों कि भाग्य ने प्रथम दोनों नेत्र ले लिये। पुनः औषध प्रयोग से दोनों नेत्र दे दिये। फिर राजकन्या तथा धन दिया। फिर मुझ को समुद्र में गिरा दिया और पुनः समुद्र से जीवित ही बाहर निकाला। अतः पुनः अपना भाग्य अजमाने के लिये वह निकल पडा।

अवन्तीपुरी तक पहुंचना

विक्रमचरित्र नगर तथा ग्राम आदि में फिरता हुआ कुछ समय में अवन्ती पुरी के समीप आ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर वह मन में विचारने लगा कि अभी मैं ऐसी अवस्था में अपने माता-पिता से कैसे मिलूँ। बिना लक्ष्मी के कोई भी मनुष्य कहीं भी शोभा नहीं पाता। जिस के पास धन है, वही व्यक्ति कुलीन, पंडित, शास्त्रज्ञ, गुणज्ञ, वक्ता तथा माननीय होता है। सब गुण काञ्चन का ही आश्रय ग्रहण करते हैं।

छिप कर रहना

इसलिये जब तक मेरे कनकपुर से आते हुए सभी जहाज नहीं

÷वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥३१३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आते हैं तब तक किसी के घर में रहकर समय बिताना ही उचित है। इसीप्रकार सोच विचार कर के बुद्धिमान् विक्रमचरित्र किसी माली के घर में जाकर अपने जहाज आदि के आनेकी प्रतीक्षा करता हुआ रहने लगा।

भीम का कपट

इधर विक्रमचरित्र के समुद्र में गिरते ही भीम कपट करता हुआ रोने लगा तथा चिल्लाया कि हाय, हाय! यह क्या होगया। मेरे स्वामी इस समय मत्स्य को देखते हुए समुद्र में गिर गये। अरे कोई दौडो, समुद्र में प्रवेश करो, तथा गिरे हुए मेरे स्वामी को शीघ्र ही समुद्र में से निकालो। अब मैं अपने स्वामी के बिना कैसे रहुँगा। इत्यादि अनेक प्रकार से कपट पूर्वक रुदन करता हुआ दूसरों को भी रुलाने लगा। लोभ ही पाप का मूल है। जीभका रसास्वाद व्याधि का मूल है। स्नेह दुःख का मूल है। मनुष्य इन तीनों का त्याग करे, तो सुखी हो सकता है। लोग लोभ के कारण इस प्रकार की माया करते है, कि जिसको ब्रह्मा भी अपनी बुद्धि से नहीं जान सकते। दुर्जन व्यक्ति ऊपर से रोते है तथा अंदर से हँसते है। तथा वे जाति से विशुद्ध एवं निर्मल वस्तु में भी छिद्र बनाते है। परन्तु सज्जन व्यक्ति गुण की प्रशंसा करते है तथा छिद्र को बन्द कर देते हैं। खल और सज्जन व्यक्ति सुई के अग्र और पिछले भागों का अनुकरण करते हैं। अर्थात् खल छिद्र करने वाले होते है और सज्जन छिद्र पूरक होते है।

जब कनकश्री ने अपने स्वामी को समुद्र में गिरा हुआ सुना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो वह रोते रोते दूसरों को भी रुलाने लगी। लोग भीम को समझाने लगे कि तुम क्यों बार बार रोते हो। अपने कर्म से कोई देव भी छुटकारा नहीं पाते। क्यों कि पूर्व में जो कर्म किया होता है, उसका कोटि कल्प बीत जाने पर भी क्षय नहीं होता। इसलिये अपने किये हुए शुभाशुभ कर्म का फल भोगना ही पड़ता है।

घर पहुंचना

भीमने कुछ देर बाद माया करके पुनः सेवकों से कहा कि 'जहाज शीघ्र चलाओ। अब मैं अपने नगर को जाऊँगा।' सब मनुष्यों को द्रव्यादि का दान देकर सम्मानित किया और वह दुष्टबुद्धि भीम एकान्त में कनकश्री के समीप जाकर बोला कि 'तुम अपने मनमें कुछ दुःख न करो। मैं सतत तुम्हारे सब मनोरथों को पूरा करूँगा।' यह बात सुनकर कनकश्री मूर्च्छित हो गई तथा शीतोपचार के अनन्तर पुनः सचेतन हुई। इसके बाद कहने लगी कि 'यदि अब फिर से तुम ऐसा बोलोगे तो मैं प्राणत्याग कर दूँगी। इस जन्म में मेरा यही वैद्यराज ही स्वामी हो सकता है अथवा अग्नि ही शरण है। यदि तुम बलात्कार करोगे तो समझो कि तुम्हारा अमंगल हो गया। अन्यथा इन वाहनों का सब धन तुम्हारा होगा।

भीम अपने मन में सोचने लगा कि नगर में जब यह मेरे अच्छे अच्छे घरों को देखेगी तब मेरी सब बातें मान जायगी। यह विचार कर पुनः बोला कि 'जो तुम बोलोगी वही होगा।' इसके बाद जहाज क्रमशः अवन्ती के समीप आ पहुँचा तथा सब वस्तुयें उतारी गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवन्ती नगरी में पहुंचकर भीम जहाज की सब वस्तुओं को शकटों द्वारा शीघ्र ही अपने घर ले आया तथा एक पृथक् घर में कनकश्री को अपनी स्त्री बनाने की इच्छा से हर्ष पूर्वक रखी। अपने पुत्र को इतने धन और कन्या के साथ आया हुआ देखकर भीमका पिता सूर्यको देखकर कमल प्रसन्न होता है, उसी प्रकार प्रसन्न हुआ। उधर भीम कृत्याकृत्य का विचार छोड़कर उस धन में मोहित होकर उस कन्या से विवाह करने के लिये उपाय सोचने लगा। कहा भी है कि "जैसे जन्मान्ध व्यक्ति नहीं देखता वैसे ही कामान्ध व्यक्ति भी कुछ नहीं देखता, मदोन्मत्त भी नहीं देखता और स्वार्थी व्यक्ति दोषों को नहीं देखता। कामदेव क्षण में ही कला कुशल को भी विकल कर देता है, पवित्र व्यक्ति को भी हास्य का पात्र बनादेता है, पण्डित को तिरस्कृत करता है तथा धीर पुरुष को भी नीचे गिरादेता है।"

इतने समय तक अपने पति को घर आते न देखकर तथा उसे परदेश में कहीं खोया हुआ या मृत समझ कर शुभमती और रूपमती दोनों अत्यन्त दुःखी होकर राजा विक्रमादित्य से काष्ठभक्षण की याचना करने लगी।

उन्हें समझाने के लिए राजा कहने लगा कि 'हे पुत्रवधू! कुछ समय तक और प्रतीक्षा करो। कदाचित् मेरे और तुमारे पुण्य के उदय से मेरा पुत्र आ जाय, अथवा किसी के मुखसे सम्भव है उसका समाचार मिल जाय। इसप्रकार बार बार समझा कर उसने अपनी दोनों पुत्रवधुओं को रोका। परन्तु वे दोनों राजा से विनय पूर्वक सतत काष्ठ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भक्षण की याचना करती ही रहती थी।

कई दिनों बाद सोमदन्त अपने नगर में पहुँचा उसने तो विक्रमचरित्र का सब समाचार राजा को कह सुनाया। पुत्र के अंधे होने का समाचार सुन कर राजा अत्यन्त दुःखी हुआ। वह हमेशा दूरसे आये हुए लोगों को सतत अपने पुत्र के विषय में पूछता रहता था। राजा को काफी समय तक अपने पुत्र का कोई भी समाचार न मिला तो वह सोचने लगा कि पुत्र के बिना मेरे प्राण रहने से क्या लाभ ?

राजा का ज्योतिषी को विक्रमचरित्र के आने के बारे में पूछना

इसके बाद एकदा विक्रमादित्य ने अपने मंत्रियों से विचार विनिमय कर के एक दैवज्ञ—ज्योतिषी को बुलाया और उसे अपने पुत्र के आगमन के विषय में पूछा।

ज्योतिषी अपने निमित्त को अच्छी तरह देखने के बाद कहने लगा कि 'हे राजन्! आपका पुत्र आज प्रातःकाल अथवा परसों नेत्रों से सज्जित होकर आ जायगा। इस समय का लग्न यही कह रहा है। जहाँ तक हो, आपका पुत्र इस नगर में भी आ गया है। इसलिये आप अपने मनमें कुछ भी दुःख न करें।'

नगर में घोषणा

यह सुनते ही राजाने प्रसन्न होकर अपने मंत्रियों से विचार करके नगर में सब जगह पटह बजवाया कि "जो कोई राजपुत्र का आगमन कहेगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसको राजा शीघ्र ही अपना आधा राज्य देंगे" । राजा की आज्ञा के अनुसार राजा के सेवकों ने नगर में स्थान स्थान पर पटह बजाकर घोषणा कर दी ।

अवन्तीपुर का हाल

पटह की घोषणा सुन कर मालिन को विक्रमचरित्र ने पूछा कि 'यह पटह क्यों बज रहा है और नगर के और कोई समाचार भी हैं क्या ? तब मालिन कहने लगी कि 'राजा अपने पुत्र को खोजने के लिये अपने सेवकों द्वारा नगर में पटह बजवा रहा है तथा वीर श्रेष्ठी का पुत्र भीम कल दूर देशसे आया है । वह अपने साथ स्वर्ण, रत्न आदि बहुत सी वस्तुयें लाया है । तथा मनोहर दिव्य शरीर वाली एक कन्या भी लाया है और उसने उस कन्या को अपने घर के समीप एक अलग घर में अपनी पत्नी बनाने के हेतु से रखी है ।' तब विक्रमचरित्र ने मालिन से पूछा कि 'क्या तुम वहाँ जाओगी ?।' मालिन ने उत्तर में कहा कि 'हम लोगों की सर्वत्र गति रहती है । वणिजों की, वेश्याओं की, मालिकाओं की, मनस्वी व्यक्तियों की, गूढ पुरुषों की, तथा चोरों की सर्वत्र गति रहती है ।'

इसके बाद विक्रमचरित्र ने एकान्त में जाकर फूल के पत्तों पर अच्छे श्लोकों को लिखकर उस मालिन को दिया तथा उसे कुछ आभूषण देकर खुश करदी फिर कहा कि 'हे मालिन ! यह उस स्त्री को एकान्त में दे देना तथा वह जो कुछ बोले वह सुन कर यहाँ चली आना ।'

कनकश्री को समाचार मिलना व पटह स्पर्श

इसके बाद वह मालिन वहाँ गई और उसको कुमार का दिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुआ वह फूल दे दिया। उस कन्या ने फूल के पत्ते पर लिखे हुए श्लोको कों देखा और आश्चर्यान्वित हो गई। वह उसे पढने लगी तो उसमें लिखा था कि जिस वैद्यने चूर्ण के योग से कनकश्री को देखने वाली बनादी, जिसने अनायास अपने सब शत्रुओं को अपने अधीन किया, जिसने अपना नाम पता पहले राजा को नहीं बताया परन्तु प्रस्थान करने के समय अपनी पत्नी द्वारा सब कुछ कहलाया, दिव्य सुवर्ण, मणि, चांदी आदि से से भरे वाहनों को समुद्र में लेकर रवाना हुआ तथा वाहन के चलने पर जो समुद्र में गिर गया, वह तुम्हारा पति भाग्य संयोग से समुद्रसे निकला और इस समय इसी नगर में धीर नाम के मालाकार के घर में वास करता हुआ सुखपूर्वक समय विता रहा है। इसलिये हे प्रिये! तुम अभी पटह का स्पर्श करके तथा वस्त्रान्तरित होकर राजा को सब समाचार कहदो। इन श्लोकोंसे अपने स्वामी का सब हाल जानकर कनकश्री ने उस मालिन को सम्मानित किया और स्वयं राजा के सेवकों द्वारा बजाये जाते हुए पटह का स्पर्श करलिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेवकों द्वारा पटह स्पर्श का समाचार सुन कर महाराजा विक्रमादित्य भीम श्रेष्ठी के घर पर गये और वस्त्र से अन्तरित उस कनकश्री से पूछा कि 'हे पुत्रि ! मेरा पुत्र इस समय कहाँ है सो सब मुझे कहो !'

राजा और विक्रमचरित्र का मीलन

तब कनकश्री अपने स्वामी का सब समाचार सुनाने लगी। यहाँतक कि विक्रमचरित्र के अवन्तीपुर में पहुँचने तक का विस्तार पूर्वक सब समाचार सुनादिया। केवल वह स्वयं कौन है, वही नही कहा। कनकश्री के मुख से अपने पुत्र का समाचार सुनते हुए राजा अपने मन में सोचने लगा कि " क्या यह विद्याधरी, देवांगना, अथवा ज्ञानवती मेरे उपर कृपा करके सुखदेनेवाले मेरे पुत्र के समाचार कहने के लिये आई है ?।" राजा विक्रमादित्य अपने पुत्र की स्थिति तथा स्थान जान कर वहाँ से उठकर माली के घर पर पहुंचे। विक्रमचरित्र अपने पिताको आया हुआ देखकर सन्मुख आया और अपने पिता के चरणकमलों में भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। ठीक ही कहा है कि " वही सच्चा पुत्र है जो पिता का भक्त हो और वही पिता है जो प्रजाका पोषक हो। जहाँ विश्वास हो, वही मित्र है और वही स्त्री है जिससे सुख मिले। उपाध्याय से आचार्य दश गुण अधिक है। आचार्य से पिता सौगुणा अधिक है तथा पिता से माता सहस्रगुण अधिक है। यह न्यूनाधिक भाव परस्पर गौरव के आधिक्य से है। पशुओं के लिये मा दूध पीने के समय तक ही माता है, अधमों के लिये स्त्री प्राप्ति पर्यन्त ही माता रहती है, और मध्यम व्यक्तियों के लिये जबतक गृहकार्य में समर्थ हो, तब तक ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माता है परन्तु उत्तम व्यक्तियों के लिये तो माता जीवन पर्यन्त तीर्थ के समान होती है।"

विक्रमचरित्र को महल पर ले जाना

राजा विक्रमादित्य प्रसन्नचित्त होकर अपने पुत्रको उत्सव के साथ अपने राजमहल में ले आया। विक्रमचरित्र ने प्रथम अपनी माता को प्रणाम किया। फिर शुभमती और रूपवती को मिला, उनको अपने स्वामी को देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। कहा भी है कि 'चक्रवाक सूर्य को, चकोर चन्द्रमा को, मयूर मेघ को, शूर विजय को, सती पतिव्रता अपने पति को, समुद्र चन्द्रमा को तथा माता पुत्र को देखकर अत्यन्त हर्ष प्राप्त करते हैं।'

फिर राजाने अपने पुत्र से कहाकि 'जिस स्त्रीने तुम्हारा सब समाचार बतलाया, उसको आधा राज्य किस प्रकार दिया जाय। तब विक्रमचरित्र ने बतलाया कि 'वह तो वही कनकश्री है जिसके साथ मैंने लग्न किया है।' यह सुन कर राजा ने कहा कि 'भीम को मारकर उसका सब धन ले लेंगे। क्यों कि यह अत्यन्त निर्दय है तथा पापिष्ठ और दुष्ट है।' क्यों कि:—

दुर्जन का दमन करना, सज्जन का पालन करना, आश्रित का पोषण करना, असल में यही सब राजचिह्न हैं। अभिषेक (जलसे सिञ्चन करना), पट्टबन्ध (पट्टी बाँधना) और चामर (हवा करना) यह सब तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्रण (घाव) को भी किया जाता है । !+

भीम को बांधना

इसके बाद राजाने भीम के घर पर सील लगवा दी तथा उसको बँधकर महल में मंगवाया । कहा भी है कि 'दौर्भाग्य, नौकरी, दासता, अंगच्छेद, दरिद्रता, ये सब चोरी का फल है। इसलिये चोरी नहीं करनी चाहिये । चौर्यरूपी पापवृक्ष का फल इस लोक में भी वध, बन्धन आदि के रूप में मिलता है तथा पर लोक में भी नरकवेदना आदि भोगनी पड़ती है। जो किसी प्राणी को विश्वास देकर द्रोह करते हैं, उनको इस लोक में तथा परलोक में निरन्तर महाकष्ट भोगना पड़ता है। अत्यन्त शत्रुता करना, इस लोक और परलोक से जो विरुद्ध हो, उसे नहीं करना चाहिए और पर स्त्री गमन त्याग देना चाहिये, क्यों कि पर स्त्री गमन करने वाला—सर्वस्व हरण, बन्धन, शरीर के अवयव का छेदन तथा मरने पर घोर नरक प्राप्त करता है ।

विक्रमचरित्र का भीम को छुडाना व सोमदन्त का आदर

भीम को इसप्रकार कष्ट में देख कर विक्रमचरित्र ने राजा से कहा कि 'हे तात! इस को छोड़ दीजिये । अब इसे अधिक देर बंधन में न रखें, क्यों कि यह मेरी स्त्री और धन को यहाँ तक सुखपूर्वक ले आया है।' इसप्रकार कह कर विक्रमचरित्र ने भीम को बन्धन से

+ शठदमनमशठपालनमाश्रितभरणं च राजचिह्नानि।
अभिषेकपट्टबन्धो बालव्यजनं व्रणस्यापि ॥२९४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छुड़ाया तथा राजा से सम्मानित कराया। उधर राजाने अपनी पुत्रवधू कनकश्री को और उस के लाये हुए सब धन को अत्यन्त उत्सव के साथ अपने आवास स्थान पर मंगवाया तथा अपने पुत्र का धन और बहादुरी देखकर राजा ने नगर में सब जगह नृत्य, गीत, उत्सव आदि कराये।

विक्रमचरित्र अपनी तीनों पत्नियों से युक्त होकर आनंद से रहने लगा। सोमदन्त को भी विक्रमचरित्र ने बुलाकर हर्षपूर्वक अपने पिता से बहुत धन दिलाया, तथा अपने हृदय में सोमदन्त के प्रति कुछ भी द्वेष भाव नहीं रखा। क्यों कि उत्तम व्यक्ति दूसरों पर स्नेह रखने वाले होते हैं और अत्यन्त पराभव पाने पर भी हृदय में कुछ द्वेष नहीं रखते। बाँस को लोग काटते हैं, चीरते हैं और उस में छिद्र करते हैं परन्तु फिर भी वह बाँस (बंसरी) के रूप में रह कर मधुर ही बोलता है।

महाराजा विक्रमादित्य विक्रमचरित्र जैसे गुणवान् पुत्र से युक्त होकर सतत न्यायपूर्वक पृथिवी का पालन करने लगा। उसने ध्वजा, तोरण, नृत्य गीत आदि सहित अष्टान्हिका–महोत्सवपूर्वक पूजा व प्रभावना करवाई। जो पुरुष श्रेष्ठ उद्योगी होते हैं, वे लक्ष्मी को अवश्य प्राप्त करते हैं। भाग्य में होगा तो मिलेगा ऐसी बात कापुरुष ही बोलते हैं। दैव–नसीब को छोड़कर अपने आत्म बल से पुरुषार्थ करना चाहिये। यत्न करने पर यदि फल नहीं मिले तो इस में क्या दोष !। फिर तो विक्रमचरित्र पूर्ववत् अपने मित्र सोमदन्त का सम्मान करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगा और अपने उपार्जित धन को सतत पुण्य कर्मों में व्यय करके सफल करने लगा।

काजल तजे न श्यामता, मोती तजे न श्वेत;
दुर्जन तजे न कुटिलता, सज्जन तजे न हेत॥

उपसंहार

प्रिय वाचकगण! आपने इस प्रकरण में महाराजा के गर्व का खंडन व अति बलिष्ठ कृषिकार का चरित्र पढा। जिस से आप को आश्चर्य हुआ। बाद में भील-भीलडी की मृत्यु और उनका दूसरा जन्म जो कि जगत के जीवों के लिये बोधदायक घटनारूप है। मित्र सोमदन्त कपट करके विक्रमचरित्र को आपत्ति में रखता है वह भी पुण्यशाली राजकुमार को फायदाकारक हो जाता है और भारण्ड पक्षी का मिलन, उस की विष्टा की गुटिका ए सभी बातें कुतूहल प्रिय राजकुमार को सचमुच ही कुतूहल उत्पन्न करती हैं, बाद में दो व्यक्तियों को जीवनदान देना यह भी राजकुमार के जीवन में रोमांचक बात है, वहाँ से फीर कनकश्री, भीम और महाराजा विक्रमादित्य और राजकुमार का मिलन ए सभी बाते पाठकगण में हर्ष उपजाकर विक्रमचरित्र के उद्देश्य को परिपूर्ण बनाती हुई यह प्रकरण खतम करती है।

वैसे ही अगला प्रकरण भी आप लोगों को आश्चर्यमुग्ध बनायगा। परमोपकारी आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्रमादित्य महाराजा को आश्चर्यकारक लिङ्गभेदन द्वारा अवन्ती—पार्श्वनाथ को प्रगट कर के जनता में मन्त्र, तन्त्रादि स्तोत्र स्तुति आदि की श्रद्धा उपजाने वाली ये सभी बाते पाठक महाशयों को विचार के कमल में गरकाव करती हुई आत्मशक्ति समर्पण करती है।

इति षष्ठः सर्गः ॥

तपागच्छीय–नानाग्रन्थरचयिता–कृष्णसरस्वतीबिरुद–धारक–परमपूज्य–आचार्यश्री–मुनिसुंदरसूरीश्वरशिष्य–गणिवर्य–श्रीशुभशीलगणि-विरचिते श्रीविक्रमचरिते

षष्ठः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक–आबालब्रह्मचारि–शासनसम्राट्–श्रीमद्‌विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य–कविरत्न–शास्त्रविशारद–पीयूषपाणि–जैनाचार्य–श्रीमद्‌विजयामृतसूरीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष–मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविजयेन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानुवादः, तस्य च षष्ठः सर्गः समाप्तः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

॥ अथ सप्तम सर्गः ॥

प्रकरण इकतीसवाँ

अवन्ती पार्श्वनाथ व सिद्धसेन दिवाकर

कर भक्ति जिनराजकी कर परमार्थ काम;
कर सुकृत जगमें सदा रहे अविचल नाम ॥

सिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी का चमत्कार

श्री सिद्धसेनसूरीश्वरजी बारह वर्ष तक अवधूत वेष से अनेक देशों में भ्रमण करते हुए, राजा विक्रमादित्य को मिथ्यात्व से ग्रसित सुन कर उसे बोध देने के लिये एक दिन मालव देश में गये। उज्जयिनी नगरी के महाकाल मंदिर में जाकर राजा को बोध करनेकी इच्छा से अवधूत वेष में ही लिङ्ग के सामने अपने दोनों पैरों को फैला के सो गये। इन्हें इस प्रकार सोये हुए देखकर मंदिर के पूजारी ने कहा कि 'हे सोने वाले! आप यहाँ से उठ जायँ, इस प्रकार देव के आगे नहीं सोना चाहिये।' इस प्रकार बार बार कहने पर भी जब वह नहीं उठे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो पूजारीने राजा के समीप जाकर शिकायत कर दी कि "हे राजन्! आज एक अवधूत वेषधारी पुरुष मन्दिर में आया है जो अपने दोनों पैरों को महादेव के लिङ्ग की ओर कर के सो गया है।"

राजा का आदेश

राजाने कहा कि 'यदि ठीक से कहने पर भी नहीं उठता है तो चाबुक मार कर उस को वहाँ से दूर करो।'

राजा की आज्ञा सुन कर उस अवधूत को चाबुक से मारा गया। किन्तु आश्चर्यकारक घटना हुई कि वह मार अन्तःपुर की रानीयों को लगती थी। राजाने यह बात अन्तःपुर की दासियों द्वारा जानी और शीघ्र महाकाल मंदिर में आया। वहाँ आकर अवधूत से कहा कि 'आप कल्याण और मोक्ष को देने वाले शिवजी की स्तुति करें। लोग देवों की स्तुति करते हैं अनादर नहीं।'

सूरिजी ने उत्तर दिया कि 'हे राजन्! महादेव मेरी स्तुति सहन नहीं कर सकेंगे।'

तब राजा ने पुनः कहा कि 'आप स्तुति तो करिये महादेव अवश्य सह सकेंगे।'

स्तुति के लिये राजा का वारंवार आग्रह

सूरिजीने कहा कि 'मेरी स्तुति से यदि देव को कोई विघ्न बाधायें होने लगें तो मुझ को दोष नहीं देना।' इतना समझाने पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

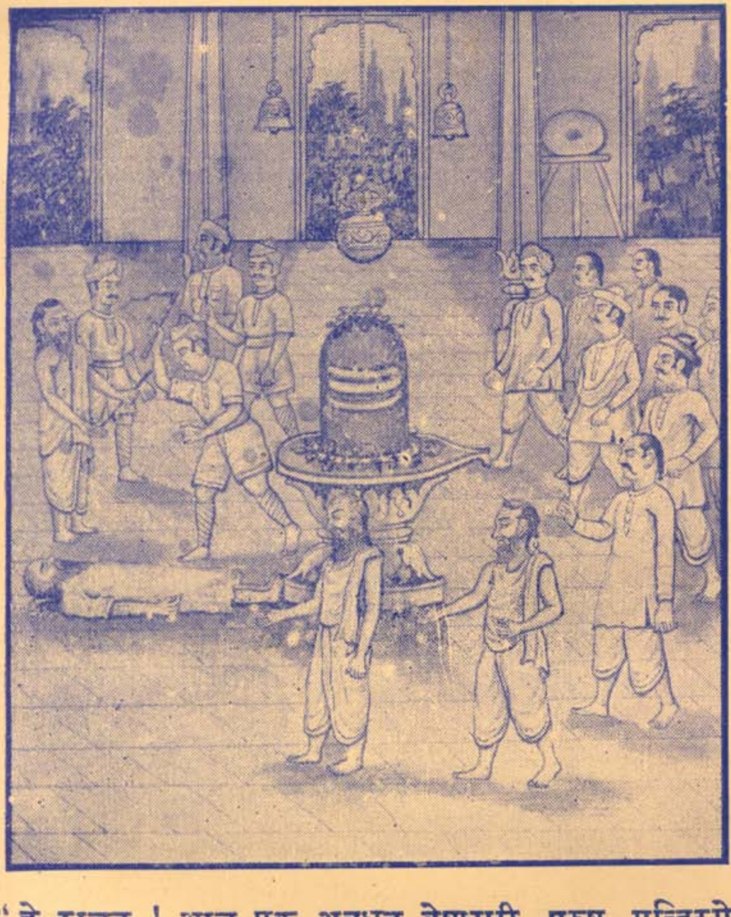

"हे राजन् ! आज एक अवधूत वेषधारी पुरुष मन्दिरमें आया है जो अपने दोनों पैरों को महादेवके लिङ्गकी ओर करके सो गया है।"

[मु. नि. वि. सं. पृ. ३७६ विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस समय महाकालका लिङ्ग धीरे २ भेदन होने लगा और लिङ्गमेंसे धूँआ निकलने लगा, थोडी ही देरमें भेदित लिङ्गमेंसे श्रीपार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा प्रकट होती हुई दिखाई देने लगी।

[मु. नि. वि. सं. पृ. ३७७ विक्रमचरित्र]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री जब राजाने स्तुति के लिये आग्रह किया तो सूरिजी ने अवधूत के ही रूप में खड़े होकर 'बत्तीस द्वात्रिंशिका' से श्री महावीर स्वामीजी की स्तुति की। स्तुति करते हुए जब इन्होंने देखा कि श्री महावीर नहीं प्रगट हो रहें हैं तो श्री पार्श्वनाथ प्रभु की स्तुति की। **कल्याणमंदिर-स्तोत्र में "क्रोधस्त्वया[१]"** इत्यादि शब्दों से गर्भित काव्य जब इन्हों ने बनाया तब उस समय महाकाल का लिङ्ग धीरे धीरे भेदन होने लगा और लिङ्गमें से धूँआ निकलने लगा, थोडी ही देर में भेदित लिङ्गमें से श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा प्रकट होती हुई दिखाई देने लगी।

लिङ्गभेदन और श्रीपार्श्वनाथ का प्रगट होना

श्री पार्श्वनाथ की प्रकट प्रतिमा को देख कर श्री सिद्धसेनसूरिजीने कहा कि 'यह देव ही मेरी अद्भुत स्तुति को सहन करते हैं।'

राजा ने पूछा कि "हे भगवन्! आप कौन हैं? और यह

१कोई आचार्य कहते हैं कि:—

स्वयंभुवं भूतसहस्रनेत्रमनेकमेकाक्षरभावलिङ्गम्।
अव्यक्तमव्याहतविश्वलोकमनादिमिथ्यान्तमपुण्यपापम् ॥१७॥

"स्वयंभू, प्राणियों में सहस्र नेत्रवाले, एकाक्षर भावस्वरूप, अव्यक्त, समस्त लोक में अव्याहत, आदि-अन्त रहित, तथा जिन में पुण्य—पाप नहीं है ऐसे आप को मैं बार बार प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार श्लोक पढ़ते ही देवों से प्रार्थित जिनेश्वर श्री पार्श्वनाथ लिङ्ग को भेदन कर के बहार निकले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्ष हुए देव कौन हैं ?"

अवधूत ने कहा कि 'सूरियों में अग्रगण्य वृद्धवादि सूरि का मैं सिद्धसेन नामक शिष्य हूँ। किसी कारणवश बाहर निकला हूँ। अनेक देशों में भ्रमण करता हुआ आज इस नगर में आया हूँ। हे राजन्! मेरी और आपकी प्रथम मुलाकात हो चुकी है, मैंने पहली मुलाकात में आपको यह श्लोक भेजा था:—

भिक्षुर्दिदृक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारि वारितः।
हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः किं वाऽऽगच्छतु गच्छतु ॥२१॥

इस प्रकार के दूसरे चार श्लोकों के द्वारा पहले आप का और मेरा राजसभा में परिचय हो चुका है और यह जो देव प्रत्यक्ष हुए हैं वह देवों के समूह से पूजित श्री पार्श्वनाथजी हैं।'

सूरिजी की बात सुन कर आश्चर्य चकित होकर राजा कहने लगे कि 'इस महादेवके मंदिर में सर्वज्ञ पार्श्वनाथ कैसे प्रकट हो गये ?'

श्री अवन्ती पार्श्वनाथ का इतिहास

महाराजा को श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजीने कहा कि "हे राजन् ! इस मंदिर का पुरा इतिहास सावधान मनसे सुनो—पहेले इस अवन्ती नगर में अत्यन्त धनवान् तथा यशस्वी एक 'भद्र' नामका श्रेष्ठी रहता था। शील आदि गुणोंसे युक्त 'भद्रा' नामकी इसकी पत्नी थी। उसका 'अवन्तीसुकुमार' नामक पुत्र था, जो रूपं में देवोंसे भी बढ़कर था। इसने नलिनीगुल्म विमान का ध्यान श्री आर्यसुहस्ति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूरीश्वरजी की वाणीसे सुना । विचार करते करते इस को अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। अपने पूर्व जन्मका हाल जानकर यह सूरीश्वरजी के पास गया और पूछा कि 'क्या आप नलिनीगुल्म विमानसे यहाँ आये हैं ?'

सूरिजीने उत्तर दिया कि 'मैं शास्त्र बलसे उस विमान की यथार्थ स्थिति जानता हूँ ।'

भद्रापुत्रने पुनः कहा कि 'आप नलिनीगुल्म के सुखको समझाइये । इसके उत्कर्ष सुख के बिना मैं अपनी जिन्दगी व्यर्थ समझता हूँ । इस विमानकी प्राप्तिका मार्ग बताइये ।'

सूरिजी ने कहा कि 'नलिनीगुल्म विमान की प्राप्ति दीक्षा के बिना कभी भी संभवित नहीं है ।'

भद्रापुत्रने कहा कि 'हे गुरुदेव! आप मुझको शीघ्र ही दीक्षा दीजिये ।'

सूरिजीने कहा कि 'मैं तुमको अभी दीक्षा नहीं दे सकता । तुम अपने माता–पितासे पूछ कर आज्ञा लेकर दीक्षा लो ।'

भद्रापुत्र की स्वयं दीक्षा

भद्रासुतने इस प्रकार सूरिजी से बातकर बाहर उद्यान में जाकर स्वयं दीक्षा ले ली और योगीके समान शरीरका त्याग करने के लिये नलिनीगुल्म विमान का ध्यान करता हुआ बैठ गया। वह इस प्रकार ध्यान में लीन था उस समय उसकी पूर्व जन्मकी स्त्री जो इस जन्म में शृगाल जाति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में उत्पन्न हुई थी, देव योग से वह इसके पास आई । वहाँ आकर अत्यन्त क्रुद्ध हुई तथा मुनिवेषधारी अवन्ती सुकुमार को अनेक प्रकार से उपसर्ग करके परेशान किया और इस के शरीर के अवयवों को भी छिन्न भिन्न कर भक्ष किया। भद्रासुतने शुभध्यान करते हुए रात्रि में अपना शरीर छोड़ दिया और निष्पाप होकर नलिनीगुल्म विमान में देव हो गया।

प्रातःकाल भद्रशेठ सूरिजी को पूछ कर जब बाहर उद्यान में गये तो वहाँ अपने पुत्र को सियाली के काटने से मरा हुआ देखा और बाद उस के देह को अग्नि संस्कार कर दिया। प्रातःकाल में अपने ज्ञानी सूरिजी से सुना कि वह नलिनीगुल्म विमान में गया है। यह सुन कर उन का शोक शांत हुआ, बाद में उस स्थान पर बहुत धन खर्च कर के श्री पार्श्वनाथ जिनेश्वर का अत्यन्त सुन्दर चैत्य बनवाया। उसका पृथिवी में महाकाल यह नाम प्रसिद्ध हुआ। कालक्रम से ब्राह्मणों ने वहाँ शिवलिंग स्थापित किया।

वीतराग भगवान का स्वरूप

वीतराग जिनेश्वर देव लोगों को मुक्ति देने वाले हैं और वे देव, दानव आदि का स्थान भी दे सकते हैं। क्यों कि:—

"अर्हन्, देव, परमेश्वर, सर्वज्ञ, रागादि दोषोंसे रहित, तीनों लोक में पूजित यथार्थ स्थिति को कहने वाले हैं।"*

* **सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।**
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥४२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष चाहने वालों को इन्हीं का ध्यान तथा उपासना करनी चाहिये। जो देव स्त्री, शस्त्र, माला आदि राग के चिह्नों से युक्त हैं तथा निग्रह तथा अनुग्रह करने वाले हैं वे मुक्ति नहीं दे सकते हैं। जो देव नाट्य, अट्टहास, संगीत आदि उपाधियों से परिपूर्ण हैं वे शरणागत प्राणियों को शान्ति कैसे दे सकते हैं ?।

जो महाव्रतधारी, धीर, भिक्षामात्र से जीने वाले, सामायिक में रहने वाले तथा धर्मोपदेशक हैं वेही सज्जनों से मान्य गुरु हैं। परंतु जो सभी वस्तुओंकी अभिलाषा करने वाले हैं, सर्व भक्षी हैं, परिग्रह से युक्त हैं, ब्रह्मचर्य व्रत को पालने वाले नहीं हैं, मिथ्या उपदेश देने वाले हैं वे वास्तव में गुरु नहीं हैं। जो संग्रह और पापादि लीला में लीन हैं वे औरों को कैसे तार सकते हैं ? जैसे जो स्वयं दरिद्र है वह अन्य को धनी कैसे बनासकता है। धनुष, दंड, चक्र, तलवार, त्रिशूल आदि शस्त्रों के धारण करने वाले ऐसे हिंसक देवों को लोग देवता बुद्धिसे पूजते हैं यह बड़े कष्ट की बात है।

"जहां गंगा नहीं, सर्प नहीं, मस्तक—खोपरी की माला नहीं। जहां चन्द्र की कला नहीं, पार्वतीजी नहीं, जटा और भस्म नहीं तथा अन्य कोई भी वस्तु नहीं इस प्रकार के पुरातन मुनियों से अनुभूत ईश्वर के रूप की उपासना हम लोग करते हैं।"*

* न स्वर्धुनी न फणिनो न कपालदाम,
नेन्दोः कला न गिरिजा न जटा न भस्म।
यत्रान्यदेव च न किंचिदुपास्महे तद्,
रूपं पुराणमुनिशीलितमीश्वरस्य ॥५०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार के उपयुक्त परमेश्वर ही योगियों के सेवनीय हैं। राज्य-सुख तथा उपभोग के लोभी लोग ही अन्य नवीन देवों की सेवा करते हैं। मिमांसा में भी कहा है कि:—

इतर शास्त्रों में वीतराग का स्वरूप

"वीतराग को स्मरण करता हुआ योगी वीतराग हो जाता है तथा सराग का ध्यान करने वाला योगी सराग हो जाता है। इस में कोई सन्देह नहीं।" +

क्यों कि यंत्रवाहक जिस जिंस भाव से युक्त होता है उस भाव से ही तन्मयता को प्राप्त करता है। जैसे दर्पण में जैसा भाव करेंगे वैसा ही देखेंगे।

श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी से कही गई इस प्रकार की धर्मकथा को सुन कर राजाने शीघ्र ही मिथ्यात्व का त्याग किया और जैन धर्मपर श्रद्धावान् होकर महाकाल मंदिर में जिनेश्वर श्री पार्श्वनाथ की प्रतिमाको पुनः स्थापन कराया। बाद में आदर पूर्वक इनकी पूजा करने लगा। पुजारियों को एक हजार गाँवोंका दान दिया और श्रावकों के बारह व्रतों से युक्त सम्यक्त्व का स्वीकार किया।

धर्मोपदेश द्वारा सूरिजी की दान धर्म की पुष्टि

किसी एक दिन सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी ने कहा कि 'हे राजन्! जिनेश्वरोंने लक्ष्मीका दान करना ही सबसे अच्छा धर्म कार्य कहा है।

+ **वीतरागं स्मरन् योगी वीतरागत्वमश्नुते।**
सरागं ध्यायतस्तस्य सरागत्वं तु निश्चितम् ॥५२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्यों कि दान करने से मुक्ति और सुख दोनों मिलते हैं। कारण कि दान करने से सर्वत्र व्यापिनी निर्मल कीर्ति फैलती है। जिसने दान नहीं किया उसका जीवन पानीके समान बह कर चला जाता है। श्री ऋषभदेवने पूर्व जन्म में धन सार्थवाह के भव में बहुत सा घी आदि का दान किया इसी कारण वे त्रैलोक्य के पितामह हो गये।

" जिन्हों ने जन्मान्तर में पुण्य किया है, जो सब प्राणियों पर दया करने वाले हैं तथा दीन को दान देने वाले हैं वे तीर्थंकर व चक्रवर्ती की ऋद्धि और सम्पत्ति के स्वामी श्री शान्तिनाथ प्रभु हुए हैं। " +

मरने के बाद जो दान दूसरों द्वारा दिया गया हो उस का फल मृत जीव को मिले या न मिले, इस का कोई निश्चय नहीं परंतु जो दान अपने हाथसे दिया जाता है वह अवश्य ही फल देनेवाला होता है इसमें अंश मात्र भी संदेह नहीं। कहा भी है कि:—

"दान देने से धनका नाश हो यह कभी नहीं सोचना चाहिये। क्योंकि कूप, आराम, गाय, इन सबका दानमें–उपयोग न करे तो सम्पत्ति का नाश होता है।" ÷

+ करुणाइ दिन्नदाण जम्मंतर गहिअ पुण्ण किरिआणं।
तित्थयरचक्किरिद्धि संपत्तो संतिनाहो वि ॥ ६० ॥

÷ मा मंस्था क्षीयते वित्तं दीयमानं कदाचन।
कूपारामगवादीनां ददतामेव सम्पदः ॥६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"सुपात्र को दान देने से धर्म की प्राप्ति होती है, सामान्य व्यक्ति को दान देने से दयालुता की प्राप्ति होती है, मित्रजन को दान देने से प्रेम की वृद्धि होती है, शत्रु को दान देने से वैरभाव नष्ट होता है, सेवक को दान देने से वह अपनी ज्यादा सेवा करता है, राजा को दान देने से सम्मान मिलता है और विद्वानों को दान करने से यश प्राप्त होता है। इस प्रकार दान कभी भी कहीं भी निष्फल नहीं होता।"*

श्री जिनेश्वर देव वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन याचकों को याचना के अनुसार सोना, चांदी आदि पदार्थों का दान करते हैं। इस प्रकार समस्त पृथिवी को ऋण रहित करके पश्चात् दीक्षा लेते हैं और क्रमशः कर्म के नाश होने पर वे मुक्ति को प्राप्त करते हैं। कहा है कि:—

"यदि लक्ष्मी स्वयं उपार्जित की गई है तो वह अपनी कन्या तुल्य है, यदि पिता द्वारा उपार्जित है तो भगिनी तुल्य है। यदि किसी अन्य से इसका सम्बंध है तो पर स्त्री है। इसलिये लक्ष्मी को त्याग करने की भावना जिन्हों के मनमें हैं वे श्रेष्ट बुद्धिवाले मनुष्य हैं।*

---

*पात्रे धर्मनिबन्धनं तदितरे प्रोद्यद् दयाख्यापकं,
मित्रे प्रीतिविवर्धनं रिपुजने वैरापहारक्षमम्।
भृत्ये भक्तिभरावहं नरपतौ सन्मानपूजाप्रदं,
भट्टादौ च यशस्करं वितरणं न क्वाप्यहो निष्फलम् ॥६३॥

* उत्पादिता स्वयमियं यदि तत्तनूजा,
तातेन वा यदि तदा भगिनी खलु श्रीः।
यद्यन्यसंगमवती च तदा परस्त्री-
स्तत्त्यागबद्धमनसः सुधियस्ततोऽमी ॥७०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दान, शील, तप, भाव इन भेदों से चार प्रकार के धर्म को करने वाले सांसारिक प्राणी मुक्ति और सुख को प्राप्त करते हैं। शंख राजा की पत्नी रूपवती के समान निरन्तर चतुर्विध दान करने वाले मनुष्य मुक्ति को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है--

दान धर्म की पुष्टि में शंख राजा की रानी रूपवती का उदाहरण

" शंखपुर नाम के नगर में बहुतसी सेनावाला तथा विद्वान् 'शंख' नामका राजा राज्य करता था। उस राजा को शील आदि गुणों से सम्पन्न अत्यन्त सुन्दरी प्राणप्रिय "रूपवती" आदि सात रानियाँ थी।

एक दिन किसी चोरने राजा के भंडार से मणियों से भरी पेटी उठाई और ज्योंही वह नगर के बाहर निकला कि सैनीकों ने पीछा करके उस को पकड़ लिया और राजा के समीप लाकर बड़ी निर्दयता से उस को मारा। राजाकी आज्ञा से राजपुरुष वध करने के लिये ले जा रहे थे, मार्ग में रानी रूपवती ने उस को पूछा। पूछने पर चोर दीनतापूर्ण वाणी से दया चाहने लगा। चोर की दीनतापूर्ण वाणी सुन कर रानी रूपवती उस के दुःख से अतीव दुःखी हुई और इस तरह विचार करने लगी।

"जिसका चित्त सब प्राणियोंपर दयासे द्रवीभूत हो जाता है उसको ही ज्ञान और मोक्ष मिलता है। जटा, भस्म और भगवे वस्त्र धारण करना व्यर्थ है। मतलब कि दया से रहित होकर भस्म आद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धारण करना व्यर्थ है।"×

इस के बाद रानी रूपवती राजा के समीप जाकर कहने लगी कि 'हे राजन्! यह चोर एक दिन के लिये मुझे सुपर्द कीजिये। जिससे अन्नपान आदि से इस को संतुष्ट करें और कल्याण तथा सुख देने वाली धर्मकथा इसे सुनावें। क्यों कि—छास से मख्खन, कादव से कमल, समुद्र से अमृत, वंश से मुक्तामणि निकलते हैं उसी तरह बुद्धिमानमनुष्य मनुष्य जन्म से ही धर्मरूप सार वस्तु को ग्रहण करता है। राजा से इस प्रकार कहकर रूपवती हर्षपूर्वक उस चोर को महल में ले आई और स्नान आदि करवाकर दया और सद्भाव पूर्वक उत्तम अन्नपानादि के द्वारा उस चोर का सन्मान किया।

इस प्रकार पृथक् पृथक् एक एक दिन अन्य छे रानियों ने भी भोजनादि द्वारा उस चोर का सत्कार किया। परंतु भय के कारण अन्नादि के द्वारा सत्कार होने पर भी वह चोर अत्यन्त कृश होने लगा। उसे अत्यन्त दुर्बल देखकर दयार्द्र होनेसे रानी रूपवतीने पूछा कि 'हे चोर! हम लोगों ने सात दिन तक तुम्हारी अच्छे ढंगसे रक्षा की तो भी तुम दुर्बल क्यों हो गये हो?' चोरने कहा कि मैं मृत्यु के भय से प्रतिदिन दुर्बल होता जा रहा हूँ। चोर की बात सुन कर रानी विचारने लगी:—

×यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजंतुषु।
तस्य ज्ञानं च मोक्षश्च किं जटाभस्मचीवरैः? ॥८१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीष्ठा में रहे हुए कीट को तथा स्वर्ग में रहे हुए इन्द्र को मृत्यु की और जीने की अभिलाषा समान ही रहा करती है। प्रकृति का नियम है कि नीच में नीच योनि में उत्पन्न होने पर भी प्राणी मरने की इच्छा कभी नहीं रखता। इस लिये अभयदान ही सब दानों में उत्तम है। कहा भी है कि:----

अभय दान की प्रशंसा

"श्रीकृष्णने युधिष्ठिर को धर्मोपदेश देते कहा कि मेरु पर्वत के समान सुवर्ण का दान कर अथवा समस्त पृथिवी का दान कर परन्तु वह एक प्राणी के जीवन को बचाने तुल्य नहीं है।" ×

सुवर्ण, गाय, पृथिवी आदि का दान करने वाले तो इस भूमि में अनेक पडे हैं। परंतु प्राणी को अभयदान देने वाले विरले ही हैं।*

रूपवती का चोर को उपदेश

रूपवतीने सदय हो कर चोर को कहा कि 'हम लोगोंने सात दिन तक तुम्हारी रक्षा की परंतु प्रातःकाल में तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। अतः तुम्हें मृत्यु से कौन बचायेगा? इस लिये अनेक दुःखो को देनेवाला चोरी का धंधा तुम शीघ्र छोड दो, चौर्यरूपी पाप के वृक्ष का

× यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं कृत्स्नां चैव वसुन्धराम्।
एकस्य जीवितं दद्यान्न च तुल्यं युधिष्ठिर! ॥९४॥

* हेमधेनुधरादीनां दातारः सुलभा भुवि।
दुर्लभः पुरुषो लोके यः प्राणिष्वभयप्रदः ॥ ९५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस लोक में वध और बंधन आदि फल मिलते हैं तथा परलोक में नरक का कष्ट भोगना पड़ता है। भाग्यहीनता, दासपणा, अंगच्छेदन, दरिद्रता, ये सब चोरी का ही फल प्राणी को मिलता है। अत एव यह समझकर मनुष्य को चाहिये की सर्वथा चोरी न करे।'

चोरी का त्याग और मृत्यु से बचाव

रूपवती की इस प्रकार की बात सुनकर वह चोर पापसे डरकर कहने लगा कि 'आजसे में कदापि तृण मात्र की भी चोरी नहीं करूँगा।'

चोरकी यह बात सुन कर रानी रूपवती राजा के समीप जाकर कहने लगी कि 'हे राजन्! यह चोर आज से कभी भी चोरी नहीं करने की प्रतिज्ञा कर रहा है। इस लिये प्रसन्न होकर इसे छोड़ दीजिये।' राजाने पट्टरानी की यह बात सुन कर चोर को छोड़ दिया। मृत्यु के भयसे रहित होने के कारण अब वह चोर आनन्दित व शरीरसे हृष्टपुष्ट हो गया। इसने जिन्दगीभर चोरी न करने की प्रतिज्ञा लेली। इसप्रकार तृतीय व्रत को पालन करके वह चोर मृत्यु बाद स्वर्ग में दिव्य शरीर पाकर सुख भोगने लगा। क्यों कि तृतीय व्रत के पालन करने से राज्य, सुन्दर सम्पत्ति, भोग, सत्कुल में जन्म, सुन्दर रूप तथा अन्त में देवत्त्व की प्राप्ति अवश्य होती है।

परोपकार का बदला

इस प्रकार वह चोर स्वर्ग में जाकर अपने पूर्व जन्म को स्मरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता हुआ रानी के अभयदान के प्रत्युपकार की चिन्ता करता हुआ सोचने लगा कि 'मैं रानियों को कब दिव्य रत्न आदि देकर अपने उपकार का बदला चुका कर ऋण रहित होजाऊँ।' यह सोचकर वह स्वर्ग से रानियों के पास आया और उन्हें प्रणाम कर के बाद में अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त कह सुनाया और रूपवती को कोटि मूल्य का दिव्य हार तथा दो कुंडल दिये। अन्य छै रानियों को भी दो दो कुंडल दिये। राजा को दिव्य सिंहासन तथा मुकुट दिये। बाद में प्रणाम कर के वह देव स्वर्ग चला गया।" श्रीसिद्धसेन दिवाकर सूरीश्वरजी महाराज ऐहिक महात्म्य के संबंधमें रानी हेमवतीका वृत्तान्त सुनाते है।

दान व शील का प्रभाव

इस के बाद वह राजा दरिद्रों को सतत दान देने लगा तथा अपने राज्य में किसी को भी चोरी न करने की घोषणा कराई। अपनी पत्नियों के साथ गुरु महाराज के पास सद्धर्म श्रवण करके दान, शील, तप और भाव इन चारों प्रकार के धर्म का पालन करता हुआ दान के उत्कृष्ट प्रभाव से स्वर्ग को प्राप्त किया। पुनः वह मनुष्य जन्म प्राप्त कर सातों पत्नियों के साथ कर्म का क्षय होने पर मोक्ष को प्राप्त करेगा। इस प्रकार जो कोई मनुष्य दान या धर्म की आराधना करेगा वह शीघ्र ही मुक्ति सुख को प्राप्त करेगा।

शीलव्रत पर हेमवती की कथा

जो मनुष्य शील व्रत का सदा पालन करते हैं वे हेमवती के समान शीघ्र ही कल्याण और सम्पत्ति को प्राप्त कर लेते हैं। हेमवती की कथा इस प्रकार है —" लक्ष्मीपुर में 'धीर' नामक एक अत्यन्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्याय–नीतिपरायण राजा था। उन को हेमवती नामकी सुशील-संपन्न दयावाली रानी थी। उन दोनों राजा-रानी के दिन श्री जिनेश्वरोक्त धर्म के आचरण करने में ही बीतते थे और सद् गुरु की सेवा भी प्रेम से किया करते थे।

विद्याधर के द्वारा हेमवती का हरण

एक समय वसन्त ऋतु में हेमवती के साथ राजा धीर उद्यान में क्रीडा करने के लिये गया। इसी समय में अदृष्ट गतिवाला कोई विद्याधर किसी के मुख से हेमवती की अत्यन्त श्रेष्ठ रूप शोभा सुनकर उसे हरण करने की इच्छा से वहाँ आया। बाद उद्यान में क्रीडा करते हुए राजा के समीप से हेमवती को हरण कर अतिशय गतिवाला वह विद्याधर वैताढ्य पर्वत पर चला गया। वहाँ जाकर बोला कि 'हे हेमवति ! इस चांदी के पर्वत पर दक्षिण कोण में तथा उत्तर कोण में पचास और साठ नगर हैं। जिस में विद्या को धारण करने वाले तथा सौन्दर्य से देवताओं को भी जीतने वाले विद्याधर लोग रहते हैं। इन में नागकेसर, चंपा, माकन्द, अशोक आदि वृक्ष तथा वापी, कूप तथा सुन्दर तलाव आदि स्थानों को तुम देखो। मैं बड़े अच्छे रत्न कमल आदि से युक्त रत्नवती नगर में विद्याधरों से सेवित होकर सुखपूर्वक राज्य कर रहा हूँ। यह रत्नमय सात मजल का महल मेरा ही है। सभी ऋतुओं में पुष्प, फल आदि से परिपूर्ण रहने वाला यह मेरा बाह्य उद्यान है। प्रज्ञप्ति आदि विद्यादेवियों अभिलषित सुख मुझे देती रहती हैं और अत्यन्त निर्मल रूप और लावण्य से युक्त होकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निरंतर मेरे समीप ही रहा करती हैं। इस लिये तुम निर्मल मन में मुझे बैठाओ और अपनी इच्छा के अनुसार इन उद्यान आदि स्थानो का उपभोग करो।'

विद्याधर को हैमवती का प्रत्युत्तर

यह सुनकर हेमवती कहने लगी कि 'हे विद्याधर! ऐसी बातें तुम्हे नहीं करनी चाहिये। क्यों कि परस्त्री गमन करने से लोग नरक में पड़कर अनेक दुःख पाते है। जो स्त्री अपने पतिका त्याग करके निर्लज्ज होकर दूसरे पुरुष से सम्बन्ध जोड़ती है ऐसी कुलटा स्त्री का क्या विश्वास? परस्त्रीगमन करने से प्राण सदा धोखे में ही रहा करते हैं। परस्त्री गमनसे इस लोक और पर लोक में भी जीवका अनिष्ट ही होता है और यह वैरका परम कारण है। इसलिये परस्त्री गमन कदापि नहीं करना चाहिये। परस्त्रीगमन करने वालेका सर्वस्व नष्ट हो जाता है। वह दुष्ट बन्धन में पड़ता है, उसके शरीर के अवयव छिन्नविछिन्न हो जाया करते हैं। मरनेपर वह पापी घोर नरक को प्राप्त करता है। पराक्रम से संसारको अधीन करने वाले रावणने परस्त्रीगमन की इच्छा मात्रसे ही अपने समस्त कुल को नष्ट किया और स्वयं नरक में गया।'

इसके बाद विद्याधरने कहाकि 'हे हेमवति! तुम शीघ्रतया मुझको अपने पति रूप में स्वीकार करलो। अन्यथा तुम्हारा बहुत बड़ा अनिष्ट होगा। इस में संदेह नहीं।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शीलरक्षा के लिये हेमवतीने अपने गलेमें पाश लगाया

इस प्रकार विद्याधर की बात सुन कर हेमवतीने अपने शीलकी रक्षा के लिये प्राण त्याग की इच्छा से गले में पाश लगादिया। परंतु वह पाश हेमवती के गलेमें गीरते ही फुल की माला बन गयी। धर्मात्मा हेमवती ने अपने शीलकी रक्षाके लिये अनेक उपाय किये। इस प्रकार उस महासती का माहात्म्य देखकर भी वह पापी अपनी इच्छा को दबाता नहीं था। उतनेमें चक्रेश्वरी देवी उसको दुष्टात्मा समझकर सतीको सहाय करने को वहाँ आकर खड़ी हो गई। वह देवी कठोर वाणीसे उस विद्याधरका तिरस्कार करने लगी। चक्रेश्वरी देवीने कहाकि 'हे पापिष्ठ! तुम इस सती हेमवती को क्या जानते नहीं हो? यदि तुम इसके बारे में जरा भी विरुद्ध बोलोगे तो तुम्हारा महान् अनर्थ होगा। इसके शीलके प्रभावसे तुम बिलकुल भस्म हो जाओगे। यदि तुम इसे भगिनी मानने लगो तो तुम्हारा कल्याण होगा। तुम पापिष्ठ भावसे इसके शील को नष्ट कर रहे हो क्या इस में तुम्हे जरा भी भय नहीं है?'

चक्रेश्वरी देवी के इस प्रकार फटकारने पर विद्याधर उस हेमवती के चरणों में गिरकर प्रणाम करके बोला कि 'आप मुझे सन्मार्ग पर लाईये। आप मेरी भगिनी ही हो।' ऐसा कह कर विद्याधरने हर्षपूर्वक अत्यन्त प्रकाशमान दिव्य रत्नों से सेवा करके हार और कुण्डल हेमवती को दिया ओर बाद में हेमवती को विमान में लेकर लक्ष्मीपुर आकर राजा धीर के पास क्षमा मांगकर सुपर्द की। राजा के आगे हेमवती केशील की महत्ता कह कर अत्यन्त गतिवाला वह विद्याधर अपने स्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को चला गया। हेमवतीने भी शील के महात्म्य से इस जन्म में दीक्षा लेकर तपस्या करके मुक्तिको प्राप्त किया।" इस तरह अनेक प्रकार शीलका महात्म्य गुरु महाराजने कहा। बादमें तपके विषयमें कहने लगे।

तपका प्रभाव व तेजःपुंज

नमस्कार पूर्वक निरंतर तप करता हुआ मनुष्य तेजःपुञ्ज के समान स्वर्ग और मुक्ति की लक्ष्मी को प्राप्त करता है। इसकी कथा इस प्रकार है–"चन्द्रपुर नाम के नगर में चन्द्रसेन नामका एक राजा था। उसको चन्द्रावती नामकी रानी से तेजःपुंज नामका पुत्र हुआ। यह पांच दाइयों द्वारा स्तन्यपान आदि से पालित होता हुआ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढने लगा। राजा ने इस को उत्सव के साथ पंडित के पास पढ़ने के लिये भेजा। इसने पूर्णिमा के चन्द्र के समान क्रमशः सब कलाओं को ग्रहण करली। क्यों कि जल में तेल, दुर्जन में गुप्त बात, सुपात्र में दान, बुद्धिमान् में शास्त्र थोडा रहने पर भी वस्तु स्वभाव से ही विस्तृत होजाता है।

यह तेजःपुंज कुमार युवावस्था को प्राप्त कर अपने माता पिता के चरण कमलकी सेवा करता हुआ सब विद्वानों का मनोरंजन करने लगा। बाद राजाने जितशत्रु राजा की कन्या रूपसुन्दरी से अत्यन्त उत्सव पूर्वक तेजःपुंजका विवाह कराया। पश्चात् अपने पुत्र को राज्य देकर राजाने अष्टाह्निक–महोत्सव किया। बाद में तपस्या कर के अपनी प्रिया के साथ राजा चन्द्रसेन ने धर्म कार्यके बल से स्वर्ग को प्राप्त किया। क्यों कि तप और नियम के पालन करने से मोक्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है, दान देने से उत्तम भोग प्राप्त होता है, देवार्चन करने से राज्य मिलता है, अनशन यानी तपस्या करने से इन्द्रपणा सहज में ही प्राप्त होजाता है।

क्रमशः वह राजा तेजःपुंज पूर्व भव में उपार्जित पुण्य के प्रभाव से अनेक विविध सुखों का उपभोग करता हुआ अपने शत्रुओं को सेवक बनाने लगा। क्यों कि आरोग्य, भाग्यका अभ्युदय, प्रभुत्व, शरीर में बल, लोक में महत्व, चित्त में तत्त्व, घर में सम्पत्ति ये सब मनुष्यों को पुण्य के प्रभाव से ही प्राप्त होते है।

एक दिन श्री धर्मघोष नामक गुरु महाराज को नगर बाहर उद्यान में आये हुए सुन कर राजा तेजःपुंज अत्यन्त हर्षित मन से धर्म के रहस्य को सुनने की इच्छा से उनके पास गया। वहाँ जाकर गुरु महाराज को तीन प्रदक्षिणा विधि-वत् करके उन के पास बैठ गया। इस संसार

में अच्छा राज्य मिल सकता है, अच्छे अच्छे नगर मिल सकते हैं परंतु सर्वज्ञ महापुरुष से कथित विशुद्ध धर्म पुण्यहीन प्राणी को अप्राप्य है। कहा भी है कि :-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"कोटि जन्म में भी दुर्लभ मनुष्य जन्म आदि सब सामग्री को प्राप्त करके संसार रूपी समुद्र में नौका रूप धर्म के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये।"×

इस प्रकार गुरु महाराज ने धर्मोपदेश किया और संसार की असारता समझाई।

बाद में राजा तेजःपुंजने पूछा कि 'हे गुरुजी! मैंने पूर्व जन्म में किस प्रकार का पुण्य किया था कि जिस से मुझ को इस जन्म में राज्य मिला।'

गुरुमहाराज से तेजःपुंजका पूर्वभव कथन

गुरु महाराज ने कहा कि 'हे महाभाग! तुमने जो पूर्व जन्म में पुण्य किया है उसे ध्यान लगाकर सुन लो।' 'श्रीपुर में कमल नामका एक अतीव दरिद्र वणिक हुआ। उस की कमला नामक स्त्री थी। उस वणिक को क्रमशः तीन पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। धन के अभाव से कन्याओ का विवाह न होने के कारण दुःखी होकर वह दूसरे के घर में नौकरी करने लगा। क्यों कि लक्ष्मी के प्रभाव से चतुरता तथा युवावस्था के प्रभाव से विलास जिस प्रकार जीव सीखता है ठीक वैसे ही दरिद्रता से दासत्व भी सीखता है। कुत्सित गाँव में वास, कुत्सित राजा की सेवा, निन्दित भोजन, निरंतर क्रुद्धमुखाकृति वाली

× भवकोटिदुःप्राप्यमवाप्य नृभवादिसकलसामग्रीम्।
भवजलधियानपात्रे धर्मे यत्नः सदा कार्यः॥१७४॥

स्त्री, कन्या की अधिकता और दारिद्र्य ये छै जीवलोक में नरक के समान दुःख देने वाले होते हैं। कन्या के जन्म लेते ही शोक होता है। इस के बढ़ने के साथ ही चिंता बढ़ती है। इस के विवाह में दण्ड भरना पड़ता है। इस लिये कन्या का पिता होना संसारमें निश्चय कष्टप्रद है। अपने घरका शोषण करने वाली, दूसरे के घर को भूषित करने वाली, कलह और कलंक का समूह एसी कन्या को जिसने जन्म नहीं दिया वही जीव लोक में सुखी है। कमल वणिक्ने बडे ही कष्ट से उन तीनों कन्याओं का विवाह कराया।

एक दिन वह वणिक अच्छे मनसे धर्म सुनने के लिये गुरु महाराजके पास गया। गुरुमहाराजने कहाकि 'सर्वज्ञ भगवन्त में भक्ति, उनके कहे हुए सिद्धान्त में श्रद्धा, और सुसाधुओंका पूजन, यह सब मनुष्य जन्मका सर्वोत्तम फल है। मुनि लोक कहते हैं कि सुपात्र में दान देना, विशुद्ध शील, नाना प्रकार के धर्मकी भावना, यह चार प्रकार का धर्म संसाररूपी सागरमें पार उतरने के लिये नौका के समान है।'

यह सुनकर कमलने पूछा कि 'द्रव्य नहीं रहने पर दान कैसे दिया जा सकता है?'

गुरुमहाराजने उत्तर दिया कि 'तपस्या द्रव्य के विना भी अच्छी तरह की जा सकती है।'

कमलने पुनः पूछा कि 'कौन कौन तप किया जाता है?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुरुजीने कहा कि ' सिद्धान्त में अनेक प्रकार के तप कहे गये हैं। नवकारसी, पोरसी, एकासन, उपवास, छट्ठ, पंचमी, एकादशी, वीशस्थानक, वर्धमान आदि तप करनेसे दुष्ट कर्म सहज में ही नष्ट हो जाता है। जो दुष्ट कर्म नरक में युगों तक कष्ट भोगने पर भी कदापि नष्ट नहीं हो सकता। जो निश्चयपूर्वक सावधान होकर गंठि सहित गंठि बन्धन करते हैं वे मानों अपनी गंठि स्वर्ग और मोक्षसे बांध लेते हैं। यानी उन्हें मोक्ष और स्वर्गका सुख अनायास ही प्राप्त हो जाता है। कहा भी है:–

"तप सकल लक्ष्मी का बिना शृंखला का नियंत्रण है। पाप, प्रेत और भूतोंको हटाने में वह सदैव बिना अक्षरका मंत्र है।"+

यह सुन कर कमलने कहाकि 'मैं आजसे एकान्तर अवश्य उपवास करूंगा तथा शुद्ध भावसहित गंठि सहित पच्चक्खाण भी करूंगा।' इस प्रकार गुरु के आगे प्रतिज्ञा करने के बाद विधिपूर्वक जीवन पर्यंत तप किया। बाद में तपके प्रभावसे कमल वणिक शरीर का त्याग करके प्रथम स्वर्ग में अत्यन्त तेजस्वी देव हुआ।

इस के बाद देवलोकका आयुष्य पूर्ण होनेपर मनोहर स्वप्न सूचितकर चन्द्रपुर के स्वामी चन्द्रसेन के तुम पुत्र हुए हो। हमेशा सब मनोरथोंका देनेवाला पूर्व में लगाया गया तपरूपी कल्पवृक्ष इस जन्म में राज्य लक्ष्मी

+ तपः सकललक्ष्मीणां नियंत्रणमशृंखलम् ।
दूरितप्रेतभूतानां रक्षामंत्रो निरक्षरः ॥१८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूपसे तुमको फलित हुआ है। उसके प्रभावसे ही तुमको एक सहस्र हाथी, पांच लक्ष शीघ्र वेग वाले घोड़े, उतने ही रथमें वहने वाले घोड़े, अत्यन्त बलशाली कोटि प्रमाण सेना, कोटि सुवर्ण, दश लाख रत्न, लक्ष मूल्यकी मुक्तायें और लक्ष्मी का तो कोई पार ही नहीं। क्यों कि जिस प्राणीको पूर्व जन्म का उपार्जित पुण्यरूप द्रविण परिपूर्ण है उसको संसार की सब सम्पत्ति निश्चय पूर्वक सहजमें प्राप्त होती है।"

यह बात सुन कर राजाने कहाकि 'स्वामिन्! आजसे मैं पूर्व जन्म के समान नित्य भाव पूर्वक तप करूँगा। इसके बाद राजाकी उग्र तपस्या को देखकर सब मनुष्य भक्ति पूर्वक विशेषरूपसे तपस्या करने लगे। क्यों कि:—

"राजा यदि धर्मिष्ठ हो तो प्रजा भी धर्मिष्ट होती है। राजा यदि पापी हो तो प्रजा भी पापिष्ठ होती है। राजा के समभाव में रहने पर प्रजा भी समभाव में रहा करती है। मतलब कि राजा अगर अच्छे चरित्र वाला है तो प्रजा भी अच्छे चरित्र वाली होती है।" +

इसके बाद राजाने अच्छे उत्सव के साथ अपने पुत्र सुन्दर को राज्य देकर आदर पूर्वक सातों क्षेत्रों में अपनी राज्य लक्ष्मीका बहुत दान कर, बाद में दीक्षा लेकर तीव्र तपके द्वारा अपने सारे कर्मको नष्ट करके केवल ज्ञान प्राप्त कर वह तेजःपुंज राजर्षि मोक्ष को प्राप्त हुए।

+ राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥१९९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार जो प्राणी अपने हृदय में सतत विशुद्ध भावना रखता है वह राजा शिवके समान शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। जिस की कथा अगले प्रकरणमें बताई जाती है।

प्रकरण बत्तीसवाँ

शुद्धभावना पर शिव राजाकी कथा

राजा शिव की कथा इस प्रकार है "श्री वर्द्धनपुर में न्याय परायण शूर नाम के राजा को पद्मा नाम की स्त्री से शिव नामका पुत्र हुआ। वह सब शुभ लक्षणों से युक्तथा। उसको राजा सूरने पंडितके पास भेजकर पढाया। शिवने अल्प समय में ही सब कलाओं को सीख लिया। क्यों कि जीवलोक में जन्मलेकर मनुष्य को दो वस्तुऐं अवश्य सीखनी चाहियें। एक तो किसी भी तरह न्याय नीतिसे सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करे और दूसरा शुभ धर्म कर्म करें जीससे मरने पर जीव सुगति प्राप्त करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शूर का श्रीमती से लग्न

क्रमशः राजा शूरने श्रीपुरमें राजा धीर की कन्या श्रीमती से अच्छे उत्सव के साथ शिवका विवाह कराया। अपने पुत्रको राज्य देकर धर्मधुरंधर राजा शूर अपनी स्त्रीसहित धर्म-आराधना करके अन्त में स्वर्ग गया। क्यों कि धन चाहने वाले को धन देनेवाला, कामकी इच्छा करने वाले को काम देनेवाला और परंपरा से मोक्ष का भी साधक एक धर्म ही यह जीव लोक में है।

राजा शिव अपने पिताका प्रेत कार्य करके शोक को त्यागकर न्यायपूर्वक पृथिवीका पालन करने लगा। क्यों कि दुर्बल, अनाथ, बाल, वृद्ध, तपस्वी, अन्यायद्वारा पीडित इन सब व्यक्तियोंका राजा ही गति—आधार है।

एकदिन जब राजा शिव सभा में बैठे थे तब कोई मनुष्य प्रणाम करके बोलाकि 'हे राजन्! धीर नामका शत्रु इस समय हीरपुर नामके नगरको नष्ट करके चला गया। ऐसा सुन कर राजा तैयार होकर उस शत्रुको जितने के लिये हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि सेनासे युक्त होकर प्रयाण किया। घोड़ोंके खुरके आघात से उड़ी हुई धूलियोंसे आकाशको व्याप्त करता हुआ नदीयों के जलका शोषण करता हुआ शत्रु के नगर के समीप आ पहुँचा।

राजा शिव व धीर की सेनाका युद्ध

दूतके मुखसे राजा शिवको आया हुआ जानकर वह शत्रु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राजा शीघ्र ही युद्ध के लिये ? हो गया।

इसके बाद दोनों तरफ की सेनाओं में परस्पर भयंकर युद्ध होने लगा। युद्धमें सामने खड़ी शिवकी सेनाको राजा धीरने क्रोधसे

रक्तनेत्र होकर नष्ट करदिया। अपनी सेनाको खिन्न देखकर शीघ्र ही स्वयं युद्ध करने के लिये रक्तनेत्र होकर राजा शिव भी तैयार हो गया। बाद में क्षण मात्र में ही समुद्रके समान वैरीकी सेना को मथ दिया और साधारण पक्षीके समान राजा धीर को बांध लिया। धीरके जितने भी सेवक थे वे सब सूर्योदय होने पर अंधकारके समान दशों दिशाओं में भाग चले। क्यों कि चन्द्रबल, ग्रहबल, ताराबल, पृथिवीबल ये सब तब तक ही रहता है, तथा मनोरथ भी तब तक ही सिद्ध होता है और मनुष्य तब तक ही सज्जन रहता है, मुद्रासमूह, मंत्र, तंत्रकी महिमा या पुरुषार्थ तब तक ही काम करता है जबतक प्राणिओंका पुण्य का उदय रहता है। पुण्य के क्षय होने से सभी कुछ नष्ट हो जाता है। विना फलवाले वृक्षको पक्षी भी छोड़ देते है। जल सूख जानेपर सारस सरोवर का त्याग कर देता है। भ्रमर शुष्क पुष्पको त्याग देते हैं। वन जल जाने पर मृग वनको छोड़ देते हैं। वेश्या धनहीन पुरुष का त्याग कर देती है। अर्थात् सब कोई स्वार्थ वश ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किसीसे प्रेम करते हैं। अन्यथा यह संसारमें कोई किसीका नहीं है। एसा सोचकर धीर राजाने शिवसे कहा कि 'हे राजन्! यह नगर तुम लेलो। आजसे मैं आपका सेवक हूँ। आप मेरी सुन्दरी नामकी कन्या को स्वीकार करो और प्रसन्न हो कर मुझको बंधनसे मुक्त कर दो। इस प्रकारकी राजा धीरकी प्रार्थना सुन कर राजा शिवने प्रसन्न होकर उसको बन्धनसे छोड़ दिया। क्यों कि?—

"उत्तम व्यक्तियों का क्रोध प्रणाम—नमस्कार पर्यंत ही रहता है' परन्तु नीच व्यक्तियों का क्रोध प्रणाम करने पर शान्त नहीं होता।" ×

सुन्दरी से शिव का लग्न व वीरका जन्म

इस के बाद धीर राजा से दी हुई सुन्दरी नाम की कन्या को उत्सव पूर्वक राजा शिवने स्वीकार कर ली। बाद में राजा धीर को पुनः राज्य देकर सुन्दरी के साथ सुख पूर्वक रहता हुआ क्रमशः राजा शिव अपने नगर में आ गया। इसने सर्व गुण संपन्न श्री सुन्दरी को पट्टरानी बना दी और सर्वज्ञ प्रभुश्री से कहा गया धर्म पालने लगा। क्यों कि सत्य से धर्म उत्पन्न होता है और वह दया और दान से बढ़ता है, क्रोध और लोभ से नष्ट हो जाता है परन्तु कुछ समय के बाद कुसंग में पड़कर राजा शिवने कुछ भी धर्म नहीं किया। दुर्बुद्धि के कारण सदा सात व्यसनों का ही सेवन करता रहा। कुछ दिन के बाद शुभ मुहूर्त में श्रीमती को एक अत्यन्त सुन्दर

× उत्तमानां प्रणामान्तः कोपो भवति निश्चितम्।
नीचानां न प्रणामेऽपि कोपः शाम्यतिक र्हिचि ॥२२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुत्र हुआ। राजाने जन्मोत्सव करके उस का नाम 'वीरकुमार' रखा।

श्रीमती का स्वर्गवास

पांच दाइयोंने इस बालक को स्तन्यपान आदि द्वारा पाला-पोषा। यह सुन्दर बालक शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान प्रतिदिन बढने लगा। कुछ दिनके बाद धर्मध्यान में लीन निर्मल शीलवाली वह श्रीमती अकस्मात् मर करके स्वर्ग में अत्यन्त प्रकाशमान कान्तिवाली देवी हुई। अपने पूर्व जन्म का स्मरण करके वह देवी श्रीमती अपने स्वामी शिव को धर्म बोध देने के लिये मनुष्य लोक में आई। आकर देखा कि शिव राजा लोगों के साथ शिकार, परद्रोह, मद्यपान आदि सात व्यसनों में लीन है। क्यों कि यदि राजा धर्म करता है तो प्रजा भी धर्म करती है। परन्तु राजा यदि पाप करे तो प्रजा भी पाप करने में नहीं हिचकिचाती अर्थात् यथा राजा यथा प्रजा।

श्रीमती का मृत्युलोग में आना व पति को पाप से बचाना

अपने पतिको दुराचरण में लीन देखकर वह देवी सोचने लगी कि 'शीघ्रतया मैं अपने पूर्व जन्म के पति को पाप से किस प्रकार बचाऊँ।' कहा भी है कि :

"सामर्थ्य रहने पर भी यदि अपने मित्रको या संबन्धीं को पापकर्म से नहीं रोकता है तो उस पापसे वह व्यक्ति भी वज्रलेपवत् हो जाता है—यानी वही पापी ही गिना जाता है।"*

---

* **सामर्थ्ये सति यो मित्रं न निषेधति पापतः।**
तस्यात्मा तस्य पापेन लिप्यते वज्रलेपवत् ॥२४०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह सब सोचकर देवमाया से श्रीमतीने चाण्डाली का रूप धारण किया और मदिरा पीती हुइ तथा मांस खाती हुइ वह अत्यन्त मलीन वस्त्र और भद्दारूप धारण करके मनुष्य की खोप्परी हाथमें लेकर उस में सड़क पर पानी सींचती हुई धीरे धीरे चलने लगी।

इस प्रकार की क्रिया करने वाली उस स्त्रीको देखकर सभा में बैठे हुए राजा शिवने कहा कि 'हे मंत्री! यह चाण्डाली रास्ते पर जल क्यों छीटकती है?'

राजा की आज्ञा से चाण्डाली को जल छीटकने का कारण पूछना

राजा के इस प्रकार प्रश्न करने पर मुख्य मंत्री राजाकी आज्ञासे उस चाण्डाली के पास पहुँचा। और कहने लगा कि— हाथमें खप्पर लेकर तथा मदिरा पीति हुई और मांस भक्षण करती हुई हे चाण्डालि! मार्ग में जल छीटकने का क्या कारण है?'

इस प्रकार मंत्रीने प्रश्न किया जिससे वह सभा में आकर संस्कृत भाषा में कहने लगी कि 'इस मार्ग से कभी कूट साक्षी देने वाला, मिथ्या बोलने वाला, कृतघ्न, बहुत देरीतक क्रोध रखने वाला, शिकार, पर द्रोह, मद्यपान आदि में कोई लीन मनुष्य गया होगा। इसी लिये जलसे सींचकर इस मार्ग को मैं पवित्र कर रही हूँ।'

यह सुनकर मंत्रिने कहा कि 'हे चाण्डालि! तुम ऐसा न बोलो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जलसे स्नान करने पर भी चाण्डाल लोग कदापि शुद्ध नहीं होते ।'

चाण्डाली कहने लगी कि 'कूट साक्षी देने वाला, मिथ्या बोलने वाला, कृतघ्न, बहुत देरी तक क्रोध रखने वाला, शिकार मद्यपान करने वाला तथा इसी तरह के अन्य पाप कर्म करने वाला मनुष्य जलसे पवित्र नहीं होता । पुराण में भी कहा है कि:—

"दुष्ट अन्तःकरण वाला मनुष्य तीर्थ में अनेक वार स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं होता । वह तो मदिरा के पात्र के समान अनेकवार प्रक्षालित होने पर भी अपवित्र ही रहता है ।" +

राजाने चाण्डाली की ये सब बातें मंत्री द्वारा सुनी और उसको समीपमें बुलवाई । वह भी जल सिंचती हुई राजा के समीप आई तथा वहाँ जल सिंचकर बैठी। उसको राजाने इस प्रकार करते देखा और उस पर अति क्रुद्ध हुआ तथा उसको मारनेका सेवकोंको आदेश दे दिया ।

सेवकों के अनेक प्रकारसे मारने पर भी उस के शरीर पर मार का कुछ भी असर नहीं हुआ । यह देखकर राजा आश्चर्य चकित हो गया और सोचने लगा कि 'यह स्त्री व्यन्तरी, किन्नरी अथवा देवी होनी चाहिये । कारण कि यदि यह मानवी होती तो इस प्रकार मारने पर तुरंत मर जाती । इसलिये निःसंदेह यह किन्नरी अथवा देवी है । इस समय मैंने देवी की निश्चय ही आशातना की है । इस प्रकार का

+ चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्धयति ।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥२५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अधम मैं किस प्रकार इन पाप समूहों से छुटकारा पाऊँगा।'

इस के बाद चाण्डाली राजाका धर्मानुसारी चित्त देखकर शीघ्र ही अत्यन्त प्रकाशमान आभरणवाली देवी रूप प्रगट होकर राजा के आगे खड़ी हो गई

तब राजाने उस देवी को पूछा कि 'तुम कौन हो और यहाँ किस प्रयोजनसे आई हो?'

चाण्डाली का रूप धारण करने का कारण

इस के बाद देवीने अपने पूर्व जन्म का सब वृत्तान्त राजा को सुना दिया। बाद में कहने लगी कि 'हे राजन्! मैंने तुम्हें पाप कर्म से सावधान करने के लिये ही यह चाण्डलीका रूप बनाया है।'

तब राजाने कहा कि 'हे देवि! मैंने मूर्खता के कारण बहुत पाप किया है अतः अवश्य अत्यन्त कष्टकारक नरक में मेरा पतन होगा। तुमने स्वर्ग आदिक सुख देनेवाला जीवदयारूप धर्म किया और स्वर्ग के सुखों को भोगकर देवीका स्वरूप प्राप्त किया।'

इसके बाद राजाने तत्काल सब व्यसनों को त्याग दिया। बाद में देवीने कहा कि 'तुम धर्ममें दृढ रह कर जीवदया का पालन करो।' इस प्रकार राजाको धर्म में लगाकर वह देवी राजा तथा उस के पुत्र को दो दो दिव्य रत्न देकर पुनः स्वर्ग चली गई।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस के बाद राजाने सब व्यसनों को त्याग कर नगर में सुन्दर रत्नों से जडित एक जैन मंदिर बनाया। बाद में सोलहवे भगवन्त श्री शान्तिनाथ के प्रतिमाकी महोत्सव सहित पू. सूरीश्वरोंके पवित्र हस्तकमलों से प्रतिष्ठा करवाई। कारण कि–

"धर्मसे प्राप्त हुई लक्ष्मी को धर्म में ही लगाना चाहिये। क्यों कि धर्म लक्ष्मी को बढाता है तथा लक्ष्मी धर्म को बढाती है।" *

जो सदाचारी पुरुष स्वच्छ मनसे अपनी भुजा के बल से उपार्जित धनके द्वारा मोक्ष के लिये सुन्दर जिनालय बनवाता है वह राजेन्द्र तथा देवेन्द्र से पूजित तीर्थंकर पदको प्राप्त कर लेता है। वास्तव में उसका ही जीवन सफल है जो जिनमत को पाकर अपने कुलको प्रकाशित करता है। जिनालय बनवाना, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करना, तीर्थयात्रा करना, धर्म प्रभावना करना, प्राणीवधनिषेध की घोषणा करना ये सब महापुण्य के देनेवाले होते हैं।

इसके बाद राजाने एक दिन श्रेष्ठ पुष्पों से श्रीशान्तिनाथ की पूजा करके अत्यन्त मनोहर नैवेद्य अर्पण किया और अत्यन्त भक्ति भावनासे अतीव उत्तम अर्थवाले स्तोत्रों से प्रभुके गुणोंका गान करने लगा। श्रीशान्तिनाथ प्रभु के आगे एकाग्र चित्तसे भावना करते करते राजा शिवको वहाँ ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया। क्यों कि मनुष्य कोटि जन्मो

---

* धर्मादभ्यागतां लक्ष्मीं धर्म एव नियोजयेत्।
यतो धर्मस्य लक्ष्म्याश्च दत्ते वृद्धिं द्वयोरपि ॥२६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में तीव्र तपस्या करने पर भी जो कर्म को नष्ट नहीं कर सकता उस कर्मको समभाव का अवलम्बन करके सहज में ही नष्ट करता है।

इस प्रकार ज्ञानी राजा शिवने देवता से दिये हुए साधुवेषको धारण कर लिया। बाद में शिवराजर्षिने पृथ्वी के अनेक प्राणियों को धर्म बोध दिया और कर्म समूह के नष्ट होने पर मुक्ति प्राप्त कि।

इस प्रकार जो प्राणी आदर पूर्वक निर्मल भावना करते है वे कर्मका क्षय करके केवल ज्ञानको प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार श्रीसिद्धसेन-दिवाकरसूरीश्वरसे चित्त में चमत्कार करने वाली धर्मकथा सुन कर राजा विक्रमादित्य बोलाकि 'अहो !! यह लक्ष्मी त्याग करने के योग्य ही है सज्जनों के उपभोग योग्य नहीं है।'

क्यों कि बन्धु विगैरह सतत स्पृहा करते है, चोर चुराने की इच्छा रखते हैं, राजा अनेक छल करके हरण कर लेता है, अग्नि क्षण मात्र में ही भस्म कर देता है, जल डूबा देता है, पृथिवी में रखने पर यक्ष हरण कर लेते हैं और दुराचारी पुत्र सब नष्ट कर देते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार अनेक के अधीन में रहने वाले धनको धिकार है। सुकोमल आसन या हाथी-घोडों पर चढ़ने वाला स्तुत्य नहीं होसकता। क्यों कि हाथी पर तो उसका महावत भी बैठता है। अगर हाथी पर बैठने मात्र से कोई मनुष्य मोटाई को प्राप्त करले तो फिर महावत को भी महान् पुरुष कहना चाहिये। हम उसे क्यों "महावत" इस साधारण शब्द से सम्बोधित करते हैं ?। ताम्बूल खाने मात्र से भी कोई स्तुत्य नहीं कहा जासकता। नट और विट भी तो सदा ताम्बूल खाते है फिर भी नीच ही गिने जाते हैं। अधिक भोजन करने से भी कोई स्तुत्य नहीं होसकता कारण कि हाथी आदि मूर्ख पशु भी तो अधिक भोजन करते है। इसी प्रकार बड़े महल में रहने मात्र से कोई प्रशंसनीय महान् पुरुष नहीं कहा जासकता। अगर ऐसा हो तो चिडिया, कबुतर आदि पक्षी भी महल में रहने से मोटाई को प्राप्त होने चाहियें। वास्तव में संसार में स्तुत्य वही है, जो कीसी भी प्राणी को उस की अभिलषित वस्तु देता है।'÷

नया संवत्सर चलाना

इस प्रकार सोचकर राजा विक्रमादित्यने सुवर्ण, चांदी, मणि विगैरहका मनो इच्छित दान देने लगा और भारतवर्षकी सारी प्रजा को

÷ आरोहन्ति सुखासनान्यपटवो नागान् हयान् तज्जुष-
स्ताम्बूलाद्युपभुञ्जते नटविटा खादन्ति हस्त्यादयः।
प्रासादे चटकादयो निवसन्त्येते न पात्रं स्तुतेः।
स स्तुत्यो भुवने प्रयच्छति कृती लोकाय यः कामितम् ॥२७९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋण रहित कर दि। श्री वीरजिनेश्वर के संवत्सर को चारसो सीत्तर वर्षे

बित जाने पर महाराजा विक्रमादित्यने अपने नामका संवत्सर चलाया। जो विक्रम संवत्सर अब भी सभी को महाराजा विक्रमादित्यकी याद कराता हुआ सारे भारतवर्षमें प्रसिद्ध हैं।

विक्रमादित्य का इस प्रकार का परोपकार देख कर एक दिन इन्द्र महाराज सभा में बैठ कर देवताओं से कहने लगा कि 'देवता लोग! धन होने पर भी स्वार्थी होने के कारण प्रायः धन का दान नहीं करते, न तीर्थ का उद्धार करते हैं, न किसी के व्याधि का हरण करते हैं और न किसी की आपत्ति को नष्ट करते हैं। परन्तु अपनी आत्मा मात्र को संतुष्ट करने वाले गृहस्थ व्यक्तियों से वे मनुष्य श्रेष्ठ हैं जो संसारके सर्व प्राणिओं के उपर परोपकार कर के यश से संसार को प्रकाशित करते हैं।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह यशस्वी महाराजा विक्रमादित्य राजसभामें प्रजा और राज्य का वृत्तान्त सुनकर योग्य सब बातों का अदल इनसाफ कर के राजसभा बरखास्त करके मंत्रियों के चले जाने पर भट्टमात्र से कहने लगा कि 'प्रचुर लक्ष्मी का दान कर के सारी पृथिवी को ऋण रहित कर दी है। अब अपने क्या करना चाहिये ?"

भट्टमात्र कहने लगा कि 'श्रीरामचन्द्रजी आदि राजा पूर्व में बहुतसी पृथिवी को अपने अधीन करके बड़ा कीर्तिस्तम्भ बनवा गये। इसलिये आप भी प्रचुर धन खर्च करके एक कीर्ति-स्तम्भ बनवाईये।'

कीर्तिस्तम्भ के लिये आज्ञा

तब राजाने सब मंत्रियों को बुलाया और कहाकि आपलोग बहुतसा धन लो और कीर्ति-स्तम्भ बनवाओ। तुरंत ही राजाने सूत्रदार आदि को बुलवा कर यह राज भंडारसे धन लेकर बड़ा भारी एक कीर्तिस्तंभ बनावो एसी आज्ञा फरमाई। ※

इस के बाद आज्ञा के अनुसार मंत्रियों ने कीर्ति-स्तम्भ का कार्य जोरसे जारी कर दिया।

सांढ और भैंसा के झगडे में राजा का संकट में फसना

इधर रात्रि में जब नगर लोगों का आना जाना रूक गया तब घूमता हुआ राजा विक्रमादित्य कृष्ण नाम के ब्राह्मण के घर के पास आया।

+ तथश्च क्रियते कीर्तिस्तम्भो भूरिधन व्ययात् ।
राजा ततः समाकार्य सूत्रधारान् जगावरः ॥२८७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस जगह पर अकस्मात् सांढ और भैंसा कहीं से आगये और परस्पर झगड़ने लगे। दैव संयोग से महाराजा बड़े संकट में फस गये। एकाएक उस ब्राह्मण की निद्रा खुल गई और उठ कर आकाश में देखा तो तारामंडल में दो दुष्ट ग्रहों को देख कर अपनी पत्नी से कहने लगा कि 'हे प्रिये! शीघ्र उठो और दीपक जलाओ। क्यों कि आज अपनेमहाराजा महान् भयंकर संकट में पडे हुए है। इसकी शान्ति के लिये मुझे बलि देनी चाहिये।'

राजा की शान्ति के लिये ब्राह्मणका शांति कर्म

उस की स्त्री कहने लगी कि 'हे प्रिय! घर में सात कन्यायें विवाह के योग्य हो गई हैं खाने के लिये एक टंक का भोजन सामग्री भी नहीं है, न दूध है, न प्राण बचाने के लिये मुंगादि है। खीवड़ी में कोरडू रह जाता है उसी तरह आज अवन्ती नगरी में भी यह ब्राह्मण बिचारा दरिद्र रह गया है। मामूली धान्य भी नही है ज्यादा क्या कहु आज तो शाक में डालने को नमक तक भी तो घरमें नहीं है और अपना राजा तो आज कीर्ति–स्तम्भ बनवा रहा है। राजा को अभी यह खबर नहीं कि अन्न और वस्त्र विना प्रजा अत्यन्त दुःखी है। जैसे दुनिया में जो दरिद्र है वह सब को दरिद्र ही समझता है। धनी व्यक्ति सब को धनी ही समझता है। सुखी सब को सुखी ही मानता है। मनुष्यों की यही रीति है।'

पति–पत्नी का विवाद

तब ब्राह्मण ने पुनः कहा कि 'हे प्रिये! राजा किसी का भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मीय नहीं होता तथापि प्रजा राजा के इष्ट की ही कामना करती है। इस के बाद वह ब्राह्मण स्वयं उठ कर राजा की शान्ति के लिये अच्छे अच्छे पुष्प आदि की बलि देकर शान्ति कर्म करने लगा। इधर भैंसा और सांढ परस्पर के झगड़े को छोडकर अलग हो गये। यह देखकर राजाने उस ब्राह्मण के घर पर निशान लगा दिया और वहाँसे लौटकर अपने महल में जाकर सो गया। प्रातःकाल उठ कर सभा में आकर राजा बैठा और उस ब्राह्मण को बुलाने के लिये राजसेवकों को भेजा।

राजसभा में ब्राह्मण को बुलाना और आदर करना

राजा का आदेश सुन कर ब्राह्मणी ने कहा कि 'हे प्रिय! जो आपने रात्रि में शान्ति की है उस का ही यह फल है कि इसप्रकार की राज–आपत्ति आ गई। अब न जाने छली राजा हम दोनों की क्या गति करेगा? क्यों कि पोषण करने पर भी राजा आत्मीय नहीं होता।'

इस के बाद ब्राह्मण राजसभामें उपस्थित हुआ। तब राजाने पूछा कि 'हे ब्राह्मण! आपने मेरे विघ्न को कैसे जाना और क्यों हटाया?'

ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि 'मैंने ज्योतिष शास्त्रानुसार लग्न के बल से ही आप के विघ्न को जाना और मैंने उसे इस लिये हटाया कि लोग जिस की छत्रछाया में निवास करते हैं उस राजा के सतत आदर पूर्वक विजय की इच्छा करते हैं।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रात्रि में राजा की जो घटना बनी वह सब दिन में राजा ने अपनी राजसभामें नगर की प्रजा को कह सुनाई और ब्राह्मण को प्रचुर धन देकर प्रसन्न किया। राजा ने सातों कन्याओं के विवाह के लिये ब्राह्मण को बहुत द्रव्य दिया। इस प्रकार उस ब्राह्मण को तथा सब प्रजा को प्रचुर दान देकर और सुखी करके बहुत सा धन खर्च करके अपना कीर्ति-स्तम्भ बनवाया।

॥ सप्तमः सर्गः समाप्तः ॥

उपसंहार

प्रिय पाठक गण! यह सप्तम सर्ग में अवधूत रूप में आये हुए पूज्य सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी के चमत्कार को, लिङ्ग के प्रति पैर रख के सोना, रानीवास में मार पडना, राजा का महाकाल मंदिर में आना, इष्ट देव की स्तुति द्वारा लिङ्ग भेदन होकर पार्श्वनाथ का प्रगट होना व सूरिजी के उपदेश को महाराजा विक्रमादित्य का सुनना, श्रीमती व शिव की कथा, शिव को बचाने के लिये श्रीमती रूपदेव का मृत्यु लोक में आना व शिव को पाप से बचानेके लिये आना राज मार्ग में चण्डालीका रूप धारण कर के जल छींटकना तथा विक्रमादित्य का कीर्तिस्तम्भ के लिये मंत्रीयों से कहना व साँढ और भैंसा की लडाई में फसते हुए राजा का शांति कर्म से ब्राह्मण द्वारा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बचना व उस ब्राह्मण का राज सभा में सन्मान द्वारा उस का दारिद्रय चूरने के बाद इस सर्ग की समाप्ति होना तक आपने इस सर्ग को पढ़ा। अब आगे क्या होता है इस की दूसरे भागमें प्रतीक्षा करें।

तपागच्छीय–नानाग्रन्थरचयिता–कृष्णसरस्वतीबिरुद-
धारक–परमपूज्य–आचार्यश्री–मुनिसुंदरसूरी-
श्वरशिष्य–गणिवर्य–श्रीशुभशीलगणि-
विरचिते श्रीविक्रमचरिते
सप्तमः सर्गः समाप्तः

नानातीर्थोद्धारक–आबालब्रह्मचारि–शासनसम्राट्–
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य–कविरत्न–शास्त्रवि-
शारद–पीयूषपाणि–जैनाचार्य–श्रीमद्विजयामृतसू-
रीश्वरस्य तृतीयशिष्यः वैयावच्चकरणदक्ष–
मुनिश्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्यमुनिनिरंजनविज-
येन कृतो विक्रमचरितस्य हीन्दीभाषायां भावानु-
वादः, तस्य च सप्तमः सर्गः समाप्तः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपने बालकों को पढाईए

सुदृढ संस्कारों को पोषण करनेवाली और हर्षपूर्वक पढे पसो

सरल शैलीसे भावपूर्ण चित्रोंसे भरपूर

" शिशुबोध सोपान ग्रंथावली के चार सोपान "

परिचय प्रथम सोपान ०-१०-०

पृष्ठ ८८ सचित्र परदुःखभंजन

विक्रमराजाका धार्मिक जीवन

कथा दूसरा सोपान ०-८-० ७६

गुणसार श्रेष्ठिकी जीवन

तीसरा सोपान ०-८-०

पृष्ठ ३६ सचित्र चित्र १०

साथ दो जीवन कथायें

जीवन परिचय चौथा सोपान ०-१२-०

साथ श्रीऋषभदेव प्रभुका टुंक

ખુશ ખબર

પર્વના શુભ દિવસોમાં ધર્મપ્રચાર અને જ્ઞાનભક્તિ કરવા ઇચ્છનાર ભાઈઓને

સદ્‌બોધની ભાવનાથી સુંદર આકર્ષક **ચિત્રો સહિત** કથાઓ ધાર્મિક પર્વોમાં અગર પોતાના ઉપકારી અગર વડીલની સ્મૃતિ નિમિત્તે એવા કોઈ શુભ પ્રસંગે પ્રભાવના કરી શકાય તેવી રીતે તૈયાર કરી છે. નાના મોટા સૌને હોંશે હોંશે વાંચવા ગમે તેવા સુંદર નીચેના પ્રકાશનો જરૂર મંગાવો. સંયોજક અને સંપાદક : પૂજ્ય સાહિત્યપ્રેમી **મુનિશ્રી નિરંજનવિજયજી મહારાજ.**

પ્રભાવના શ્રેણી:- **૧. પર્વાધિરાજ શ્રી પર્યુષણાપર્વ મહિમા. ૨. અઠ્ઠમ તપનો મહિમા યાને નાગકેતુ. ૩. મેઘકુમાર ૪. શેઠ નાગદત્ત. ૫. સતિ પ્રભંજના અને રોહિણી. ૬. ચૈત્રીપુનમનો મહિમા. ૭. અભયદાનનો મહિમા યાને રાણી રૂપવતી. ૮. શિયળનો મહિમા યાને સતી હેમવતી. ૯. ભાવનો મહિમા યાને મહારાજા શિવ. ૧૦ તપનો મહિમા યાને રાજકુમાર તેજપુંજ.**

(૧૦૦ નકલના રૂપિયા બાર (૧૨) પોસ્ટ ખર્ચ અલગ) છૂટક એક નકલના ત્રણ આના.

પ્રાપ્તિસ્થાન :—

(૧) **જૈન પ્રકાશન મંદિર,** ૩૦૯/૪ દોશીવાડાની પોળ, **અમદાવાદ.**
(૨) **પં. ભુરાલાલ કાલિદાસ.** ઠે. હાથીખાના રતનપોળ, **અમદાવાદ.**
(૩) **મેઘરાજ જૈન પુસ્તક ભંડાર,** પાયધુની ગોડીજીની ચાલી, પહેલે માળે કીકા સ્ટ્રીટ, **મુંબઈ-૨.**
(૪) **સોમચંદ ડી. શાહ. પાલીતાણા (સૌરાષ્ટ્ર).**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

શ્રી જૈન સાહિત્ય વર્ધક સભાનો સર્વોપયોગી પ્રકાશન

વર્ષમાં બે વખત આયંબીલની ઓળી પ્રસંગે ખાસ ઉપયોગી

શ્રી સિદ્ધચક્ર–નવપદ આરાધન વિધિ–(સચિત્ર)

નવપદ સ્વરૂપ–લેખક પૂ. પં. શ્રી ધુરંધરવિજયજીગણિવર્ય
અને સંપાદક :–સાહિત્યપ્રેમી મુનિં શ્રી નિરંજનવિજયજી મ.

અત્યાર સુધીમાં બહાર પડેલ આ વિષયના પુસ્તકોમાં આ પુસ્તક જુદી જ ભાત પાડે છે. જેમાં નવે પદોનું સુંદર વિવેચન પૂર્વક વ્યાખ્યાનો અને દરેક પદોના ભાવને સૂચવતા ખાસ તૈયાર કરાવેલ ભાવવાહી દશ ચિત્રો, ઓળીની વિધિના દીવસોનો કાર્યક્રમ બહુ જ સરળ રીતે મુકવામાં આવ્યો છે. ચોસઠ પ્રકારી પૂજા, શ્રી નવમદજીની બન્ને પૂજાઓ, સત્તરભેદી પૂજા, પ્રભુ સન્મુખ બોલવા યોગ્ય સ્તુતિઓ, નવપદના ચૈત્યવંદનો અને સ્તવનો, નવપદની થોયો, સજ્ઝાયો, શ્રી.સિદ્ધચક્રજીના યંત્રોદ્ધાર પૂજન વિધાનની સમજ વિગેરે વિગેરે સિદ્ધચક્ર આરાધન યોગ્ય સુંદર સરળ રીતે વિપુલ સામગ્રી સહિત. આ પુસ્તકથી ગામડા વિગેરેમાં પણ ઓળી કરનારને ઘણી જ સુગમતા જણાશે. કારણ કે ઉપયોગી દરેક બાબતોનો સમાવેશ આમાં કરાયેલ છે. પૃષ્ઠ ૨૮૮. પાકું બાઈન્ડીંગ છતાં પ્રચાર માટે કિં. ૨–૮–૦

પ્રાપ્તિસ્થાન :—

(૧) **જૈન પ્રકાશન મંદિર,** ૩૦૯/૪ ડોશીવાડાની પોળ, **અમદાવાદ.**

(૨) **બાલુભાઈ રૂઘનાથ શાહ,** અંબાજીના વડ પાસે, **ભાવનગર.**

(૩) **પં. ભુરાલાલ કાલિદાસ,** ઠે. હાથીખાના, રતનપોળ, **અમદાવાદ.**

તે સિવાય મુંબઈ–પાલીતાણા વગેરે પ્રસિદ્ધ જૈન બુકસેલરોને ત્યાંથી પણ મલશે.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

શું આપ જાણો છો? ‘ કથા ભારતી ’

રસભરી કથાવાર્તાઓ પીરસતું જૈન ધર્મનું સચિત્ર સામયિક

જૈન સાહિત્ય પ્રગટ કરતા અનેક સામયિકોમાં અનોખી છાપ પાડતું રસભરી કથાવાર્તાઓ પ્રગટ કરતું, ટૂંક સમયમાં જ લોક ચાહના પ્રાપ્ત કરી છે તે ‘કથા ભારતી’ દ્વિમાસિકે એક એકથી ચઢીયાતા અંકો આપી દિન–પ્રતિદિન પ્રગતિ કરી છે, કેવળ શાસન સેવાના ઉદ્દેશથી જ પ્રગટ થતું આ પત્ર છે માટે આપ તાકીદે લવાજમ ભરી શાસનસેવાના કાર્યમાં સહકાર આપશો.

વીતેલા વર્ષ દરમ્યાન વિદ્વાન લેખકો અને પૂજ્ય મુનિવર્યોના સહકારથી શાસ્ત્રીય, રસિક, ચરિત્ર તથા સાહિત્ય પ્રગટ કરી લોકોની ખૂબ જ ચાહના એણે મેળવી છે.

અવનવા સમાચારોનું આકર્ષણ જેમાં ન હોય, રમુજી, ટુચકા રજૂ થતા ન હોય, અર્થકામની અભિલાષાઓ ઉત્તેજીત કરે એ વાનગીઓ જેમાં ન પીરસાતી હોય એવા સીધા સાદા કથાનક પ્રધાન સામયિકને ઘરમાં પ્રવેશ કરાવવા કેટલું બળ જોઈએ?

અમારું બળ આ છે :—

(૧) પૂ. આચાર્ય મહારાજાઓ આદિ અનેક ગીતાર્થ પૂ. મુનિ ભગવંતોના આશીર્વાદ અને સતત પ્રેરણા એને મળી છે. (૨) વિદ્વાન પૂ. મુનિવરો અને પંડિત શ્રાવકોની શાસ્ત્રશુદ્ધ લેખવાર્તાઓ ‘કથાભારતી’ પ્રગટ કરે છે. (૩) સમાજમાં ફેલાઈ રહેલા વિકૃત જૈન ચરિત્રો અને લખાણોનો શાંત, ઉદાત્ત અને પ્રતિપાદન શૈલીથી પ્રતિકાર કરી શાસનસેવા કરવાની કથા ભારતીની અભિલાષા છે.

આજે જ્યારે મનને અને તે પછી તનને બગાડે એવા મલિન સાહિત્ય છુટથી બાળકો આગળ આવી રહ્યા હોય ત્યારે આવા વાંચનમાં તેઓ મન પરોવતા થાય તેવું કરવું તે ખૂબ જરૂરી છે. નીચેના સરનામે તાકીદે લવાજમ મોકલી આપો.

વાર્ષિક લવાજમ રૂા. (૨–૫૦) છુટક નકલ—નયા પૈસા ૦–૫૦

‘કથા ભારતી’ કાર્યાલય ૨૬, કોટનચાલ, પાંજરાપોળ–અમદાવાદ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ગુજરાતી સરળ ભાષામાં ૯૦ સુંદર ચિત્રો સહિત

ગૌતમપૃચ્છા–સચિત્ર

વિશ્વવંદ્ય **પ્રભુ શ્રી મહાવીરસ્વામીજી** અને શ્રુત કેવળી **શ્રી ગૌતમસ્વામીજી**ના પ્રશ્નોત્તર રૂપ આ **ગ્રંથ મોટા બોલ્ડ ટાઈપમાં મનોહર** સુરેખ ચિત્રોથી સુશોભિત કર્યો છે આ ગ્રંથ માનવ જીવનની સમશ્યા ઉકેલે છે અને સંસ્કારી બનાવે છે, જેથી આત્મા ઉર્ધ્વગામી બને છે.

જૈન ધર્મનું રહસ્ય સરલ ભાષામાં જાણવા માટે સૌ કોઈને આ પુસ્તક વાંચવા જેવું.

સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતો જીવ મોક્ષે ક્યારે જાય ? સ્વર્ગે ક્યારે જાય ? મનુષ્ય ક્યારે થાય ? સ્ત્રી ક્યારે થાય ? પશુ–પક્ષી ક્યારે થાય ? અને નરકે ક્યારે જાય ? કાણો, બહેરો, બોબડો, લંગડો લુલો, કોઢિયો, વાંઝિયો કેમ થાય વગેરે ૪૮ પ્રશ્નો પ્રથમ ગણધરે પૂછેલા તેના ઉત્તરો પ્રભુશ્રીએ આપેલા. તે વિસ્મયકારી બોધક કથાઓ સહિત.

માનવ ધનવાન અથવા નિર્ધન શાથી થાય ? રૂપાળો અથવા કદ્રૂપો કેમ થાય ? પ્રિય કે અપ્રિય કેમ લાગે ? એવી મનને મુઝવતી અનેક સમસ્યાઓનો ઉકેલ આ **ગ્રંથમાં** તમને જોવા મળશે.

સામાયિકમાં વાંચવા લાયક, **વ્યાખ્યાનની** ગરજ સારે તેવો આ ગ્રંથ છે. બીજાને વાંચી સંભળાવવાથી સાંભળનારને સાચો આનંદ પડે તેવો છે. છતાં જ્ઞાન પ્રચાર માટે માત્ર કિંમત ત્રણ રૂપિયા. પોસ્ટ ખર્ચ રૂા. ૧ અલગ. પૃષ્ઠ ૩૨+૩૨૦=૩૫૨. (બાંધેલી ચોપડી અને છૂટાં પાનાં બંને આકારે છે, માટે જે જોઈએ તે લખો.)

સંસ્કૃત **ગૌતમપૃચ્છાવૃત્તિ**ની પ્રત નવી છપાયેલ છે તે પણ મળશે. તેની કિંમત પણ ત્રણ રૂપિયા પોસ્ટ ખર્ચ અલગ. (સોનેરી પાટલી સાથે).

gyanmandir@kobatirth.org

૧. **જૈન પ્રકાશન** [illegible] ી પોળ–**અમદાવાદ.**

૨. **રમેશચંદ્ર મણિ**[illegible] જેશીંગભાઈની ચાલીમાં [illegible] ૬૩૦ **અમદાવાદ.**

પ્રસિદ્ધ જૈ[illegible] ણ મળશે.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org